विमान और वैमानिकी

हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला—३१

विमान और वैमानिकी

लेखक

चमनलाल गुप्त एम० एस-सी०

प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग

उत्तर प्रदेश

विमान और वैमानिकी

बीजं चतुर्विधमिह प्रवदन्ति यन्त्रे-
ष्वम्भोऽग्निभूमिपवनैर्निपवनैर्निहितैर्यथावत् ।।९४।।

लघुदारुमयं महाविह दृढ़सुश्लिष्टतनुं विधाय तस्य ।
उदरे रसयन्त्रमादधीत ज्वलनाधारमधोऽस्य च (तिर्यग्न) पूर्णम् ।।९५।।

तत्रारूढः पुरुषस्तस्य पक्षद्वन्द्वोच्चाल-प्रोज्झितेनानिलेन ।
सुप्तस्यान्तः पारदस्यास्य शत्या चित्रं कुर्वन्नम्बरे याति दूरम् ।।९६।।

इत्थमेव सुरमन्दिरतुल्यं स ज्वलत्यलघु दारुविमानम् ।
आदधीत विधिना चतुरोऽन्तस्तस्य पारदभृतान् दृढकुम्भान् ।।९७।।

इस यन्त्र (विमान) के चार 'बीज' बताये गये हैं जल, अग्नि, भूमि और वायु। ये इसमें यथावत् रखे जाने चाहिए। हल्की लकड़ी का दृढ़ अंगोंवाला विशाल आकारवाले पक्षी के समान विमान का निर्माण कर उसके मध्य में 'रसयन्त्र' को रखे, इसके नीचे अग्नि का आधार हो। उस पर बैठकर मनुष्य यन्त्र के दोनों पक्षों के चलने से उत्पन्न वायु और अन्दर रखे हुए पारद की शक्ति से आश्चर्य उत्पन्न करता हुआ आकाश में दूर तक उड़ जाता है। इस प्रकार देवमन्दिर तुल्य बृहदाकार का दारु विमान शोभित होता है। निर्माता को इसके अन्दर पारद से भरे हुए दृढ़ कुम्भ अवश्य रखने चाहिए।

——समराङ्गणसूत्रधारः, पृष्ठ १७६—१७७.

प्रकाशकीय

प्रकृति पर विजय पाने की कामना मनुष्य के हृदय में शुरू से ही रही है और इसके लिए वह निरन्तर प्रयत्न करता आ रहा है। स्थल पर और जल में तो उसकी गति-विस्तार में उतनी अधिक बाधा उत्पन्न नहीं हुई, किन्तु आकाश में विचरण करने की उसकी आकांक्षा पूरी होने में बहुत समय लगा।

जैसा कि इस पुस्तक के लेखक ने लिखा है, पौराणिक कथाओं और पक्षियों की उड़ान से प्रेरित होकर ही मनुष्य ने पृथ्वी से ऊपर उठने का प्रयत्न आरंभ किया। पहले उसने पंखों का सहारा लेकर उड़ने का प्रयास किया। इस तरह का एक परीक्षण सन् १६७८ में फ्रांसीसी युवक बासनिये ने किया था। फिर फ्रांस के मोंगोलफिये बन्धुओं ने कागज के एक बड़े थैले में गरम हवा भर कर उसे आकाश में उड़ाया, जो १० मिनट में ही ६,००० फुट की ऊँचाई तक पहुँच गया। इस प्रकार गुब्बारों का प्रचलन आरंभ हुआ। अन्य दिशाओं में भी प्रयत्न होते रहे। निदान लगभग दो शताब्दियों के बाद सन् १८९८ में जेपलिन नामक एक जर्मन ने ऐसा हवाई जहाज बनाया जो आसानी से ऊपर उठाया जा सकता और इच्छानुसार दाहिने-बांये घुमाया या उतारा जा सकता था। इसके बाद तो हवाई जहाजों का युग ही आरंभ हो गया और अब पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक उनमें बैठकर निरापद रूप से यात्रा करना संभव हो गया है।

विमानों के विकास का उपर्युक्त मनोरंजक विवरण संक्षेप में देते हुए लेखक श्री चमनलाल गुप्त ने विमानों के विविध अंगों, उड़ान सम्बन्धी कठिनाइयों और उनसे पार पाने के उपायों आदि का वर्णन सरल और सुबोध भाषा में किया है, जिससे पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गयी है।

श्रीगुप्त केन्द्रीय सरकार के शिक्षा मंत्रालय में सहायक शिक्षा-अधिकारी हैं। हिन्दी में एम. ए. होने के साथ-साथ आप रसायन-विज्ञान के एम. एस-सी भी हैं। हिन्दी साहित्य में विज्ञान सम्बन्धी लेखों का अभाव पूरा करने में आप सतत प्रयत्नशील हैं। नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी के "हिन्दी विश्वकोष" के

रसायन खण्ड के लिए आपने ताम्र, डाइनामाइट आदि विषयोंपर गवेषणात्मक लेख लिखे हैं।

उत्तर प्रदेशीय सरकार ने हिन्दी में विविध विषयों की पुस्तकें प्रकाशित करने की जो योजना बनायी है, उसी के अन्तर्गत इस पुस्तक का भी प्रकाशन किया जा रहा है। यह हिन्दी समिति ग्रन्थ-माला का ३१ वाँ पुष्प है। हिन्दी में स्यात् इस विषय की यह पहली पुस्तक है। हमें आशा है कि समिति के अन्य प्रकाशनों की तरह हिन्दी जगत् में इसका भी समुचित स्वागत होगा।

भगवतीशरण सिंह

सचिव, हिन्दी समिति

भूमिका

विमान और वैमानिकी पर हिन्दी में संभवतः यह पहली पुस्तक है। यह पुस्तक लोकप्रिय साहित्य की श्रेणी की है। इसमें विमान के प्रादुर्भाव और वैमानिकी से संबंधित परिचयात्मक सामग्री का ही उपयोग किया गया है। इसको समझने में जिन सिद्धान्तों का आश्रय लेना पड़ता है वे वास्तव में यांत्रिकी के सामान्य सिद्धान्त ही हैं, परन्तु सरल भाषा में इनके आधार पर उड्डयन सम्बन्धी तथ्यों की व्याख्या करते समय, कुछ ऐसी समस्याएँ भी आती हैं जिनको समझने के लिए गणित और यांत्रिकी के गहरे अध्ययन की आवश्यकता का अनुभव होता है। पुस्तक में ऐसे स्थलों पर कहीं-कहीं तो समस्या का केवल उल्लेखमात्र किया गया है और कहीं-कहीं केवल व्यावहारिक पक्ष से ही सन्तोष करना पड़ा है। भाषा की सरलता, सामान्य पाठक का स्तर और पुस्तक सर्वोपयोगी हो, इसके कारण गणित और यांत्रिकी के इन जटिल सिद्धान्तों की व्याख्या करना इस पुस्तक में उचित नहीं प्रतीत हुआ।

पारिभाषिक शब्दों का चयन करते समय शब्दों की सुबोधता और उपयुक्तता पर अधिक ध्यान दिया गया है। ऐसे अंग्रेजी शब्दों को अपना लिया गया है जो हमारी भाषा में घुल-मिल गये हैं जैसे, रेडार, राकेट इत्यादि। केन्द्रीय सरकार के शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित पारिभाषिक शब्दावली की सूचियों से भी लेखक को पर्याप्त सहायता मिली है। संकेताक्षरों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप को अपनाया गया है जैसे π, ϕ, $\flat$, इत्यादि। संक्षिप्तिकाओं को प्रयोग करते समय हिन्दी शब्दों के संक्षिप्त रूप को ग्रहण करना अधिक उचित समझा गया। जैसे, वे (वेग), क्ष (क्षेत्रफल), त्रि (त्रिज्या), ल (लम्बाई) इत्यादि।

पुस्तक के अन्त में दी गयी शब्दसूची में पारिभाषिक शब्दों के अतिरिक्त विदेशी विद्वानों, स्थानों तथा विमानों के नाम हिन्दी में ही दिये गये हैं। इनके उच्चारण में तद्देशीय उच्चारण का विशेष ध्यान रखा गया है, उदाहरणार्थ फ्रांस में एक स्थान Calais का उच्चारण उस देश के उच्चारण के अनुसार कैले तथा Montgolfiers का मोंगोल्फ़िये ही रखा गया है। जिन नामों का उच्चारण रूढ़ हो गया है उनके लिए अंग्रेजी उच्चारण को ही मान्यता दी गयी है। उदाहरणार्थ फ्रांस के चार्ल्स को शार्ल न कहकर चार्ल्स ही लिखा

गया है। ठीक इसी प्रकार जिस प्रकार Paris को हम 'पारि' न कहकर सामान्यतः पेरिस ही कहते हैं।

इस पुस्तक के १३ अध्यायों में से प्रथम चार अध्यायों में वैमानिकी के इतिहास का परिचय मात्र कराया गया है। पौराणिक कथाओं और पक्षियों की उड़ान से प्रेरित मनुष्य किस प्रकार गुब्बारों, वायुपोतों और तदनन्तर विमान की अवस्थाओं तक पहुँचा, इनमें इसी का उल्लेख है। वैमानिकी में भारत के योगदान का भी इसमें वर्णन है।

अगले ६ अध्यायों में वायुमंडल, वातरोध, रेनाल्ड संख्या, पंखकाट और पंखे से लेकर विमान की उड़ान की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के सम्बन्ध में जिन सिद्धान्तों का आश्रय लिया गया है उनकी व्याख्या की गयी है। विमान के नियन्त्रण तथा स्थायित्व सम्बन्धी समस्याओं का उल्लेख ग्यारहवें अध्याय में है। पुस्तक को उपयोगी बनाने के लिए द्रुतगामी विमानों पर एक अध्याय जोड़ दिया गया है। आधुनिक आविष्कार शीर्षक नाम के अन्तिम अध्याय में पाठक की जानकारी तथा रुचि के लिए राकेट और इसके द्वारा मनुष्य के आकाशयात्रा के प्रयासों को भी संक्षेप में प्रस्तुत कर देना लेखक ने अप्रासंगिक नहीं समझा।

लेखक ने प्रस्तुत ग्रंथ के प्रणयन में अनेक गण्यमान्य देशी-विदेशी विद्वानों की कृतियों से सहायता ली है। लेखक विनम्र भाव से उन सबका आभार स्वीकार करता है।

भारतीय वायुसेना के फ्लाइट लेफ्टीनेण्ट श्री सी० के० कुमार ने इस विषय के टेकनिकल पक्ष पर परामर्श देकर मुझे समय-समय पर सहायता दी है। श्रद्धेय डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा, विशेषाधिकारी (हिन्दी) शिक्षा मन्त्रालय, नयी दिल्ली, ने पुस्तक की पाण्डुलिपि पढ़कर बहुमूल्य सुझाव दिये हैं। इसके लिए लेखक उक्त दोनों विद्वानों का कृतज्ञ है। सर्वश्री महेन्द्र चतुर्वेदी और देवेश मिश्र ने पुस्तक को आद्यन्त पढ़कर बहुत से भाषा-सम्बन्धी बहुमूल्य सुझाव दिये। वे मेरे मित्र हैं। उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करके मैं उनके आभार से उऋण होना नहीं चाहूँगा।

—चमनलाल गुप्त

विषय-सूची

चित्र-सूची

(हाफटोन चित्र)

(रेखा-चित्र)

चित्र-संख्या (रेखा-चित्र) पृष्ठ

चित्र-संख्या	(रेखा-चित्र)	पृष्ठ

सूचना—पृ० १५२, १८६, २२८, २३७ पर आयतन कोण के स्थान पर कृपया आयतन कोण पढ़ें तथा पृ० २०४ पर संयमित की जगह संमित बना ल ।

चित्र १—विमान और उसके मुख्य अंग।
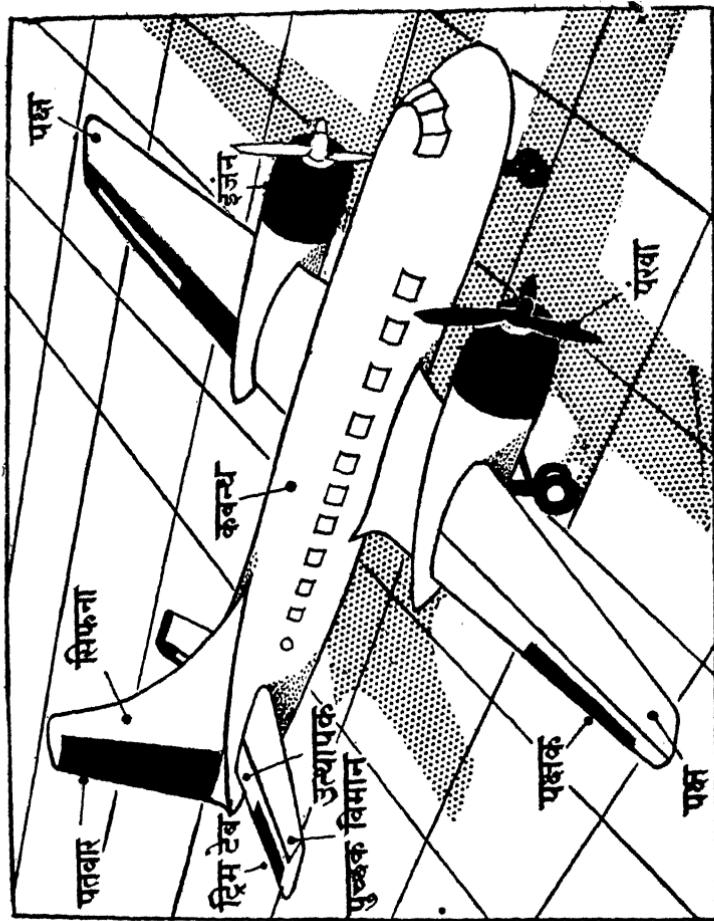
पहला अध्याय

प्रस्तावना

१. हवाई यात्रा

आज के युग में हवाई यात्रा का एक मुख्य स्थान है। इस क्षेत्र में जो आविष्कार हुए, उन्होंने दूरी की महत्ता को कम कर दिया है। विश्व की यात्रा करने में पहले हमें अनेक वर्ष लगते थे, किन्तु अब इन आविष्कारों के कारण कुछ ही दिनों में ऐसी यात्रा कर सकते हैं। आज भौगोलिक दूरी का स्थान समय ने ले लिया है। पहाड़ों और समुद्रों पर मनुष्य ने विजय पा ली है और ये उसके मार्ग में अब रुकावट नहीं बन पाते। कहने का अभिप्राय यह है कि जहाँ भी आकाश है वहाँ मनुष्य विमान से उड़ान कर सकता है। इस प्रकार मनुष्य ने वायु पर विजय प्राप्त करने का श्रेय प्राप्त कर लिया है। इस विजय के प्राप्त करने का एक रोचक इतिहास है। उड़ान-संबंधी प्रयासों के उद्गम के संबंध में तो निश्चयपूर्वक कोई धारणा स्थापित नहीं की जा सकती। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि मनुष्य की अनुकरण करने की प्रवृत्ति ने इसमें अवश्य महत्त्व-पूर्ण योग दिया है। पक्षियों को उड़ते देखकर शायद कभी उसके हृदय में इनका अनुकरण करने की भी इच्छा हुई होगी। एक समय ऐसा भी आया होगा जब पक्षियों की उड़ान से आकृष्ट होकर वह उड़ने की इच्छा को दबा न पाया होगा, और मनुष्य अपने को इनके सम्मुख हीन ही क्यों समझने लगा, उसके पास बुद्धि है और इसी के बल पर वह अब तक प्रकृति पर विजय प्राप्त करता आया था। अतः मनुष्य ने पक्षियों की तरह उड़ान करने का निश्चय इसी आधार पर किया।

उड़ान के क्षेत्र में मनुष्य ने जो प्रयास किये हैं, उनका आरम्भ कब हुआ, इस संबंध में निश्चय रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। अनेक पौराणिक कथाएँ इस विषय में प्रचलित हैं। यूनानी देवताओं की अलौकिक कथाओं में ऐसे देवताओं के उल्लेख मिलते हैं जिनमें उड़ान करने की क्षमता थी।

२. पौराणिक कथाएँ

मिस्र, भारत और जापान की कहानियाँ भी ऐसे ही देवताओं से भरी पूरी हैं। क्रेट के राजा मिनोस की कैद से बचने के लिए, डयडेलस और इकारस के उड़ान करने की पौराणिक कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है। कहते हैं कि उन्होंने अपनी इस उड़ान के लिए मोम और पक्षियों के पंखों से बने पक्षों का प्रयोग किया था। ब्रिटेन के नवें राजा ब्लेडेंड को भी उड़ान का शौक था। ८८३ ई० पू० के लगभग वह उड़ान करते हुए गिरकर मर गया था।

हमारे देश में हनुमानजी की अनेक उड़ानों के प्रसंगों के उल्लेख मिलते हैं। लंका से लौटते समय कहा जाता है कि रामचन्द्रजी ने पुष्पक विमान का प्रयोग किया था।

इस प्रकार की अन्य कथाओं और पक्षियों की प्रति दिन की उड़ानों से प्रेरित होकर मनुष्य ने इस ओर प्रयास आरम्भ किये। अब तक मनुष्य ने पक्षियों की उड़ानों के अनुकरण करने के अनेक असफल प्रयत्न किये थे। इन असफलताओं के दो मुख्य कारण थे—

(क) वायुमंडल सम्बन्धी ज्ञान से परिचित न होना।

(ख) पक्षियों की शारीरिक रचना और विशेष कर उनके पंखों की संरचना तथा उनके कार्य के सम्बन्ध में अनभिज्ञ होना।

परन्तु फिर भी इस आदिम युग के प्रयासों में हमें मनुष्य के अपूर्व साहस और बुद्धिमानी की झलक मिलती है।

३. रोजर बेकन का प्रयास

इस क्षेत्र में वैज्ञानिक ढंग से सबसे पहली बार १२५० ई० में एक अंग्रेज पादरी ने प्रकाश डाला। इनका नाम रोजर बेकन था। रोजर बेकन ने अपनी पुस्तक 'सीक्रेट्स आफ आर्ट एण्ड नेचर' में इस विषय पर कुछ वैज्ञानिक ढंग से सोचने का प्रयास किया। यह पुस्तक १२५० ई० में लैटिन भाषा में लिखी गयी थी। इस प्रकार का यह पहला प्रयास था। जादू-टोने के युग में विज्ञान के प्रभुत्व को सिद्ध करने के प्रयास में इस पुस्तक में बेकन ने अनेक तथ्यों का वर्णन

किया है। बेकन ने यह स्वीकार किया कि उसने उड़ने की मशीन, जिसके संबंध में उसने अपनी पुस्तक में कुछ लिखा था, के दर्शन नहीं किये थे, परन्तु वह एक ऐसे मनुष्य को जानता था जो इस विषय का जानकार था। यही कारण है कि उसने अपनी पुस्तक के एक अध्याय में मनुष्य को ऐसी मशीन बनाने में समर्थ बताया जिसकी सहायता से वह भविष्य में पक्षियों की अपेक्षा अधिक सुगमता से सफल उड़ान कर सकेगा। (इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद १६५९ ई० में हुआ।) इसके दो सौ वर्ष तक इस क्षेत्र में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। लगभग दो सौ वर्ष बाद एक और महान् वैज्ञानिक ने जन्म लिया। इनका नाम लेओनार्डो डा विंची था।

उड़ान का वर्तमान इतिहास इन्हीं से आरम्भ होता है। इनका कहना था कि यदि हम उड़ान करना चाहते हैं तो हमें चाहिए कि हम पक्षियों का अध्ययन करें। पक्षी मानो एक विशेष प्रकार का चलता-फिरता औज़ार है जिसके अंग-संचालन की प्रक्रिया गणित के नियमों पर ही आश्रित होती है। मनुष्य इस औज़ार और इसकी गति का अनुकरण करने में समर्थ है। यह औज़ार वायु में अपना सन्तुलन अपनी शक्ति से करता है, मनुष्य को इसकी पूर्ति अपनी बुद्धि से करनी होगी। डा विंची ने इसी ढंग से इस समस्या को सोचा। उन्होंने पक्षियों की उड़ान और वायु में सन्तुलन बनाये रखने के ढंग का बहुत ही ध्यान-पूर्वक अध्ययन किया, फिर इसकी तुलना उन्होंने मनुष्य के शरीर से की और वे इस परिणाम पर पहुँचे कि उड़ान में परों की संरचना के अतिरिक्त उनके प्रयोग करने की रीति का भी एक विशेष महत्त्व है, यही कारण है कि पक्षी हर ऋतु और हर अवस्था में उड़ान कर पाते हैं। उन्होंने चमगादड़ के परों को उड़ान के लिए अधिक महत्त्व दिया, क्योंकि उनका विश्वास था कि उसकी झिल्ली में विशेष गुण पाये जाते हैं। उन्होंने मनुष्य की उड़ान के लिए, पक्षोंवाले उपकरण, हैलिकौप्टर, हवाई छतरी, विमान इत्यादि के अद्भुत अभिकल्प बनाये। ऐसे पिछड़े हुए युग को देखते हुए डा विंची की चिन्तनाओं का एक विशेष महत्त्व है। डा विंची का देहान्त १५१९ ई० में हुआ। इनकी मृत्यु से इस क्षेत्र में बड़ी ही क्षति हुई। इनके बाद अधिक समय तक कोई नवीन बात नहीं सोची गयी और उड़ान के क्षेत्र में पक्षियों से

सम्बद्ध वाद का ही एकाधिकार रहा। १६ वीं शताब्दी में तो उड़ान उपन्यास और कहानियों का विषय ही बन कर रह गयी।

४. विलकिन्स के सुझाव

इस विषय पर प्रायोगिक रीति से श्री विलकिन्स (१६१४–७२) ने कुछ प्रकाश डाला। ये पादरी थे। ये मुख्यत: पक्षियों की ही तरह के पक्षों से उड़ान संभव समझते थे। इनके विचार में मनुष्य की अकेली भुजाएँ ही इस कार्य के लिए पर्याप्त न थीं। इस कमी को पूरा करने के लिए इन्होंने टाँगों के प्रयोग के भी सुझाव दिये। वायु-रथ के संबंध में विशेषत: इसके पक्षों की लम्बाई-चौड़ाई, इनकी शक्ति और इनके भार की इन्होंने कुछ विवेचना की। पक्षों के नियन्त्रण के लिए यान्त्रिक व्यवस्था भी इस विवेचना में सम्मिलित थी। इस प्रकार ये डा विंची के विचारों से कुछ और आगे बढ़े। कुछ कारणों से विंची की कृति १७९७ में प्रकाश में आयी, इस कारण इस क्षेत्र में विलकिन्स का ही अधिक महत्त्व है। इनसे प्रेरणा लेकर १६७८ में ताला बनानेवाले एक फ्रांसीसी युवक बासनिये ने उड़ने की एक मशीन बनायी। इस उपकरण में दो डंडे थे जिनके चारों किनारों पर कब्जों की सहायता से चार पल्ले लगे थे। उनको उसने अपने कंधों पर रख, दोनों डण्डों को एक-एक हाथ में पकड़, दूसरे दो किनारों को अपनी दोनों टाँगों से दो रस्सियों की सहायता से बाँधकर, अपनी टाँगों और बाँहों की सहायता से उड़ान करने का परीक्षण किया था।

५. लाना की नयी पद्धति

१७ वीं शताब्दी के आरम्भ में यह अनुभव किया जाने लगा कि यदि किसी प्रकार वायु से विरल किसी गैस का आविष्कार हो जाय तो यह समस्या हल हो सकती है। इसी समय में एक फ्रांसीसी पादरी और गणितज्ञ फ्रांसेस्को द लाना ने उड़ने की हलकी मशीनों के सम्बन्ध में सैद्धांतिक ढंग से थोड़ा-बहुत सोचने का प्रयास किया, जो मोटी तौर से इस प्रकार था—ये धातु के चार बड़े बड़े गोलों की सहायता से अपनी मशीन को वायु में उड़ाना चाहते थे। लाना इतनी पतली धातु के गोले बनाना चाहते थे जिससे ये गोले उस वायु की

चित्र १
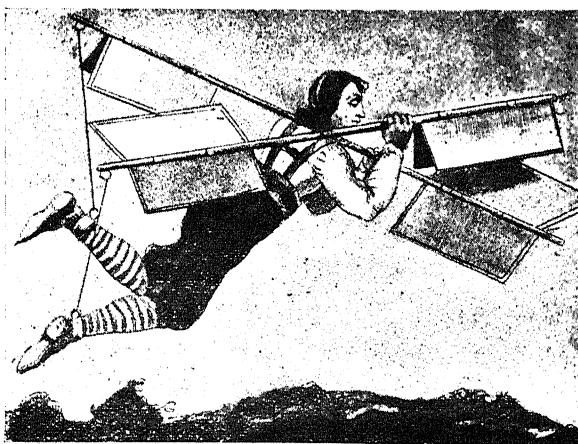
बासनियेने उड़ने की एक मशीन बनायी (पृ० ४)

(रेडियो टाइम्स हल्टन पिक्चर लाइब्रेरी के सौजन्य से)

चित्र २

मोंगोलफिये के अग्नि-गुब्बारे में पहली बार भेड़, बत्तक तथा मुर्गे ने उड़ान की (पृ० ८)

(रेडियो टाइम्स हल्टन पिक्चर लाइब्रेरी के सौजन्य से)

अपेक्षा, जिसका ये विस्थापन करते हों, हलके हों। धातु का इतना पतला होना और साथ ही इतना शक्तिशाली होना कि वह बाहर की वायु के दाब को संभाल सके, संभव न हो सका। अतः लाना इसमें असफल रहे। इनके पास इतना धन भी न था कि ये इस विषय पर अधिक प्रयोग कर सकते। फिर भी इन्होंने उपर्युक्त साधनों से इस क्षेत्र में हमें एक नया सूत्र प्रदान किया, जो आगे चलकर गुब्बारों और वायुयान के रूप में संसार के सम्मुख आया। इस प्रकार इन प्रायोगिक आविष्कारों से एक नये युग का मानो आरम्भ होता है।

अब उड़ान के क्षेत्र में प्रगति होने लगी थी। लाना से प्राप्त नयी पद्धति पर खोज-कार्य होने लगा। मनुष्य समझने लगा कि केवल पक्षियों का अनुकरण मात्र रहने से ही काम न चलेगा। जिस प्रकार पृथ्वी पर यातायात के साधनों को सुधारने के लिए मनुष्य ने पहिये का आविष्कार किया, जिसका पृथ्वी पर चलनेवाले किसी भी चौपाये के किसी भी अंग से कोई साम्य न था; ठीक उसी प्रकार उड़ने के लिए मनुष्य को पक्षियों से भिन्न किसी ऐसे ही यन्त्र का आविष्कार करना होगा; ऐसी धारणा क्रमशः लोगों के मन में जमती गयी।

१८ वीं शताब्दी के आरम्भ में हमें प्रायोगिक आविष्कारों की झलक सी मिलती है। १७०९ ई० में फरायर गज़मैन ने पुर्तगाल के सम्राट् के सम्मुख एक उड़नेवाली मशीन के पेटेण्ट के लिए प्रार्थना की। फरायर गज़मैन की मशीन का आकार पतंग-जैसा ही था जिसमें वायु के आने-जाने के लिए नलियाँ बनायी गयी थीं और पर्याप्त मात्रा में वायु न होने की दशा में धौकनियों की भी व्यवस्था की गयी थी। इस अपूर्व आविष्कार के उपलक्ष में सम्राट ने उसे कोइम्बरा विश्वविद्यालय में प्रोफेसर नियुक्त किया और साथ ही पेन्शन की भी स्वीकृति दी। किन्तु इन सुविधाओं ने उसे बढ़ावा देने के बजाय आरामपसन्द बना दिया। इसी लिए २७ साल की लम्बी अवधि के बाद उसने केवल सात फुट व्यास की, कागज से ढकी, लचीली टहनियों की बनी एक टोकरी-सी बनायी, जो वायु में लगभग २०० फुट ऊपर तक ही उड़ सकी। लगभग इसी बीच पुर्तगाल के एक नागरिक ने भी कुछ इसी प्रकार की एक मशीन के अभिकल्प के लिए राज्य से स्वीकृति माँगी। इस तरह पुर्तगाल भी इस क्षेत्र में पीछे न था।

६. विरल गैस का आविष्कार

जोज़ेफ़ गेलयन ने १७५५ ई० में एक सुझाव रखा जो संक्षेप में इस प्रकार था—कपड़े या चमड़े के बड़े-बड़े थैले बनाये जायँ, इन थैलों में यदि कोई विरल प्रकार की वायु भर दी जाय तो वायु में इनकी उड़ान सम्भव हो सके। लगभग इसी समय में ऐसी ही वायु का आविष्कार हुआ। इसका श्रेय हैनरी कैवेन्डिश को है, जो एक रसायनज्ञ थे। यह गैस वायु से सात गुनी विरल थी, इसे हाइड्रोजन गैस का नाम दिया गया। इस प्रकार इस आविष्कार से इस समस्या को हल करने में एक बहुत बड़ी कठिनाई दूर हो गयी। १७८२ ई० में केवेलो ने उड़ान में इस गैस का प्रयोग करने का प्रयत्न किया। उन्होंने बहुत बड़े, किन्तु बहुत पतले थैलों को इस गैस से भरकर उड़ाने का प्रयत्न किया। परन्तु ये थैले अधिक भारी थे, अतः वे इस प्रयोग में सफल न हो सके। इसके बाद उन्होंने थैले बनाने में चीनी कागज का प्रयोग किया। परन्तु चीनी कागज के थैलों से यह गैस बड़ी सुगमता से बाहर निकल जाती थी, अतः यह प्रयास भी सफल न हो सका।

मनुष्य का ध्यान अब एक ऐसी मशीन के निर्माण की ओर गया, जो उस वायु से हलकी हो, जिसका उसे विस्थापन करना है, और जो अपनी उड़ान में हवा के उत्प्लावन गुण का लाभ उठा सके। ये मशीनें गुब्बारे अर्थात् बैलून के नाम से प्रसिद्ध हुईं। अंग्रेजी भाषा में बैलून शब्द का यह प्रयोग नया था। एलिज़ाबेथ के राज्यकाल में इस शब्द का प्रयोग फुटबाल के अर्थ में होता था।

दूसरा अध्याय

गुब्बारे

१. मोंगोलफिये बन्धुओं के प्रयोग

फ्रांस में लिओन के समीप आनोने में दो भाई जोज़ेफ़ और एतिन मोंगोलफ़िये रहते थे। ये कागज़ के लिफ़ाफ़ों का व्यवसाय करते थे। एक दिन इन्होंने बादलों की टुकड़ी को आसमान में बहते देखकर सोचा कि यदि इसी प्रकार की कोई गैस किसी थैले में भर दी जाय तो उसके लिए भी इन बादलों की टुकड़ियों के समान तैरना संभव हो सकता है। उन्होंने इस पर प्रयोग करना आरम्भ किया। उन्होंने अँगीठी के धुएँ को ऊपर की ओर जाते देखकर, इसी से अपने कागज़ के लिफ़ाफ़ों को भरा। इन धुएँ से भरे कागज़ के लिफ़ाफ़ों को ऊपर जाते देखकर उनके आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा। उन्होंने अपने प्रयासों को और लगन से करना आरम्भ किया। यह १७८२ ई० की बात है।

१७८३ ई० में उन्होंने अपने प्रयोगों का पहला सार्वजनिक प्रदर्शन किया। ठीक समय और निश्चित स्थान पर ३५ फुट ऊँचे खम्भे के साथ कागज़ का सौ फुट परिधि का एक पुतला बाँधा गया। इसका भार पाँच सौ पौंड था। इसमें नीचे की ओर एक छेद था, जिसके नीचे सूखी घास और लकड़ियाँ आदि जलायी गयी थीं। इस व्यवस्था के कारण शीघ्र ही इस पुतले ने एक बृहत् गुब्बारे की आकृति धारण कर ली। गरम हवा से भर जाने के कारण, बड़े वेग से वह ऊपर की ओर उठने लगा। दस मिनट से कम समय में ही वह ६००० फुट की ऊँचाई तक पहुँच गया। ऊपर एक ठंडी हवा का झोंका उसे आड़ी दिशा में ७६६८ फुट की दूरी तक ले गया। बाद में वह धीरे-धीरे पृथ्वी पर उतरता गया। इस प्रकार के गुब्बारों को बाद में मोंगोलफ़िये अथवा अग्निगुब्बारों का नाम दिया जाने लगा और हाइड्रोजन गैस से भरे गुब्बारे गैस के गुब्बारे कहे जाने लगे।

इन प्रयोगों की सफलता की कहानी ने पेरिस में एक हलचल मचा दी और वहाँ की साइंस एकेडेमी ने इन दोनों भाइयों को पेरिस आने का बुलावा दिया। राबर्ट भाइयों को, जो गणित-सम्बन्धी औजारों के निर्माता थे, भौतिकीवेत्ता चार्ल्स की देख-रेख में एक 'बैलून' बनाने की आज्ञा दी गयी। प्रारम्भिक योजना के अनुसार इस प्रयोग में मोंगोलफ़िये के प्रयोग का ही अनुकरण करने का निश्चय किया गया, परन्तु बाद में चार्ल्स के सुझाव पर सिल्क से बनाये गये गुब्बारे में हाइड्रोजन गैस भरने की व्यवस्था की गयी। २३ अगस्त १७८३ ई० को यह प्रयोग सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। यह प्रयोग आनोने में मोंगोलफ़िये के निरीक्षण में किया गया था। यह गुब्बारा १०५ फुट परिधि का था। इसके फुलाव के सम्बन्ध में जो प्रगति होती थी उसके सम्बन्ध में प्रति दिन बुलेटिन जारी की जाती थी। भीड़ इतनी अधिक हुई कि उसके भय से इस गुब्बारे को रात्रि के समय निश्चित स्थान से दो मील की दूरी पर ले जाना पड़ा, तो भी दूसरे दिन जहाँ-जहाँ से भी यह देखा जा सकता था दर्शकों की भारी भीड़ से घिर चुका था। वायु में छोड़ने पर यह बड़ी तेज़ी से ऊपर उठने लगा। उसी समय वर्षा आरम्भ हो गयी, परन्तु उससे इसकी प्रगति में कोई कमी न पड़ी। दर्शकों में उत्साह इतना अधिक था कि पानी बरसते में भी खड़े वह इसकी उड़ान को देखते रहे। यह लगभग ३००० फुट तक ऊपर की ओर गया और ४५ मिनट तक वायु में रहने के पश्चात् यह १५ मील की दूरी पर जाकर गिरा। वहाँ के लोग इससे इतने भयभीत हुए कि उन्होंने इसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

फ्रांस के सम्राट् के अनुरोध पर मोंगोलफ़िये भाइयों ने १९ सितंबर, १७८३ ई० को वर्सेल्स में ऐसा ही एक प्रदर्शन किया। इस अग्नि-गुब्बारे में पहली बार एक भेड़, बत्तख और मुर्गे ने उड़ान की। इस गुब्बारे में लचीली टहनियों की बनी टोकरी लटकी थी। इसी में ये तीनों जीव रखे गये। दिन के एक बजे के करीब गुब्बारे को गरम वायु से भरना शुरू किया गया, इसको भरने में ११ मिनट लगे। यह गुब्बारा आकाश में १५०० फुट तक गया। इसमें ८ मिनट का समय लगा। इसके पश्चात् यह दो मील की दूरी पर एक जंगल में जा गिरा। इस प्रदर्शन के कारण इन दोनों भाइयों को राज्यदरबार

में यथेष्ट प्रतिष्ठा मिली। इन सफलताओं से प्रेरित हो अगले बैलून में एक कैदी को भेजने की योजना बनायी गयी, इस शर्त पर कि जीवित वापस आने पर उसे मुक्त कर दिया जायगा। इस प्रकार के गुब्बारोंको बन्दी-गुब्बारों का नाम दिया गया।

२. रोज्ये का साहस

रोज्ये नाम के एक साहसी युवक वैज्ञानिक को यह अच्छा न लगा कि हवा में सबसे पहले उड़ान करने का श्रेय एक कैदी को मिले। यह सोचकर उसने अपनी सेवाएँ इस जोखिमी कार्य के लिए प्रस्तुत कीं। ६०,००० घन फुट आयतन के एक बन्दी-गुब्बारे में यह साहसी युवक १५ अक्टूबर १७८३ ई० को आकाश में लगभग ८० फुट की दूरी तक गया और इस प्रकार इसने विश्व की वैमानिकी के इतिहास में पहली बार उड़ान करने का सम्मान प्राप्त किया। फ्रांस और इंग्लैंड में उन दिनों मोंगोलफ़िये गुब्बारों का काफी प्रचार था। रोज्ये ने अपने एक और साथी के साथ २१ नवम्बर १७८३ को पहली यात्रा सम्पन्न की। इस प्रकार की यात्रा विश्व के हवाई-यात्रा के इतिहास में पहली बार सफलतापूर्वक सम्पन्न की गयी थी। उन्होंने अपनी इस उड़ान में ७६ फुट ऊँचे और ४६ फुट व्यास के एक अग्नि-गुब्बारे का प्रयोग किया था। ये दोनों साथी आकाश में ३०० फुट की ऊँचाई पर लगभग साढ़े पाँच मील की दूरी तक उड़े। इसमें इन्हें २५ मिनट लगे। गुब्बारे को गरम हवा से भरने के लिए, इसके नीचे एक क्रेट में सूखी घास और तिनके जलाने की व्यवस्था थी। मनुष्य के वायु में पहली बार उड़ान करने का श्रेय इस प्रकार मोंगोलफ़िये गुब्बारों अर्थात् अग्नि-गुब्बारों को ही मिलता है।

३. गैस गुब्बारों का प्रयोग

इन सफलताओं के बाद धीरे-धीरे इनका स्थान गैस-गुब्बारों ने लिया। इस प्रकार के २६ फुट व्यास के गुब्बारे में पहली उड़ान चार्ल्स और राबर्ट की निगरानी में १ दिसम्बर १७८३ ई० को सम्पन्न की गयी। इस गुब्बारे में नीचे सिल्क और कागज से बनी एक टोकरी भी लटकायी गयी थी। तीन-चार लाख दर्शकों के सम्मुख, चार्ल्स और राबर्ट ने इस वायु-गुब्बारे में अपनी उड़ान आरंभ

की। ये अपने साथ भिन्न-भिन्न रंगों के झंडे ले गये थे। जब ये उतनी ऊँचाई तक पहुँच गये जहाँ तक कि जाना चाहते थे, तो इन्होंने एक झंडा नीचे फेंका और नीचे खड़े दर्शकों को अपने झंडों से अभिवादन किया। इस प्रकार झंडों को गिराते हुए उनका गुब्बारा नेसल के स्थान पर नीचे उतर आया। राबर्ट उतर गया, इसने लगभग दो घंटे उड़ान की थी। इसके पश्चात् अकेले चार्ल्स ने उड़ान की। वह १० मिनट के भीतर ही बिलकुल सीधा १००० फुट दूरी तक आकाश में गया। कहते हैं कि चार्ल्स इस उड़ान से इतना भयभीत हुआ कि उसने फिर कभी उड़ान न की।

यहाँ इन गुब्बारों की उड़ानों की अपेक्षा इनकी संरचना अधिक द्रष्टव्य है। आज भी इस क्षेत्र में उनके बनाये गुब्बारों के मुख्य भाग, विशेषतः वाल्व, जाल, टोकरी लटकाने का ढंग, सन्तुलन रखने के लिए पेंदे में नीरम डालने की व्यवस्था, दाबमापी[1] का प्रयोग और गैस इत्यादि की व्यवस्था लगभग उसी प्रकार है जैसी उनके समय में थी। सम्राट् की आज्ञा से चार्ल्स और राबर्ट पेरिस वापस लौटने पर बन्दी बना लिये गये। कहते हैं कि सम्राट् के कुछ पादरी परामर्शकों ने उसे समझा दिया था कि जनता को संकट के भय से बचाने के लिए इनके प्रयोगों को बन्द करना आवश्यक है।

जून १७८४ में स्वीडन के सम्राट् की उपस्थिति में श्रीमती तिबल ने एक अग्नि-गुब्बारे में लिओन में उड़ान की। यह पहली महिला थी जिसने पहली बार वायु में उड़ान की थी।

इन उड़ानों के चार मास पूर्व इटली में भी एक सफल उड़ान की गयी थी।

४. इंग्लैंड की पहली उड़ान

ग्रेट ब्रिटेन में जेम्ज़ टाइटलर ने एडनबरॉ में २५ अगस्त १७८४ ई० को उड़ान की और इस प्रकार ग्रेट ब्रिटेन में यह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने ऐसी उड़ान की। इन्होंने अग्नि-गुब्बारे का प्रयोग किया था, जिसका प्रदर्शन 'एडनब्रॉ अग्नि-गुब्बारे' के नाम से किया गया था। यह ४० फुट ऊँचा और व्यास में ३० फुट था। टाइटलर इससे ३५० फुट ऊपर आकाश में गया था। विरल गैस

1. Manometer

के दोबारा भरने की व्यवस्था हर मोंगोलफ़िये-गुब्बारे में होती थी। लेकिन इसमें विरल गैस के दोबारा भरने की कोई व्यवस्था नहीं थी, इसलिए यह शीघ्र ही नीचे आ गया था। शायद यही कारण है कि उसको वैसा श्रेय नहीं दिया जाता जैसा लुनार्डि को प्राप्त है, क्योंकि हम यह नहीं कह सकते कि उसने वास्तविक रूप में वायु-यात्रा की थी या नहीं।

इंग्लैंड में पहली सफल वायु-यात्रा का श्रेय लुनार्डि को है। ये इटली के रहने वाले थे। इन्होंने वायु-गुब्बारे का प्रयोग किया था। १५ सितंबर १७८४ ई० को मूरफ़ील्डज़ के आर्टिलेरी के मैदान से इन्होंने अपनी उड़ान की। इस मैदान में लुनार्डि ने प्रवेश के लिए पाँच शिलिंग, एक गिनी और आधी गिनी के टिकट लगाये थे। दर्शकों में प्रिन्स आफ़ वेल्स भी सम्मिलित थे जो बाद में जार्ज चतुर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुए। दो बजकर पाँच मिनट पर गुब्बारे ने ऊपर उठना आरम्भ किया और तीन बजकर ३० मिनट पर वह मिम्मस के दक्षिण में नीचे उतरा था। इस उड़ान में लुनार्डि के साथ एक कुत्ता, एक बिल्ली और एक कबूतर भी गये थे। ऐसा कहा जाता है कि कबूतर तो भाग गया था और लुनार्डि के कथन के अनुसार उसे बिल्ली को छोड़ना पड़ा था जब वह अपनी हवाई यात्रा के दौरान में पहले स्थान पर उतरा। परन्तु कुत्ता यात्रा के अन्त तक सुरक्षित रहा। चार बजकर २० मिनट पर लुनार्डि वेअर के समीप अपनी सफल उड़ान-यात्रा के पश्चात् उतरा। उसने इस प्रकार २५ मील के लगभग यात्रा की। पैन्थीयोन के स्थान पर लुनार्डिने अपने गुब्बारे और कुत्ते आदि की प्रदर्शनी आयोजित की और प्रवेश के लिए एक शिलिंग प्रति दर्शक टिकट रखा। इस प्रकार वालपोल के कथनानुसार उसने ४००० पौंड के लगभग धन इकट्ठा किया था। इससे उड़ान के प्रति इंग्लैंडवासियों की प्रशस्त रुचि का पता लगता है।

५. ब्लांशार का सफल प्रयास

लगभग इसी समय में एक फ्रांसीसी उत्साही युवक ने इस क्षेत्र में बहुत ख्याति प्राप्त की थी। उसका नाम ब्लांशार था। इसका नाम अपने समय के

बहुत ही सफल और लोकप्रिय उड़ान करनेवालों में लिया जाता है। इसका जन्म एक मैकेनिक के यहाँ १७५५ ई० में हुआ था। १६ अक्टूबर १७८४ ई० को इसने कबूतरों के एक जोड़े और उनके फेफड़ों पर ऊपर की वायु के प्रभाव को देखने के लिए अंग्रेज डाक्टर शैलडन के साथ उड़ान की जो चीर-फाड़ के औज़ार ले गये थे। ब्लांशार ने गुब्बारों को नियन्त्रण में रखने के लिए चप्पू इत्यादि—जैसे अन्य साधन भी रखे थे, लेकिन वे इसमें अधिक सफल न हुए।

७ जनवरी, १७८५ ई० का दिन उड़ान के इतिहास में एक विशेष महत्त्व रखता है। इस दिन ब्लांशार ने एक अमेरिकन डाक्टर जैफरिज के साथ डोवर से कैले तक उड़ान करके इंग्लैंड और यूरोप के बीच के समुद्र को पार किया था। इन्होंने वायु-गुब्बारे का प्रयोग किया था। यह इस ढंग का प्रथम प्रयास था, इसीलिए इतना सरल भी न था। एक स्थान पर इनका गुब्बारा इतने वेग से नीचे की ओर आने लगा कि अपने को बचाने के लिए इन्हें अपने पाजामे और पीने की शराब तक नीचे फेंकनी पड़ी थी। इस प्रकार गुब्बारे के भार को कम करने के बाद ही ये अपनी उड़ान जारी रख सके थे। इस उड़ान से ब्लांशार बहुत लोकप्रिय हो गये और इनके सम्मान में बहुत-सी कविताएँ भी लिखी गयीं। इन्होंने अपनी उड़ानें जारी रखीं और इसमें यह प्रायः सफल रहे। यह अमेरिका भी गये और वहाँ पर इनका बहुत बड़ा स्वागत हुआ था। पाँच वर्ष बाद यह फ़्रांस वापस लौट आये थे। १८०८ ई० में हेग में उड़ान करते समय यह गिर पड़े, जिससे दूसरे वर्ष इनकी मृत्यु हो गयी।

इस वर्ष १५ जून को रोज़्ये ने बोलोन से उड़ान आरम्भ की। उसके साथ एक और साथी था, वह इंग्लिश चैनल को पार करने का प्रयत्न कर रहा था। उसका गुब्बारा विशेष प्रकार का था। इसमें ३७ फुट व्यास का एक गुब्बारा था जो हाइड्रोजन गैस से भरा था। इसके नीचे १० फुट व्यास का एक अग्नि-गुब्बारा लटकाया गया था। शाम को सात बजकर पन्द्रह मिनट पर इन्होंने उड़ान आरम्भ की थी। २० मिनट तक ये ठीक दिशा में उड़ते रहे। कुछ समय के लिए इनके गुब्बारे की गति रुकी और दस सैकंड के भीतर ही उसमें आग लग गयी। इस प्रकार लगभग १००० फुट ऊँचाई से ये दोनों साथी एकदम नीचे आ गिरे थे, जिससे दोनों की मृत्यु हो गयी।

'गुब्बारा–उड़ान' के प्रति भिन्न-भिन्न देशों में रुचि जाग्रत होने लगी थी। १७८५ ई० में कुस्तुनतुनियाँ राज्य में एक पारसी हकीम के एक गुब्बारा बनाने और इसकी सहायता से उड़ान करने का वर्णन मिलता है। स्पेन में एक फ़ौजी सर्जन ने उड़ान की और वह ७०० फ़ैदम (एक फ़ैदम ६ फुट के बराबर) तक ही पहुँचा था कि उसके गुब्बारे में आग लग गयी। गिरने से उसकी दोनों टाँगें टूट गयीं और काफी चोट लगी, परन्तु वहाँ के राजा के लड़के ने उसकी पेन्शन बाँध दी थी।

६. गुब्बारों के नियंत्रण का प्रयत्न

२८ नवम्बर, १७८३ ई० को अमेरिका में जेम्स विलकाक्सने पहली बार वायु-गुब्बारे की सहायता से उड़ान की थी। प्रोफेसर राबर्टसन ने १८०४ ई० में तथा जर्मनी में डाक्टर झुन्गयस ने कई सफल उड़ानें कीं। एक और कथन के अनुसार चीन को इस क्षेत्र में सबसे पहले आने का श्रेय है। इस प्रकार गुब्बारे विश्व के कोने-कोने तक फैल चुके थे। परन्तु इनके नियन्त्रण के लिए किसी सफल व्यवस्था का आविष्कार अब तक न हो सका था। इनमें जो त्रुटियाँ थीं उन्हें सब भलीभाँति जानते थे। ब्लांशार ने इस ओर कुछ ध्यान भी दिया, पर उसे अपने प्रयासों में सफलता न मिली। सबका ध्यान एक ही ओर आकर्षित था कि किसी प्रकार ऐसी व्यवस्था का आविष्कार हो जिससे इन गुब्बारों को नियन्त्रण में रखा जा सके और इनको अपनी इच्छानुसार मोड़ा जा सके तथा अपने स्थान पर वापस लाया जा सके।

जर्मनी के एक नागरिक मून्या ने इस दिशा में १७८४ ई० में कुछ प्रायोगिक सुझाव प्रेषित किये, जिनमें विशेष प्रकार के वायु-पेच की व्यवस्था भी सम्मिलित थी। इसको हाथ से घुमाने के कारण इससे जितनी शक्ति उत्पन्न होती थी वह वायु के नोद के लिए बहुत कम थी, जिसके फलस्वरूप इस व्यवस्था से गुब्बारों को इसकी सहायता द्वारा नहीं उड़ाया जा सकता था। परन्तु फिर भी मून्या के इस सुझाव ने इस समस्या को हल करने के लिए एक नया विचार दिया। इसके साथ ही उन्होंने गुब्बारों की आकृति का भी अध्ययन किया, क्योंकि वे समझते थे कि उड़ने में आकृति का भी मुख्य स्थान है। वह अपने

अध्ययन के फलस्वरूप इस परिणाम पर पहुँचे कि यदि गुब्बारों को लम्बी आकृति का बनाया जाय तो उड़ान में यह अधिक सहायक होंगे।

७. जार्ज कैलि के सिद्धान्त

इस क्षेत्र में अगला मुख्य और बड़ा कदम लंकाशायर के सर जार्ज कैलि (१७७३-१८५७) ने उठाया। इन्हें सर्वसम्मति से ब्रिटिश वैमानिकी का पिता माना जाता है। विंची की भाँति इन्होंने भी पक्षियों का बहुत ही सावधानी से अध्ययन किया था। इन्होंने १८०९-१० ई० में अपने विचार प्रकट करते समय कहा था–'मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य यात्रा और सामान ढोने के लिए वायुयात्रा को, समुद्री यात्रा से अधिक सुरक्षित समझेगा। वह वायु में २० से १०० मील प्रति घण्टे की चाल से उड़ान कर सकेगा और यह सब संभव है यदि एक ऐसी मशीन का आविष्कार हो सके जो उससे उत्पन्न शक्ति की सहायता से वायु-रोध के प्रति अपने भार को उठा सके।' सर कैलि ने वैमानिकी से संबंधित मूल सिद्धान्तों को विश्व के सामने रखा। उत्तल पंखों[1] का सुझाव भी इन्हीं का था। खेद की बात है कि कैलि जैसा महान् व्यक्ति भी जनता का विश्वास-पात्र न बन सका। गुब्बारों के आविष्कार और इनकी लोकप्रियता ने कैलि जैसे महान् पुरुषों को, जो उड़ान में यांत्रिक व्यवस्था लाने का प्रयत्न कर रहे थे, जनता के सहयोग से वंचित रखा। गुब्बारों की त्रुटियों को जानते हुए भी जनता के सम्मुख उड़ने का ही एक प्रायोगिक ढंग था, आखिर उसकी उड़ान में यांत्रिकी सम्बन्धी कोई रहस्य न था। सब पर यह भली प्रकार विदित था कि गुब्बारों की उड़ान का कारण उनका हलकापन है। उनका भार उस वायु से जिसका वह विस्थापन करते हैं बहुत हलका होता है। यह बात जानते हुए उनके लिए यह समझना बहुत कठिन था कि कोई भी चपटी मशीन, जिसका भार उस वायु से, जिसका वह विस्थापन करती हो, अधिक हो, वायु में उड़ सकेगी या अपने भार को थाम सकेगी। इतना होने पर भी कैलि अपने प्रयासों में लगे रहे। उन्होंने जो कुछ भी विश्व को वैमानिकी के सम्बन्ध में दिया, उसके महत्त्व की उपेक्षा नहीं की

1. Cambered wings

जा सकती। उनके दिये मूल सिद्धान्तों पर ही आगे चलकर विमान इत्यादि का निर्माण हुआ।

८. युद्ध में प्रयोग

एक ओर तो गुब्बारों का हवाई-यात्रा के लिए प्रयोग किया जा रहा था, दूसरी ओर इसमें प्राप्त सफलता ने मनुष्य को इससे युद्ध में काम लेने की प्रेरणा दी। सैनिक पर्यवेक्षण और सेना सम्बन्धी अन्य सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए इनको युद्ध में प्रयोग करने के प्रयास होने लगे। २६ जून १७९४ ई० को पहली बार बेलजियम के एक युद्ध में सेना सम्बन्धी सूचना प्राप्त करने के लिए कैप्टन कुतले ने कई घण्टे उड़ान की।

फ्रांसीसी सेना को विजय प्राप्त करने में इससे काफी सहायता मिली। फ्रांस और आस्ट्रिया के युद्ध में भी इन्हीं कैप्टन ने गुब्बारों का प्रयोग किया था। जर्मनों ने भी किसी सीमा तक इनका युद्ध में प्रयोग किया। उनके पास हैनरी काक्सवेल—जैसा एक महान् वैमानिक था। १८४८ ई० में इन्होंने बर्लिन में बन्दी-गुब्बारों की सहायता से सैनिक पर्यवेक्षण और इनसे दुश्मन पर विस्फोटक पदार्थ फेंकने की तकनीक का सफल प्रदर्शन किया। १८६२ ई० में इनको प्रयोग द्वारा ५०,००० घनफुट धारिता के बन्दी-गुब्बारे की युद्ध में पर्यवेक्षण और दुश्मन पर विस्फोटक पदार्थ फेंकने की उपयोगिता मालूम करने के लिए इंग्लैंड की सरकार ने नियुक्त किया। परन्तु वहाँ के सैनिकों ने इनके प्रति अधिक रुचि न दिखायी, अतः यह वापस जर्मनी चले गये। वहाँ पर कोलोन में दो जर्मन फ़ौजी टुकड़ियों को इन्होंने बन्दी-गुब्बारों के सम्बन्ध में शिक्षा दी। यह बात १८७० के फ्रांस-जर्मन युद्ध से कुछ पूर्व की है। उनके सिखाये हुए सैनिक गुब्बारों के प्रयोग में फ्रांसीसी सैनिकों की अपेक्षा अधिक निपुण थे। परन्तु इस युद्ध के फलस्वरूप पेरिस की नाकाबन्दी होने पर फ्रांसवालों ने गुब्बारों की एक सिविल-सर्विस का संचालन किया। इसका संचालन अधिकतर रात्रि के समय होता था। इन्होंने इस सर्विस के दौरान में लगभग ६६ गुब्बारे छोड़े। इनकी सहायता से १०० मुख्य और प्रसिद्ध नेता शहर से सुरक्षित स्थान पर बाहर भेजे गये। इसके अतिरिक्त

९ टन के लगभग डाक और ४०० सन्देशवाहक कबूतर भी भेजे गये थे। इन गुब्बारों में से सिर्फ सात अपने निर्दिष्ट स्थान पर न पहुँच सके। फिर भी इस क्षेत्र में यह एक बड़ी सफलता थी। अमेरिका के सिविल-युद्ध में भी बन्दी-गुब्बारों का प्रयोग किया गया। 'ब्रिटिश आर्मी' में भी एक बैलून विभाग खोला गया था जिसका प्रयोग १८८५ ई० में मिस्र और दक्षिण अफ्रीका में किया गया था।

इस समय के बन्दी-गुब्बारों को युद्ध में प्रयोग करना इतना आसान काम न था। एक गुब्बारे में गैस भरने में लगभग तीन घण्टे का समय लगता था। फौजों के साथ अम्ल की एक बड़ी गाड़ी और एक बहुत भारी भरकम गैसजनित्र तथा अन्य यन्त्र ले जाने पड़ते थे। युद्ध में इतना सामान साथ ले जाना कोई आसान बात न थी। इसके अतिरिक्त प्रचंड वायु में, इन पर नियन्त्रण न रख सकना इससे उत्पन्न कठिनाइयों को और भी उग्र रूप दे देता था। अन्तिम दोष तो १८९७ में एक जर्मन आफ़िसर फ़ॉन पारस फ़ॉल के आविष्कार से दूर हो गया। इन्होंने एक विशेष प्रकार की आकृति-वाले 'ड्रेशन' नाम के पतंग-गुब्बारे का अभिकल्प तैयार किया। हवा की दिशा में ही रहने के लिए इसमें मछली के तैरने के अंगों की आकृति-जैसे पंख लगाये गये थे, जिन्हें हम 'सिफना' कहते हैं। इसके कुछ समय पश्चात् गैस का संपीडन[1] कर सिलेण्डरों में भरने के नये ढंग के आविष्कार से गैस के परिवहन और गैस से गुब्बारों को भरने की कठिनाई काफी सीमा तक कम हो गयी। इस प्रकार के पतंग-गुब्बारों का १९१४-१९१८ ई० के युद्ध में दोनों ओर से काफी प्रयोग हुआ। धीरे-धीरे गुब्बारों का समय समाप्त हो रहा था। दूसरे विश्व युद्ध में इनका स्थान विमान इत्यादि ने ले लिया।

फ़ौजी दृष्टिकोण से बन्दी-गुब्बारों के ये आखिरी दिन थे। आज ये कहीं-कहीं खेल, मनोरंजन और अधिकतर मौसम सम्बन्धी अनुसन्धान कार्य के लिए ही प्रयोग में लाये जाते हैं। गेलूसाक और एत्यैन रॉबर्टसन ने १८०३ और १८०४ ईसवी में इस सम्बन्ध में बहुत ही महत्त्वपूर्ण उड़ानें कीं।

1. Compression

उन्होंने सिद्ध किया कि २२००० फुट की ऊँचाई तक वायु की व्याकृति और चुम्बक शक्ति में कोई परिवर्तन नहीं आता। हैनरी काक्सवेल ने भी इस उद्देश्य से कई उड़ानें कीं। ५ सितम्बर १८६२ ई० को वह लगभग ३७,००० फुट तक आकाश में गया। यह आश्चर्यजनक बात थी क्योंकि इस ऊँचाई तक विमान भी १९२७ ई० तक न जा सका था। और आज भी विश्व में ७२,३९५ फुट की ऊँची उड़ान के रिकार्ड का श्रेय मुक्त गुब्बारे (जिसका आयतन ३,७००,००० था) अमेरिकन एक्सप्लोरर II को ही है, हालाँ कि अब राकेट से चलनेवाले विमान इससे अधिक ऊँचाई तक जा सकते हैं।

तीसरा अध्याय

वायुपोत

१. आंशिक नियंत्रण की व्यवस्था

गुब्बारों ने मनुष्य के लिए उड़ान करना सम्भव बना दिया था। उस समय तक इस क्षेत्र में अच्छी प्रगति हो चुकी थी, परन्तु गुब्बारों में चालन की कोई यांत्रिक व्यवस्था नहीं थी। अब मनुष्य एक ऐसी मशीन का स्वप्न देख रहा था जिसमें इस प्रकार की व्यवस्था होती। कैलि ने सन् १८३७ ई० में एक ऐसी ही मशीन का प्रोजेक्ट तैयार किया जिसमें वाष्पशक्ति द्वारा उसके सुकान (रडर) और पंखों के संचालन की व्यवस्था की गयी थी। कुछ कारणों से वह अपने इस माडल के निर्माण में सफल न हुए। इनके पश्चात् इस कार्य को एक फ्रांसीसी, प्यैरे जूलियन ने अपने हाथ में ले लिया। परन्तु दुर्भाग्यवश वह अपने जीवन में अपने स्वप्न को साकार होते न देख सका।

सन् १७८३ ई० से १८५२ ई० तक स्वतः चालित गुब्बारों के निर्माण के अनेक असफल प्रयत्न किये गये। ये प्रयत्न इसलिए असफल कहे जाते हैं क्योंकि इनमें कोई यांत्रिक उपकरण न थे। अब तक गुब्बारों के संचालन के लिए भौतिक साधनों का प्रयोग किया जाता था, जैसे चप्पू इत्यादि। इस समस्या को हल करने का श्रेय हेनरी गिफरड को मिला। यह भी फ्रांसीसी था। इसने कैलि का अनुकरण किया और सन् १८५१ में ३५० पौंड के एक वाष्प-इंजन का आविष्कार किया जो तीन अश्वशक्ति का था। यह इंजन ११ फुट व्यास के पंखे को ११०० चक्र प्रति मिनट घुमा सकता था। अगले वर्ष उसने १४४ फुट लम्बी, ८८००० घनफुट आयतन और ४० फुट व्यास की उड़ने की एक मशीन बनायी और उसमें अपना ईज़ाद किया हुआ वाष्प-इंजन लगाया। इस प्रकार विश्व के इतिहास में पहली बार आंशिक नियन्त्रण की व्यवस्था से युक्त उड़ने की एक मशीन का सफल आविष्कार हुआ। उसने

इसमें हाइड्रोजन गैस भरी थी और २४ सितम्बर सन् १८५२ को इसमें ६ मील प्रति घण्टे की चाल से सफल उड़ान की थी। आश्चर्य की बात है कि इतनी सफलता प्राप्त होने पर भी वह इस क्षेत्र में और आगे न बढ़ सका। इस प्रकार की स्वतःचालित उड़ने की मशीनों को, जो वायु से हलकी गैस से भरी होती थीं और अपने उत्प्लावन[1] के कारण वायु में ठहर सकती थीं, 'एयरशिप' (वायुपोत) का नाम दिया गया।

२. पेट्रोल इंजन का प्रयोग

जर्मनी के एक इंजीनियर पॉल हैनलिन ने सन् १८७२ में वायुपोत की उड़ान में पहली बार पेट्रोल इंजन का प्रयोग किया। इसमें उसने सफल उड़ान की। सन् १८७२ में उसने दस मील प्रति घण्टे का अनधिकृत रिकार्ड स्थापित किया। अमेरिका भी इस क्षेत्र में हुई प्रगति में दूसरे देशों से पीछे न था। इन्हीं दिनों वहाँ के एक प्रोफेसर रिशेल ने एक छोटे से वायुपोत का निर्माण किया, जिसमें पैरों से संचालन करने की यांत्रिक व्यवस्था थी। ८ अक्टूबर, सन् १८८३ ई० को दो फ्रांसीसी भाइयों अल्बर्ट और गास्टन टिस-डियर ने ३७,५०० घनफुट आयतन के वायुपोत में उड़ान की। इसमें १५ अश्वशक्ति की विद्युत्-मोटर लगी थी। अब जिस वायुपोत का निर्माण हुआ उसमें विद्युत-शक्ति का प्रयोग होने लगा। यह इस ढंग का पहला वायु-पोत था।

इस दिशा में सम्पूर्ण रूप से सफल प्रयास सन् १८८४ में ई० सम्पन्न हुआ। इसका श्रेय चार्ल्स रेनार्ट और ए० सी० क्रेबस को है। ६६,००० घनफुट आयतन का यह वायुपोत विद्युत्-शक्ति द्वारा संचालित किया गया था। इसका आवरण चीनी-सिलक का था और इसका इंजन-घर बांस का था। इसमें ८ अश्व-शक्ति की विद्युत्-मोटर थी। यह 'ला फ्रांस' के नाम से प्रसिद्ध है। ९ अगस्त सन् १८८४ में इसका निर्माण करनेवालों ने इसमें पाँच मील की सफल उड़ान की थी। इसने १३ मील प्रति घण्टे की चाल से अपनी यह उड़ान सम्पन्न की थी। उड़ान करने के पश्चात् जब यह वापस आया तो

1. Floatation

दर्शकों के आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा। यह वायुपोत हवा के रुख से प्रभावित हुए बिना अपने प्रारंभिक स्थान पर वापस आ सकता था। इस सफलता ने और इस प्रकार की अन्य सफलताओं ने संसार के सम्मुख यह स्पष्ट कर दिया कि आकाश में वायुपोत की सहायता से सफल उड़ान करना संभव है।

३. तीन तरह के वायुपोत

वायुपोतों के संघटन के आधार पर इनको तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। जिस वायुपोत के खोल में कपड़े का गैसभरा थैला होता है और इसके कारण इसके आवरण की आकृति गैस के दाब पर निर्भर होती है, इस प्रकार के वायुपोत को अदृढ़ वायुपोत[1] कहते हैं। अर्ध-दृढ़ वायुपोत भी अपने आवरण की आकृति के लिए गैस और वायु के दाब पर निर्भर रहता था। इस प्रकार के वायुपोत के तल की लम्बाई के साथ-साथ धातु का बना एक गुंजक भी होता था। क्योंकि इन दोनों प्रकार के वायु-पोतों में इनके आवरण की आकृति गैस और वायु के दाब पर निर्भर होती है। इसलिए इनको दाब-वायुपोत[2] भी कहते हैं। दृढ़ वायुपोत[3] के आवरण का ढाँचा दृढ़ होता है जो गैस या वायु के दाब पर निर्भर नहीं होता।

एल्यूमिनयम धातु से बने खोलवाला 'डेविड श्वारज़' नाम का वायुपोत सन् १८९७ में जर्मनी में बनाया गया था। १३,००० घनफुट की धारिता के इस वायु पोत को दृढ़-वायुपोत का पहला माडल कहा जा सकता है। इसका आवरण भी एल्यूमिनयम धातु का था। इसमें गैसोलिन इंजन लगा था। दुर्भाग्यवश, गैस के निस्रवण के कारण यह अपनी पहली उड़ान में ही असफल रहा। इसके निर्माण से, इस क्षेत्र में दृढ़ और धातु-आवरण-युक्त वायुपोत के निर्माण सम्बन्धी नियमों का पता लगा।

४. सेन्तूज दूमो

इसी बीच में सेन्तूज़ दूमो भी इस ओर आकृष्ट हुआ। यह ब्राजील का था, किन्तु पेरिस में रहा करता था। इसने १४ अदृढ़ वायुपोतों का निर्माण

1. Non-rigid airship 2. Pressure airship 3. Rigid airship

किया, जिसमें से पहले वायुपोत का निर्माण सन् १८९८ में हुआ था। इनमें गैसोलिन इंजन का प्रयोग किया गया था। इन छोटे-छोटे सेन्तूज़ दूमो वायुपोतों ने कई अपूर्व सफल उड़ानें कीं और इस क्षेत्र में कई नये रिकार्ड भी स्थापित किये जिनसे इनके निर्माताओं को विश्व में ख्याति प्राप्त हुई। सन् १८९८ में इसने अर्हफ़िल स्तम्भ के चारों ओर सफल उड़ान करके १००,००० फ्रांक का ड्यूश पुरस्कार प्राप्त किया।

इन सफलताओं ने गुब्बारे की लोकप्रियता को शनैः-शनैः कम करना आरंभ किया और इसका स्थान वायुपोतों ने ले लिया। बीसवीं शताब्दी का आरम्भ सेन्तूज़ दूमो के इंजन से युक्त वायुपोत से हुआ। अब तक गुब्बारों के युग में उड़ान करते समय मनुष्य का जीवन मानों वायु की दया पर निर्भर रहता था। वास्तव में मनुष्य उड़ान नहीं करता था, वह गुब्बारे की सहायता से वायु में केवल तैरता भर था। इसमें सुधार लाने के प्रयासों में मनुष्य ने बहुत दिनों तक हाइड्रोजन गैस की प्लवन शक्ति और वाष्प में गाड़ी चलाने की शक्ति के योग से एक ऐसी व्यवस्था उत्पन्न करनी चाही जिसको गुब्बारों में लगाकर, इसकी उड़ान को अपने नियन्त्रण में रखा जा सके। सेन्तूज़ दूमो के पेट्रोल इंजन ने इस समस्या को हल किया। अब तक इसके हल करने में दो कठिनाइयों का अनुभव होता था। हाइड्रोजन गैस का शीघ्र आग पकड़नेवाला गुणधर्म और वाष्प इंजन जो बाह्य दहन इंजन होता है, का प्रयोग (इसमें चालक शक्ति को उत्पन्न करने के लिए आग जलाने की व्यवस्था इंजन से बाहर करनी पड़ती है) पेट्रोल इंजन में अग्नि और विस्फोट की सब प्रतिक्रियाएँ इंजन के भीतर ही होती हैं जिससे हाइड्रोजन गैस जैसी शीघ्र आग पकड़नेवाली गैस को आग लगने का कोई विशेष भय नहीं रहता। यह वाष्प इंजन की अपेक्षा भार में भी हलका था। अतः पेट्रोल और हाइड्रोजन के योग से बनी व्यवस्था के अन्तर्गत वायुपोतों से उड़ान की जाने लगी।

५. जेपलिन वायुपोतों का निर्माण

बीसवीं शताब्दी के पहले पच्चीस वर्षों में वायुपोत का निर्माण विश्व के लगभग तमाम मुख्य देशों में बड़ी प्रगति से हुआ। प्रारम्भ में इस प्रकार

का कार्य केवल निजी उद्योग तक ही सीमित था या वैमानिकी से सम्बन्धित आविष्कारक इसमें कुछ सहयोग दे रहे थे। ज्यों-ज्यों इनके प्रयास सफल होते गये राज्य सरकारों ने भी इसमें दिलचस्पी लेनी प्रारम्भ कर दी। धीरे-धीरे वायुपोत को युद्ध में भी सहयोग देना पड़ा। ज़ेपलिन की अध्यक्षता में जर्मनी की सशस्त्र सेना ने इसका सैनिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया और सन् १८७४ से ही ज़ेपलिन ने बड़े-बड़े जंगी वायुपोत बनाने की योजना पर सोच-विचार करना प्रारम्भ कर दिया। जेपलिन की इन योजनाओं में दीर्घ आकारवाले और अर्ध दृढ़-वायुपोत के अतिरिक्त ऐसे बड़े जंगी वायुपोत भी बनाने की योजना थी जिनका ढाँचा धातु का बना हो। जेपलिन जर्मन सेना का एक रिटायर्ड अफसर था। इसने अपना सारा समय दृढ़-वायुपोतों के निर्माण में व्यतीत किया।

सेन्तूज़ दूमो ने उड़ान सम्बन्धी विज्ञान को इतना आगे नहीं बढ़ाया, परन्तु अपने साहस, उत्साह और वीरता के कार्यों से विश्व में इनके विकास के प्रति एक जिज्ञासा-सी अवश्य उत्पन्न की। उसके लिए उड़ान एक खेल था, जिस समय वह मनोरंजक उड़ानों द्वारा विश्व में एक अजीब आकर्षण उत्पन्न कर रहा था। ज़ेपलिन जहाज़रानी गुब्बारों को दृढ़-वायुपोतों में बदलने की कल्पनाओं में जुटा हुआ था। नियमित ढंग से वह अपने पहले माडल के निर्माण में लगा हुआ था। इसको बनाने में दो वर्ष लगे। सन् १९०० में यह पूर्ण हुआ। ४००, ००० घनफुट आयतन का ४२० फुट लम्बा और ३८ फुट व्यास का यह वायुपोत भार में ९ टन का था। सिगार की आकृति की यह मशीन एल्यूमिनयम धातु से बनी थी। इसका आवरण सिल्क और लिननका था। इसमें २४ गर्डर थे जो उसकी नासा से पूँछ तक फैले थ और इसमें १६ घेरे थे। इन घेरों के बीच रबर के आवरण से युक्त कपड़े के थैलों में हाइड्रोजन गैस भरने की व्यवस्था थी। उसके नीचे के भाग में गुंजक घर था जिसका सम्बन्ध दो कोटरों से था। प्रत्येक कोटर में १६ अश्वशक्ति का एक-एक इंजन था। ये सुकान (रडर) द्वारा बाहर लगे पंखों से संबंधित थे। वायुपोत की नासा को ऊपर या नीचे की ओर झुकाकर ऊर्ध्व नियन्त्रण की व्यवस्था भी थी। इसमें कुछ कमियाँ भी थीं तथापि इस

वायुपोत के निर्माण ने ज़ेपलिन के अभिकल्प की व्यवहार्यता सिद्ध कर दी। इसकी पहली उड़ान में कुछ कठिनाई पड़ी, परन्तु दूसरी उड़ान में यह २० मील प्रति घण्टे की चाल से उड़ा। अपने इस कार्य में ज़ेपलिन को आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अतः इसने राज्य सरकार की स्वीकृति से लाटरी द्वारा अपने दूसरे माडल के लिए धन का उपार्जन किया। यह बात १९०५ ई० की है। यह माडल पहले से कुछ छोटा था, किन्तु इसमें उसकी अपेक्षा काफी सुधार हो गये थे। भार में यह पहले माडल से एक टन कम था। इसमें लगी ८५ अश्वशक्ति की मोटर पहले माडल में लगी १६ अश्व-शक्ति की मोटर से हलकी थी। पहली उड़ान में इसका एक पंखा खराब हो गया और नीचे आते समय इसके गैस के एक थैले को काफी क्षति पहुंची। दूसरी बार उड़ान करते समय यह एक झक्कड़ में फँस गया और नष्ट हो गया। परंतु ज़ेपलिन के उत्साह में इससे कोई कमी न पड़ी। उसने लाटरी द्वारा फिर धन इकट्ठा किया और अपने तीसरे माडल के निर्माण में लग गया। उसके साहस और सहनशीलता ने उसकी असफलताओं पर विजय पायी और उसका तीसरा माडल १९०७ ई० के अक्टूबर मास में बन कर तैयार हो गया। उसका विश्वास ठीक निकला। इस माडल ने ३० मील प्रति घण्टे की चाल से लगभग ६७ मील कीसफल उड़ान की। इन सफलताओं ने जर्मनी के लोगों के उत्साह और देशभक्ति को जाग्रत कर दिया, चन्दे इकट्ठे हुए, राज्य की ओर से सहायता मिली और इस प्रकार ज़ेपलिन को अपने चौथे माडल बनाने के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। ४४६ फुट लम्बा यह एक भारी भरकम वायुपोत था। अब तक के वायुपोतों में यह सबसे बड़ा था। उड़ान-क्षमतापरीक्षण में इसने २७० मील की उड़ान १२ घण्टे में की। कुछ समय बाद आग लग जाने के कारण यह नष्ट हो गया। परन्तु अब जर्मनी के लोगों को यह भलीभाँति विश्वास हो गया था कि वायुपोत परिवहन का एक अच्छा साधन बन सकता है। ज़ेपलिन वायुपोतों का निर्माण अब राष्ट्रीय योजना का एक अंग बन गया था।

इस प्रकार वायुपोत के निर्माण में जो विकास हुआ उसने अब एक अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण कर लिया था। किन्तु विश्व के जिन भिन्न-भिन्न देशों ने

इसमें सहयोग दिया उनमें जर्मनी, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और अमेरिका का मुख्य स्थान रहा। वायुपोत के निर्माण का विकास चार अवस्थाओं में हुआ है। पहली अवस्था मुक्त-गुब्बारों की है, इसके बाद अदृढ़-वायुपोत का युग आया। ये वायुपोत वास्तव में लंबी आकृति के मुक्त-गुब्बारे ही होते थे, अर्ध दृढ़ वायु-पोत का युग तीसरा युग था। दृढ़ वायुपोतों का युग विकास का चौथा चरण था। इसमें धातु के ढाँचे के बीच गैस के थैलों की व्यवस्था रहती थी और वायु-पोत के समस्त भाग इस ढाँचे से जुड़े रहते थे।

६. इंग्लैंड तथा फ्रांस के वायुपोत

प्रथम युद्ध से पूर्व वायुपोत के निर्माण के विकास में इंग्लैंड का योग बहुत कम था। हैनरी स्पैन्सर, डाक्टर बार्टन-जैसे कुछ वैमानिकों ने यहाँ की सर-कार को इस ओर आकृष्ट भी किया। सन् १९०७ से यहाँ की सरकार ने वायु-पोतों के निर्माण में दिलचस्पी लेनी आरम्भ की। सन् १९०७ से प्रथम युद्ध के आरम्भ तक इंग्लैंड में आठ दाब-वायुपोत ही बनाये गये थे। इनका आयतन २१,००० से १८०,००० घनफुट था।

उधर सेन्तूज़ दूमो के वायुपोतों के प्रदर्शनों के बाद फ्रांस में इनकी संरचना में कोई उल्लेखनीय घटना न हुई। हाँ, फ्रांस ने वायुपोत के प्रारम्भिक दिनों में काफी दिलचस्पी दिखायी थी। सन् १९०८ में लेबाड भाइयों ने 'जान' नामक वायुपोत का निर्माण किया। यह फ्रांस देश के ही एक अभिकल्प के आधार पर बनाया गया था। उस समय के वायुपोतों की अपेक्षा यह अधिक नया था। इसकी सफलता से प्रभावित होकर वहाँ के युद्ध-मंत्रालय ने कुछ बड़े वायुपोत बनाने की आज्ञा दी। इनकी सफलता देखकर अन्य कम्पनियों ने भी इस क्षेत्र में रुचि लेनी शुरू की। इन सब कम्पनियों ने घरेलू प्रयोग, निर्यात और फ्रांस सरकार के लिए काफी मात्रा में दाब-वायुपोतों का निर्माण किया।

अमेरिका में बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ही बहुत से छोटे-छोटे दाब-वायुपोतों[1] का निर्माण हो रहा था। इस क्षेत्र में केप्टन टामस एस० वाल्डविन

1. Pressure airships

और लिंकन बिचे के नाम उल्लेखनीय हैं। १९०३ में वाल्डविन ने 'केलिफ़ोरनिया एरो' नामक पहले व्यावहारिक वायुपोत का निर्माण किया। इस देश में वायुपोत-निर्माण का इतिहास ग्रेट ब्रिटेन से भिन्न है। १९०८ में यहाँ के युद्ध-विभाग ने एक फ्रांसीसी कम्पनी से २०,००० घनफुट आयतन का एक अदृढ़ वायुपोत खरीदा। सन् १९०७ और सन् १९०९ में वाल्टर वैलमैन ने वायुपोत से अमेरिका से उत्तरी ध्रुव जाने की और सन् १९१० में अटलांटिक महासागर को पार करने की कोशिश की थी। लेकिन वह इन दोनों प्रयासों में असफल रहा। ऐसे ही प्रयास अन्य लोगों ने भी किये। अटलांटिक महासागर को पार करते हुए १५ मील की उड़ान के पश्चात् १९१२ में मेलविले वनीमेन के वायुपोत में आग लग गयी। इसमें मेलविले बनीमेन अपने पाँच साथियों के चालक दल समेत जलकर भस्म हो गया। इस प्रकार १९१६ तक इस क्षेत्र में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। सन् १९१७ में अमेरिकी जलसेना के प्रयोग के लिए डी० एन०–१ के, जिसे बाद में ए–१ का नाम भी दिया गया, निर्माण का कार्य आरम्भ हुआ। यह १७५ फुट लम्बा तथा ११४, ८०० घनफुट आयतन का था। इस वायुपोत में से गैस अधिक मात्रा में निकल जाती थी, इसलिए इससे केवल तीन उड़ानें ही की गयीं और बाद में यह छोड़ दिया गया।

रूस ने प्रथम युद्ध से पूर्व फ्रांस से कुछ अदृढ़-वायुपोत लिये और इसने भी इसमें रुचि लेनी आरम्भ कर दी थी, लेकिन इसके बाद सन् १९३१ तक रूस में इस ओर किसी प्रकार की कोई रुचि नहीं दीख पड़ती। जापान, स्विटज़रलैण्ड-जैसे अन्य देश भी धीरे-धीरे इस क्षेत्र में आये, किन्तु इन देशों के प्रयास वैमानिकी के इतिहास में महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। इटली ने अर्ध-दृढ़ वायुपोत के निर्माण में ही दिलचस्पी ली। शीघ्र ही इसे इसमें नेतृत्व मिल गया। प्रथम युद्ध से पूर्व जनरल ए० क्राको और रिकाल्डानी ने १६६,००० और ४२४,००० घनफुट आयतन के अभिकल्प बनाये जिसके आधार पर इन वायुपोतों का निर्माण भी हुआ। इन्हें पी० और एम० वर्ग के वायुपोत कहा जाता है। युद्ध में बममारी क्षमता की वृद्धि के लिए अदृढ वायुपोतों का निर्माण हुआ।

७. प्रथम विश्वयुद्ध में प्रयोग

प्रथम विश्वयुद्ध ने वायुपोत के विकास में महत्त्वपूर्ण सहायता की। जर्मनी के ज़ेपलिनों की बममारी ने वायुपोत के प्रश्न को राजनीतिक रूप प्रदान किया। वायुपोतों को युद्ध का अच्छा साधन माना जाने लगा था। पहले विश्व-युद्ध में दोनों ओर से इनका दिल खोलकर प्रयोग किया गया। ज़ेपलिन वायुपोत अत्यन्त शक्तिशाली थे। इनमें काफी बोझ ले जाने की सामर्थ्य थी। जर्मनी की वायु-सेना तथा जल-सेना में इनका काफी प्रचार था। जर्मनी में ज़ेपलिन के अतिरिक्त अन्य कम्पनियाँ भी इनके निर्माण की ओर अग्रसर हुईं। मेजर अगस्त फ़ान पारसफाल ने २८ दाब-वायुपोतों में से पहले वायुपोत का निर्माण सन् १९०६ में किया। यह कार्य सन् १९२९ तक चलता रहा। सन् १९०७ से सन १९१३ तक मेजर फ़ान ग्रास और निकोलस बाज़ेनाक ने जर्मन सरकार के लिए अर्ध-दृढ़ वायुपोतों का निर्माण किया। परन्तु दृढ़-वायपोतों के क्षेत्र में जेपलिन कम्पनी का ही आधिपत्य रहा। इससे प्रतिस्पर्धा केवल एक कम्पनी की थी। यह जान शूट और हाइनरि लान्ज के नाम से प्रसिद्ध थी। इस कम्पनी ने अपने पहले दृढ़-वायुपोत का निर्माण सन् १९११ में किया। ७००,००० घनफुट आयतन और ४३० फुट लम्बाई का यह वायुपोत पचास मील प्रति घण्टे की चाल से उड़ान कर सकता था।

ज़ेपलिन की सफलता से सन् १९१० में एक परिवहन कम्पनी 'डिलोग' का जन्म हुआ जो वाणिज्य और मनोरंजन के लिए उड़ानों की व्यवस्था करती थी। अपने पाँच वर्ष के जीवन में इसके ज़ेपलिन वायुपोतों ने लगभग १६०० उड़ानें कीं और इनसे ३७,२५० यात्रियों ने सफल तथा सुखद यात्राएँ कीं। इस प्रकार पहले विश्व-युद्ध में ज़ेपलिन के चार संयंत्रों ने ८८ ज़ेपलिनों का निर्माण किया जिनसे सैनिक पर्यवेक्षण तथा लड़ाई के कार्यों में सहायता ली गयी। इस बीच ऐसे अदृढ़-वायुपोतों का निर्माण भी हो रहा था जो तीस मील प्रति घण्टे की चाल से उड़ान कर सकें। इसके साथ-साथ वायुपोत से सम्बन्धित अन्य पक्षों का भी सुधार हो रहा था।

फ्रांस ने प्रथम विश्व-युद्ध में ७०,६०० से ५०१,००० घनफुट आयतन

के ३० वायुपोतों का निर्माण किया। फ्रांस की स्थल सेना के पास युद्ध के दिनों में १६ वायुपोत थे। इसने सन् १९१७ में युद्ध में वायुपोत का प्रयोग बन्द कर दिया और अपने बचे हुए आठ वायुपोतों को जलसेना के सिपुर्द कर दिया। फ्रांस की जल-सेना के पास इनके अतिरिक्त ५२ वायुपोत और थे।

ब्रिटेन में ज़ेपलिन के आधार पर सन् १९११ में 'मेफ़्लाई' नाम का एक वायुपोत बनाया गया। उसी वर्ष इसके अपने शेड से निकलते समय दो टुकड़े हो गये। इस क्षति से इस देश में दृढ़-वायुपोत का निर्माण कार्य सन् १९१४ तक रुका रहा। प्रथम विश्व युद्ध में इनके बनाने का काम पुनः आरम्भ किया गया। सन् १९१४-१८ तक युद्धकार्य के लिए सात अदृढ़-वायुपोत बना लिये गये। ये आयतन में ६०,००० से ३६०,००० घनफुट के लगभग के थे। इन वायुपोतों की चाल प्रति घण्टे ५८ मील तक की थी। ब्रिटेन ने सन् १९१४ से सन् १९१८ तक कुल मिलाकर २०७ अदृढ़-वायुपोतों का प्रयोग किया था। केवल जून १९१७ से अक्तूबर १९१८ के बीच ५६ वायुपोतों ने युद्ध-कार्य में भाग लेते समय ५९,७०४ घण्टे की उड़ानें की थीं। युद्ध की समाप्ति पर, अदृढ़-वायुपोत का निर्माण-कार्य भी लगभग बन्द हो गया। सन् १९२९ में केवल ए० डी–१ नामक ६०,००० घनफुट आयतन का एक ब्लिम्प वायुपोत बनाया गया।

सन् १९१४ में दृढ़-वायुपोतों के निर्माण की भी व्यवस्था की गयी। आर–९ पर काम शुरू हुआ जो तीन वर्ष बाद तैयार हो गया। इसके बाद आर–२३ वर्ग के ६ दृढ़-वायुपोतों पर काम शुरू किया गया। आर–३१ व आर–३२ नाम के दो वायुपोतों के निर्माण-कार्य में इनका अनुसरण किया गया। इन दोनों की संरचना में लकड़ी का प्रयोग किया गया। सन् १९१६ में इंग्लैण्ड की सेना ने, जर्मनी के ज़ेपलिन एल–३३ को गिराकर इसको अपना माडल बना, इसके आधार पर आर–३३, आर–३४ का निर्माण कराया। यह सन् १९१९ में बनकर तैयार हुआ। इनकी संरचना और उड़ान-क्षमता महत्त्व-पूर्ण थी। उसी वर्ष आर–३४ ने अटलांटिक महासागर को पार करके अपनी उड़ान-क्षमता का सफल प्रदर्शन किया। प्रथम युद्ध में अमेरिका में भी अदृढ़-वायुपोत के विकास पर अधिक ध्यान दिया गया। सन् १९१७-१८ में जल

सेना के लिए ७७,००० से ८४,००० घनफुट आयतन के 'बी' वर्ग के १५ अदृढ़-वायुपोतों का निर्माण हुआ। इसके पश्चात् 'सी' वर्ग के ३० वायुपोत बनाने की आज्ञा दी गयी। युद्ध-विराम के पश्चात् इसकी संख्या दस कर दी गयी। इस प्रकार का पहला वायुपोत सन् १९१८ के सितम्बर मास में तैयार हुआ। इस समय वहाँ पर तीन कम्पनियाँ इस क्षेत्र में मुख्य थीं—गुडइयर टायर एण्ड रबर कम्पनी, गुडरिश टायर एण्ड रबर कम्पनी तथा कनैक्टीकट एयर क्राफ्ट कम्पनी। सन् १९१९ में सी–५ नाम के वायुपोत ने अटलांटिक महासागर को पार करने का प्रयत्न किया, लेकिन २३ घण्टे की उड़ान के पश्चात् हवा के तेज़ झोंकों से यह टुकड़े-टुकड़े होकर गिर गया।

गुडइयर तथा गुडरिश कम्पनियों ने 'डी' वर्ग के पांच वायुपोत बनाये, ये १८९,००० घनफुट आयतन के थे। सन् १९१८-१९ में गुडइयर ने तीन छोटे अदृढ़-वायुपोतों का निर्माण किया। इनमें एक इंजन था। इन वायुपोतों में से दो तो (इ–१ तथा एफ–१) जलसेना ने खरीद लिये। सन् १९१९ में 'जी' वर्ग के अभिकल्प पर केवल एक वायुपोत बनाया गया। सन् १९२३ में २,१४८,००० घनफुट आयतन के 'शेनानडाह' नाम के वायुपोत का निर्माण हुआ। इसमें हाइड्रोजन के स्थान पर हिलयम गैस का प्रयोग किया गया था। अनेक सफल उड़ानों के पश्चात् यह १९२५ ई० में ओहियो में गिरकर नष्ट हो गया।

इस प्रकार प्रथम विश्व-युद्ध के कारण वायुपोत सम्बन्धी निर्माण-कार्य में काफी प्रगति हुई। इनके निर्माण में विशिष्ट सुधार भी हुए। फ्रांस के दाब-वायुपोतों में फौज़ी मिशन उड़ान करते थे। इटली के अर्ध दृढ़-वायुपोत का भी युद्ध में प्रयोग हुआ। अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन भी युद्ध में यू-नौका की समस्या को इनकी सहायता से हल कर रहे थे। इस प्रकार सन् १९१४-१८ तक वायुपोत के निर्माण-कार्य में असामान्य प्रगति हुई।

८. युद्ध के बाद वायुपोतों का निर्माण

युद्ध के पश्चात् वर्सेलीज़ की सन्धि के अनुसार जर्मनी के हार जाने के कारण, ज़ेपलिन कम्पनी के वायुपोत-निर्माण पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

इसके साथ यह आज्ञा भी दी गयी कि जो वायुपोत उसके पास उस समय थे उनको जीतनेवाले देशों में बाँट दिया जाय। सन् १९१८ में जर्मनी की हार के समय बहुत से वायुपोतों को उनके चालक दलों ने नष्ट कर दिया जिससे वे विजेता देशों के हाथ न पड़े। जो बाकी बचे थे वे विजेता देशों में बाँट दिये गये।

इन ज़ेपलिन वायुपोतों तथा अन्य अपने बनाये गये वायुपोतों की सहायता से अमेरिका, फ्रांस, इटली और ग्रेट ब्रिटेनने दृढ़-वायुपोत के निर्माण-कार्य को सँभालना शुरू किया। सन् १९२० से सन् १९३० के बीच में वैमानिकी क्षेत्र में इसी का बोल-बाला रहा। इटली को युद्ध के बाद जर्मनी से तीन ज़ेपलिन मिले। फिर भी वहाँ के लोगों ने वायुपोतों के निर्माण की संभावना पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। ठीक प्रकार से प्रयोग में न लाने के कारण इनमें से दो ज़ेपलिन इटली में आने के पश्चात् एक वर्ष के भीतर ही टूट गये। फ्रांस को जर्मनी से तीन ज़ेपलिन मिले थे। इनमें से एल–७२ नाम के ज़ेपलिन ने सन् १९२३ में उड़ान-क्षमता का ११८ घण्टे ४१ मिनट का रिकार्ड स्थापित किया। फ्रांस सरकार ने युद्ध के पश्चात् दृढ़-वायुपोतों के निर्माण में काफी दिलचस्पी दिखायी। इस देश में इस प्रकार का अब तक केवल एक वायुपोत सन् १९१२ में ज़ाडिक सोसाइटी ने बनाया था। इसका नाम 'स्पीस' था, परन्तु इस लकड़ी के दृढ़-वायुपोत को अधिक सफलता न मिली।

समझौते के फौरन बाद ज़ेपलिन कम्पनी ने दो वाणिज्य वायुपोतों का निर्माण किया। सन् १९२१ में इनमें से एक इटली और दूसरा फ्रांस देश को मिला। सन् १९२३ के दिसम्बर मास में फ्रांस का 'डिक्समूड' नाम का दृढ़-वायुपोत उड़ान करते समय पूर्ण रूप से नष्ट हो गया। इस दुर्घटना ने फ्रांस में दृढ़-वायुपोत के निर्माणकार्य को समाप्त-सा कर दिया।

सन् १९२१ में इटली ने १,२४०,००० घनफुट आयतन का अर्धदृढ़ वायुपोत 'रोमा' अमेरिका को बेचा। इसकी लम्बाई ४१० फुट थी। २१ फरवरी सन् १९२२ को अपनी परीक्षण उड़ान में यह आग लगने के कारण नष्ट हो गया। 'रोमा' में आग लगने का कारण उसमें भरी हुई हाइड्रोजन

गैस थी। इस घटना के पश्चात् अमेरिकी जलसेना और स्थल सेना ने अपने वायुपोतों में हिलयम गैस का ही प्रयोग किया। अमेरिका में पहली बार इस गैस का प्रयोग दिसम्बर सन् १९२१ में सी–७ वायुपोत में हुआ था।

अमेरिकी जलसेना दृढ़ वायुपोत के विकास से सम्बन्धित रही है। सन् १९१९ में इसने ज़ेपलिन एल–४९ के माडल पर, २१०१५, १७४ घनफुट आयतन के एक दृढ़वायुपोत के निर्माण का काम अपने हाथ में लिया। इसे एयर क्राफ्ट फैक्टरी ने सम्पन्न किया। इसमें हिलयम गैस के प्रयोग करने की व्यवस्था थी। इसने पहली उड़ान ४ सितम्बर सन् १९२३ को की। इसके पश्चात् अनेक महत्त्वपूर्ण उड़ानों में इसने भाग लिया जिसमें अटलांटिक महासागर को पार करने के लिए ९००० मील की सफल उड़ान भी शामिल है। १३ दिसम्बर सन् १९२५ को आँधी में फँसकर यह टूट गया। उधर इंग्लैंड में दो दृढ़-वायुपोत आर–८० तथा आर–३६, सन् १९२० तथा सन् १९२१ में प्रयोग में लाये गये। इनका अनुकरण आर–३८ ने किया जो बाद में अमेरिका ने खरीदा। इससे अमेरिका में दृढ़-वायुपोत सम्बन्धी ब्रिटिश तकनीक सीखने का अवसर मिला। अपनी परीक्षण उड़ान करते समय २४ अगस्त सन् १९२१ के दिन यह टूट कर हम्बर नदी में गिर गया था। इस दुर्घटना से ब्रिटिश वायुपोत को बहुत क्षति पहुँची। ज़ेपलिन कम्पनी ने अमेरिका के लिए काम आरम्भ कर दिया था। अक्टूबर सन् १९२४ को एलजैड–१२६, जिसे बाद में 'लांस एजेल्स' का नाम मिला, अमेरिका को भेजा गया। इसका आयतन १,२४७०,००० घनफुट था। युद्ध के हरजाने में जर्मनी को जो कुछ देना था वह उसी का अंश था। अमेरिका में इससे अनुसन्धान-कार्य में काफी सहायता ली गयी। १९३२ में ४३२० घण्टे की ३३१ उड़ानों के पश्चात् इससे काम लेना बन्द कर दिया और सात वर्ष बाद इसे तोड़ दिया गया। अमेरिका की गुडइयर कम्पनी ने सन् १९२४ में जर्मन की ज़ेपलिन कम्पनी के अधिकारों और उसमें काम करनेवालों की सेवाएँ प्राप्त कर लीं। इसका नाम 'गुडइयर ज़ेपलिन कारपोरेशन' पड़ा। सन् १९२८ में इस कारपोरेशन ने अमेरिकी जल-सेना के लिए ६,५००,००० घनफुट आयतन के दो दृढ़-

वायुपोत बनाना आरम्भ किया। इनमें ७२ नौट चाल की क्षमता थी। इनके इंजन ५६० अश्वशक्ति के थे। इनका नाम 'अक्रोन' तथा 'मेकान' था। 'अक्रोन 'सन् १९३१ में तैयार हुआ और १२०० घण्टों की सर्विस के पश्चात् ४ अप्रैल सन् १९३३ को एक तूफान में फँस कर नष्ट हो गया। 'मेकान' १२ फरवरी सन् १९३५ को अपने सिफने (फिन) के ऊपरी भाग में गड़बड़ होने तथा अधिक मात्रा में गैस का निस्रवण होने और ऊपरी ढाँचे के ढह जाने के कारण समुद्रतल में बैठ गया। इसके चालक दल में से केवल दो बच पाये।

अब अमेरिकी जलसेना के पास कोई युद्ध का दृढ़-वायुपोत न बच रहा था। प्रथम और द्वितीय युद्ध के बीच अमेरिका में गुड इयर कम्पनी ने सिविल सर्विस आरम्भ की। आरम्भ में इसने केवल वाणिज्य और विज्ञापन की दृष्टि से ब्लिम्पों का ही प्रयोग किया। सन् १९२५ में इसने इसमें हिलयम गैस युक्त अदृढ़-वायुपोतों को भी सम्मिलित कर लिया। द्वितीय युद्ध के आरम्भ में अर्थात् सन् १९४२ के लगभग इस कम्पनी को अपना बेड़ा जलसेना को देना पड़ा। इस समय तक इसने १५२,४४१ उड़ानें कर ली थीं और ४०७,१७१ यात्रियों को यात्रा की सुविधा दी थी। सन् १९३५ में 'मेकान के नष्ट होने के साथ ही अमेरिका में दृढ़-वायुपोत के निर्माण में दिलचस्पी समाप्त हो गयी।

सन् १९२४ में ब्रिटिश सरकार ने अब तक के अपने परीक्षणों से लाभ उठाते हुए ५,०००,००० घनफुट आयतन के दो वायुपोत बनाने का आर्डर दिया। ये आर–१०० तथा आर–१०१ के नाम से प्रसिद्ध हुए। सन् १९२९ में ये तयार हो गये। ये ७० मील प्रतिघण्टा की चाल से उड़ान कर सकते थे। इनमें चालक दल के अतिरिक्त १०० यात्रियों के बैठने की व्यवस्था थी। यह दृढ़-वायुपोत ज़ेपलिन के सुधरे हुए माडल पर बनाये गये थे। आर–१०० के दो वर्ष के जीवन में कोई उल्लेखनीय बात न हुई। सन् १९३० ईसवी में इसने क्विबिक से मांटरियल तक ७८ घण्टे में उड़ान की, यही दूरी वापसी में इसने ५८ घण्टे में तय की। आर–१०१ में पाँच डिजल-इंजनों का प्रयोग किया गया था। इसमें उद्भार क्षमता अधिक थी। ५

अक्टूबर, सन् १९३० ई० को भारत आने के लिए इसने उड़ान आरम्भ की। इसी उड़ान में फ्रांस के समीप एक पहाड़ी पर, यह आँधी में फँस गया और आग लगने के कारण ४६ मनुष्यों सहित नष्ट हो गया। इस प्रकार ग्रेट ब्रिटेन के वायुपोत सम्बन्धी अन्य प्रोग्राम भी ठप्प पड़ गये।

९. द्वितीय महायुद्ध के पूर्व की स्थिति

इधर ज़ेपलिन कम्पनी ने पुनः काम शुरू कर दिया था। इसके बनाये तमाम वायुपोतों में 'ग्राफ़ ज़ेपलिन' (एल जेड–१२७) बहुत प्रसिद्ध हुआ। यह सन् १९२८ में बना था। इसने सन् १९२९ में विश्व की परिक्रमा की और २१,००० मील की दूरी २१ दिन और साढ़े सात घण्टे में तय की। यह उड़ान का एक रिकार्ड था। मार्च सन् १९३२ से जर्मनी और दक्षिण अमेरिका के बीच इसकी सहायता से हवाई सर्विस आरम्भ हुई और इसने अपने नौ वर्ष के जीवन में ५९० उड़ानें कीं। इनमें १४४ बार अटलांटिक महासागर को पार करनेवाली उड़ानें भी सम्मिलित हैं और १३,००० घण्टों से कुछ अधिक समय में १०,५३,३९१ मील की उड़ान की। इसके अतिरिक्त २७,००० से अधिक यात्रियों को यात्रा की पूरी सुविधा दी। इसके फौरन बाद सन् १३३६ में (एल जेड–१२९) हिडनवर्ग का निर्माण किया गया। इसमें ५० यात्रियों को तथा १०,००० पौंड भार ले जाने की व्यवस्था की गयी थी। इसका आयतन ७०,६३,००० घनफुट था। ८४ मील प्रति घण्टे की चाल से यह उड़ान कर सकता था। इसकी सहायता से सन् १९३६ में उत्तरी अटलांटिक के आर-पार जाने के लिए वाणिज्य सर्विस का आरम्भ हुआ। इसने अपनी १० उड़ानों में लगभग १००२ यात्रियों को जर्मनी और अमेरिका के बीच यात्रा करायी। ६ मई, सन् ३७ को लेकहर्सट के स्थान पर इस हाइड्रोजन गैस युक्त वायुपोत में आग लग गयी। इसी वर्ष 'ग्राफ़ ज़ेपलिन' (एल जेड–१२७) का संचालन भी बन्द कर दिया गया, परन्तु जर्मनी में इस दुर्घटना से वायुपोत सम्बन्धी प्रोग्राम में कोई विशेष कमी न पड़ी।

सन् १९३८ में (एल जेड–१३०) जिसे ग्राफ़ ज़ेपलिन का ही नाम दिया

गया, तैयार किया गया । शुरू में इसे हिलयम गैस से भरने की योजना थी, पर राजनीतिक परिस्थितियों के कारण, इसमें सफलता न मिली । अतः हाइड्रोजन गैस की सहायता से ही इसमें कुछ परीक्षण किये गये। जर्मन सरकार की आज्ञा से सन् १९३९ ईसवी में ज़ेपलिन कम्पनी ने वायुपोत-निर्माण-कार्य बन्द कर दिया और एल जेड–१३० तथा एल० जेड० १२७ को सन् १९४० में तोड़ दिया।

सन् १९३१ में पहली बार रूस में इस सम्बन्ध में कुछ सूचना प्राप्त हुई जब एक वायुपोत प्रोग्राम के निमित्त १५,०००,००० रूबल चन्दे के सम्बन्ध में घोषणा की गयी। दूसरी पंचवर्षीय योजना में सोवियत संघ के भीतर ही वायुपोत सिविल सर्विस की योजना रखी गयी। इसकी सफलता के लिए इटली से एक अर्धदृढ़-वायुपोत के विशेषज्ञ की सेवाएँ प्राप्त की गयीं। यह ध्यान देने की बात है कि इटली में सरकारी तौर पर सन् १९२७ में वायुपोत सम्बन्धी प्रोग्राम समाप्त कर दिया गया था। रूस में इसके फलरूप कुछ दाब-वायुपोतों का निर्माण हुआ। सन् १९३३ में १३०४,६२० घनफुट आयतन के वाणिज्य वायुपोत की योजना बनायी गयी जो सफल न हुई । वहाँ के डीरिजिबल निर्माण ट्रस्ट ने सन् १९३६ में अर्धदृढ़ डी. पी–९ के निर्माण का कार्य आरम्भ किया। इसका आयतन ८८२,८२९ घनफुट था। सन् १९३७ में अमेरिकी वायुपोत उद्योग के अध्ययन के लिए एक रूसी कमीशन अमेरिका भेजा गया। उसी वर्ष सितम्बर में ६५०,००० घनफुट आयतन के अर्धदृढ़ वायुपोत वी–६ ने उड़ान क्षमता में १३० घण्टे २७ मिनट का रिकार्ड स्थापित किया। अमेरिका में नवम्बर १९४६ में एक ब्लिम्प वायुपोत ने इससे ४० घण्टे अधिक का नया रिकार्ड स्थापित किया। यह सन् १९३८ में नष्ट हो गया।

मई सन् १९३८ में रूस के वी–१० ने मास्को में अपनी परीक्षण उड़ानें शुरू कीं। द्वितीय युद्ध में हमें रूस के वायुपोतों के बारे में कुछ सुनायी नहीं पड़ा। सन् १९४५ में यह उद्घाटन किया गया कि विक्टरी नाम के एक रूसी वायुपोत ने काले महासागर पर ८० घण्टे की प्रदर्शन उड़ान की। नवम्बर, सन् १९४६ में एक और रूसी वायुपोत 'पेट्रोमेट' के सम्बन्ध में सूचना

मिलती है। कहा जाता है कि यह दो इंजनवाला वायुपोत १२ यात्रियों को ले जा सकता था। रूस में हिलयम गैस के उद्गम स्थान है। सम्भव है कि वहाँ के वायुपोतों में इसी गैस का प्रयोग होता रहा हो।

फ्रांस में प्रथम युद्ध की सामग्री से सन् १९३७ ई० तक इस क्षेत्र में कुछ हलचल रही। इस बीच में जो भी वायुपोत बने उनका एक मात्र श्रेय, फ्रांसीसी कम्पनी 'ज़ाड़िक' को मिलता है। सन् १९२४ से सन् १९३७ तक इसने वहाँ की जलसेना के लिए चार अर्धदृढ़ तथा छः अदृढ़-वायुपोत बनाये। इनमें सबसे छोटा १३०,००० तथा सबसे बड़ा ३५०,००० घनफुट जायतन का था। सन् १९३७ में फ़्रांस में वायुपोत सर्विस बन्द कर दी गयी। सन् १९३६ में इस कम्पनी ने फ्रांसीसी सेना के लिए ३५,००० घनफुट आयतन का मोटर युक्त एक निरीक्षण–बैलून तैयार किया। इस प्रकार की मशीनें अधिक मात्रा में बनने लगीं। सन् १९४० के अकेले मई मास में २१ मशीनें बनायी गयीं।

अगले मास द्वितीय विश्वयुद्ध में हार जाने के साथ ही इनका निर्माण बन्द हो गया। जर्मनी ने इन मशीनों को रूस के विरुद्ध प्रयोग किया। फ्रांस की हार और इसके पुनः स्वतन्त्र होने के पश्चात् फ्रांस में जो वैमानिक योजनाएँ बनी उनमें वायुपोत के सम्बन्ध में कोई योजना न थी। सरकारी या निजी कम्पनियों ने इसके पश्चात् कोई भी वायुपोत नहीं बनाया।

द्वितीय युद्ध में मित्र राष्ट्रों ने ज़ेपलिन कारखानों को नष्ट कर दिया था। युद्ध के समाप्त होने पर इस क्षेत्र में केवल दो राष्ट्र रह गये थे—रूस, जिसके सम्बन्ध में कुछ अधिक ज्ञान प्राप्त नहीं है और अमेरिका, जहाँ सैनिक ब्लिम्प स्क्वैड्रान की व्यवस्था पर अधिक जोर दिया गया। युद्ध के दौरान में भी अमेरिकी सैनिक अधिकारियों ने भिन्न-भिन्न वर्गों के १६८ वायुपोतों का प्रयोग किया था। सन् १९४५ में अमेरिका ने युद्ध समाप्त होने पर अपने वायुपोत के युद्ध के बेड़ों की संख्या को कम करके दो कर दी। नवम्बर २, सन् १९४६ को एक अमेरिकी वायुपोत ने उड़ान क्षमता में १७० घण्टे १७ मिनट का विश्व रिकार्ड स्थापित किया। १९४६ में अमेरिका में सिविल वायुपोत सर्विस का पुनः आरम्भ हुआ।

अब वायुपोत पूर्ण विकसित हो चुके थे। इनको और आगे ले जाने में कुछ कठिनाइयों का अनुभव हो रहा था जिनमें से मुख्य ये थीं—

क—इनके सुचालन में असुविधाएँ।

ख—इनको आँधी में उड़ान करते समय ज़ोखिम।

ग—इनके बनाने में अधिक लागत।

घ—इनमें आग लगने का डर।

अन्तिम कठिनाई हिलयम गैस के आविष्कार ने हल कर दी है, परन्तु यह गैस अमेरिका में अधिक मात्रा में है और दूसरे देशों के लिए इस गैस को वहां से प्राप्त करना इतना सुविधाजनक न होने के कारण यह समस्या लगभग वैसी ही बनी हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि वायुपोत का समय समाप्त हो गया है और शायद नये आविष्कारों के मैदान में आने के पश्चात् अब ये कभी भी पूर्ववत् लोकप्रियता को प्राप्त न कर सकेंगे।

चौथा अध्याय

विमान का युग

१. उड़ान की दो भिन्न रीतियाँ

मनुष्य उड़ान की समस्या को अब तक दो भिन्न रीतियों से हल करता रहा। हम पहले कह चुके हैं ये दोनों रीतियाँ भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों पर आश्रित रहीं, पहले तो मनुष्य गुब्बारों तथा वायुपोत-जैसी वायु से हलकी मशीनों की ही सहायता से उड़ानें करता रहा था और उसके बाद उसने हवा में भारी मशीनों का प्रयोग किया। इन मशीनों को विमान कहा गया है। लिओनार्डो डा विंची के बाद अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक वायुगतिकी के क्षेत्र में कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं हुई। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में वैमानिकी के जनक सर जार्ज केलि ने माडल-विमानों की सहायता से अनेक प्रयोग किये। इनका दृढ़-पंखों का सिद्धान्त इन्हीं प्रयोगों पर आश्रित है। इन्होंने अनुभव किया कि परतोंल[1] पंखों की सहायता से मनुष्य उड़ान में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। इन्होंने अपने सिद्धान्त की पुष्टि के लिए एक माडल-विमान का निर्माण किया। यदि इस समय तक पेट्रोल इंजन का आविष्कार हो चुका होता तो सम्भवतः मशीनी उड़ान में सबसे पहले सफलता प्राप्त करने का श्रेय केलि को ही मिलता। सन् १८१० में एक अंग्रेज टामस वाकर ने वायुगतिकी पर एक पुस्तक प्रकाशित की जिससे विमानों के अभिकल्प सम्बन्धी ज्ञान में काफी वृद्धि हुई। सैम्यूल हैनसन ने इसका अनुकरण किया और इसके आधार पर माडलग्लाइडर की सहायता से प्रयोग किये। इन्होंने केलि के सिद्धान्तों तथा अपने प्रयोगों के आधार पर सन् १८४२ में वाष्प-विमान का एक अभिकल्प तैयार किया। इन्हीं दिनों इनको

1. Flapping wings

जॉन स्ट्रिंगफेलो नाम का एक साथी मिल गया। इन दोनों ने मिलकर अपने अभिकल्प के आधार पर २० फुट का एक माडल बनाया जो आजकल केन्सिन्गटन के राष्ट्रीय वैमानिकी संग्रहालय में है। इससे कोई उड़ान नहीं की गयी। आश्चर्य की बात है कि इस माडल का अभिकल्प आजकल के विमानों के अभिकल्प से कई मूल बातों में समान है। इन दोनों ने अपने प्रयत्नों का अधिक अंश अपने इच्छित विमान के लिए एक हलका इंजन बनाने में लगाया।

दुर्भाग्य से हैंनसन अपने उत्साह में इतने मस्त हुए कि उन्होंने लंदन, पेरिस और पिरेमिड पर उड़ते विमानों के काल्पनिक चित्र जारी किये और उसी समय इंग्लैंड की संसद में अपने वाष्प विमानों की सहायता से विश्व भर में हवाई सर्विस चलाने के लिए एक कम्पनी स्थापित करने का अधिकार प्राप्त करने के लिए एक प्रस्ताव भी रखा, जिसमें वे सफल न हो सके। हैनसन उत्साहहीन हो गये और वे अमेरिका चले गये।

२. सर्वप्रथम विमान-उड़ान

स्ट्रिंगफ़ैलो ने अकेले ही वाष्प-इंजन बनाने में सफलता प्राप्त की। यह हलका था और विमान को ऊपर उठाने की क्षमता भी रखता था। उसे इन्होंने अपने दस फुट के माडल में लगाया। सन् १८४८ में इस वाष्प-इंजन युक्त विमान ने अपनी पहली सफल उड़ान की। इस पद्धति के आधार पर वायु में पहली बार उड़ान करने का श्रेय इस प्रकार स्ट्रिंगफ़ैलो के माडल को मिला। इसने ४० फुट की यह उड़ान एक बन्द कारखाने में की। उसके पश्चात् वह बाहर हवा में १२० फुट तक उड़ा। आर्थिक कठिनाइयों के कारण वह पूरे आकार की मशीन न बना सका। किसीसे उसे किसी भी प्रकार की आर्थिक सहायता नहीं मिली। इसलिए वह भी अमेरिका चला गया

इसके माडल विमान का भार ६ पौंड ८ औंस था। इसके पंखे का क्षेत्रफल १८ वर्गफुट था। यह एकपंखी विमान था। कबन्ध के दोनों ओर रस्सियों द्वारा, दोनों पंखे इंजन से लगे थे। ये एक दूसरे से विपरीत दिशा में घूमते थे। वाष्पइंजन में मेथिलेटेड-स्पिरिट का प्रयोग किया गया था।

सन् १८६८ में इंग्लैंड की वैमानिकी संस्था ने वैमानिकी-प्रदर्शनी का आयोजन किया। यह संस्था दो वर्ष पूर्व स्थापित हुई थी। स्ट्रिंगफ़ैलो अपने तिपंखी माडल विमान का प्रदर्शन करने के लिए इसमें उपस्थित हुए। इसमें इन्हें अपने पहले माडल की अपेक्षा कम सफलता मिली तथापि वह जीवन पर्यन्त वैमानिकी के विकास के लिए भरसक प्रयत्न करते रहे।

अब विज्ञान में रुचि रखनेवाले ऐसे मनुष्यों की कमी न थी जो इस कार्य को आगे बढ़ा सकें। इस समय के वैमानिकों में से फ्रांसिस वेनहम का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने सन् १८८६ में वैमानिकी संस्था की पहली सभा में 'हवाई-संचालन' विषय पर एक लेख पढ़ा जिसमें इन्होंने केलि के मतों का समर्थन किया और साथ ही विमान सम्बन्धी प्रायोगिक और सैद्धान्तिक मूल तथ्यों का प्रतिपादन किया। सन् १८७१ में उन्होंने पहली बार बात-सुरंग सम्बन्धी प्रयोग किये थे। अब ऐसे अभिकल्पों की भी कमी न थी जिनको व्यावहारिक रूप न दिया जा सकता था। जर्मनी में वर्नर फ़ॉन सीमेन्ज़ ने अर्ध-वृत्ताकार पक्ष युक्त राकेट-विमान का अभिकल्प बनाया। परतोल पक्ष-युक्त विमानों के भी अभिकल्प प्रचुर मात्रा में बनाये गये। टामस माय ने एक बृहत आकार के वाष्प-इंजन युक्त विमान का निर्माण किया। कहा जाता है कि उन्होंने सन् १८७५ में क्रिस्टल पैलेस में थोड़ी देर के लिए उड़ान की थी। इससे चार वर्ष पूर्व एलफ़ान्स पनो ने फ्रांस में एक विशेष प्रकार का माडल बनाया जिसमें इसे काफी सफलता मिली। इससे प्रोत्साहित हो उसने एक पूर्ण विमान का अभिकल्प बना डाला। उस समय के काल्पनिक अभिकल्पों में इस अभिकल्प को मुख्य स्थान दिया जाता है। खेद है कि आर्थिक कठि-नाइयों ने उसे अपने अभिकल्पों को यथार्थ रूप न देने दिया। कुछ लोगों का कहना है कि एक रूसी वैज्ञानिक मौज़हाइस्की ने सन् १८८२ में बृहत् आकार के एकपंखी वाष्प-इंजन युक्त विमान में सफलता पूर्वक उड़ान की। रूस के अतिरिक्त अन्य वैज्ञानिक इसको प्रामाणिक नहीं मानते। इस प्रकार इस समय के वैमानिक[1] वाष्प-इंजन के आधार पर ही अपने पूर्ववर्ती वैज्ञानिकों का अनु-

1. Aviators

करण कर रहे थे क्योंकि इससे अच्छे किसी अन्य इंजन का अभी तक आविष्कार नहीं हो पाया था।

विश्व में सबसे पहले विमान में उड़ान किसने की, यह अब भी निर्णीत नहीं है। इस प्रसंग में फ्रांस के क्लेमों आदे (१८४१–१९२५) का नाम उल्लेखनीय है। ९ अक्टूबर सन् १८९० ई० को वह अपने चमगादड़ आकार के एकपंखी विमान 'लाआल' में पृथ्वी से ऊपर लगभग ५० गज तक गये। किन्तु इसे विमान की अनियन्त्रित उछलकूद से अधिक महत्ता नहीं दी जा सकती। इसके पश्चात् सन् १८९७ में फ्रांस के युद्ध-विभाग की आर्थिक सहायता से इन्होंने 'एविआन III' नाम के विमान का निर्माण किया।

इंग्लैंड में शक्ति-संचालित विमानों पर सर-हिरम मेक्सिम ने भी इन दिनों प्रयोग किये थे। इन्हें अपने प्रयासों में थोड़ी ही सफलता मिली। सन् १८९४ में इन्होंने द्वितीय युद्ध के लंकास्टर बममार से कुछ बड़े आकार की एक विलक्षण मशीन में कुछ देर के लिए अनियन्त्रित उड़ान की। इसमें १८० अश्व-शक्ति के दो वाष्प इंजन थे। इसका भार साढ़े तीन टन था। इन्होंने इसे अपने उड़ान-सम्बन्धी परीक्षणों के लिए बनाया था। इसमें उड़ान करने से पूर्व इन्होंने केन्ट नामक स्थान पर एक विशेष मार्ग बनवाया जिससे यह मशीन २ फुट से अधिक ऊपर न जा सके। इतना करने पर भी इसके विशाल पंखों में उद्भार[1] बल की इतनी अधिक मात्रा उत्पन्न हुई कि यह अपने रक्षक रेल को तोड़कर पूर्ण स्वतन्त्र और किसी भी प्रकार की सफल नियंत्रण यन्त्र की कमी के कारण टूटकर चूर-चूर हो गया।

वैमानिकी को प्रगति पर ले जाने के लिए अब आवश्यक था कि इससे संबंधित समस्याओं का वैज्ञानिक और इंजीनियरी दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाय। इस ढंग से इस समस्या को हल करने का श्रेय लिलियंथल, पिल्चर, चनूटे, माण्टगुमरी विल्बर और ओरविल राइट की पीढ़ी को है। इन्होंने अपने पूर्व अनुयायियों की भाँति केवल उड़ने के यन्त्र के निर्माण के लिए ही प्रयत्न नहीं किये, बल्कि यह जानने का प्रयत्न भी किया कि उड़ान करने के लिए,

1. Lift

किन बातों की आवश्यकता है और इस प्रकार अनुसन्धान कार्य के फलस्वरूप जो निष्कर्ष इन्होंने निकाले उनको एक सरल ढाँचे में परिणत[1] किया और इसके साथ-साथ उसमें लगानेके लिए उपयुक्त-इंजन की प्रतीक्षा भी की। इस प्रकार अपने से पूर्व अनुयायियों के स्वप्न को इन्होंने साकार बना दिया। जर्मनी के ओटो लिलियन्थल इन सबमें प्रमुख थे। इन्होंने बिलकुल नया मार्ग अपनाया। ग्लाइड को अपना साधन मानकर इससे इन्होंने अनेक प्रयोग किये। एक कृत्रिम पहाड़ी से उन्होंने अपने सुन्दर पक्षीरूप ग्लाइडर में दो हजार से अधिक सफल उड़ानें कीं। यह लचीली लकड़ी से बनाया गया था और मोमजामे से ढका था। अपनी इन परीक्षण-उड़ानों के परिणाम उन्होंने वैज्ञानिक ढंग से तालिकाबद्ध किये। इनसे प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर धीरे-धीरे अपने अभिकल्प में वे सुधार लाते गये। अन्ततः वे ७५ गज की ऊंचाई पर ४४० गज की दूरी तक उड़ान करने में सफल हुए। नियन्त्रण के लिए वे अपने शारीरिक प्रयत्नों पर ही विश्वास करते थे। अपनी सफलताओं से प्रेरित हो इन्होंने ४८ वर्ष की आयु में अपने बनाये हुए एक शक्ति-संचालित विमान में १ अगस्त, १८९६ को उड़ान करनेका प्रयास किया, किन्तु वे अपने विमान का नियन्त्रण खो बैठे और उनकी मृत्यु हो गयी।

विश्व में ग्लाइडर से सबसे पहली बार उड़ान करने का श्रेय इन्हीं को है। वास्तविक रीति से विमान में पहली बार उड़ान करने का श्रेय भी इनको ही प्राप्त होता है, परन्तु इनको उड़ान सम्बन्धी इतिहास में अधिक प्रमुखता नहीं दी जाती। संभवतः इसका कारण इनके बाद होनेवाले युद्ध और इनकी राष्ट्रीयता है।

इनके इस कार्य को इंग्लैंड में पर्सी पिल्वर ने तथा अमेरिका में आक्टेव चनूटे ने उन्नति की ओर ले जाने का प्रयत्न किया। इन्होंने ग्लाइडर-उड़ान में काफी सफलता प्राप्त की। चनूटे ने अपनी पुस्तक 'प्रोग्रेस इन फ्लाइंग मशीन' में उस समय तक के वैमानिकी अभिकल्पों[1] से सम्बन्धित समस्त उपयोगी सामग्री का विवरण प्रस्तुत कर इस क्षेत्र को समृद्ध किया है। इस ओर

1. Project

आकृष्ट हो दो साईकिल निर्माता-भाइयों ने एक अच्छे वैज्ञानिक की भाँति अब तक किये गये उड़ान सम्बन्धी सफल तथा असफल प्रयासों का सुव्यवस्थित रीति से अध्ययन किया और इन्होंने वायु में विमान का टिकाव और उसका नियन्त्रण-जैसी उड़ान की वास्तविक समस्या को हल करने में सफलता प्राप्त की। इस दिशा में उन्होंने विमान के ढाँचे पर अधिक बल दिया। पेट्रोल इंजन के आविष्कार से शक्ति की समस्या तो हल हो ही चुकी थी। इन दोनों भाइयों ने एक ग्लाइडर का निर्माण किया। १९०० ईसवी में यह ग्लाइडर रस्सी से बाँधकर एक पतंग की तरह उड़ाया गया। अग्रउत्थापक[1] और गून के बँधे पंख-कोरों की सहायता से इस पर नियन्त्रण किया। यह व्यवस्था आजकल के विमानों के 'पक्षकों'[2] की क्रियाओं-जैसी थी। इसमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली। अगले वर्ष उन्होंने एक और ग्लाइडर का निर्माण किया। इसे अब अधिक सुधरा होना चाहिए था, किन्तु ऐसा न हुआ। उन्होंने निराश होकर अपने निवास-स्थान पर ही एक बात-सुरंग का निर्माण किया। उन्होंने छोटे-छोटे सैकड़ों पक्षों पर इसका परीक्षण किया। इस प्रकार जो परिणाम प्राप्त हुए उनको उन्होंने तालिकाबद्ध किया जिससे पता लगा कि इस सम्बन्ध में अब तक प्राप्त जो भी दत्त था वह ठीक न था। यह जानकर इन्होंने अपने कार्य को आरम्भ से ही सुधारा और बिलकुल नये ढंग के पक्षों से युक्त एक ग्लाइडर का निर्माण किया। इसका संचालन सुकान[3] से किया जाता था। इन दोनों भाइयों ने १९०२ ई० में इससे लगभग एक हजार उड़ानें कीं। इस प्रकार साढ़े तीन वर्ष तक ये दोनों भाई दृढ़ निश्चय और कठिन परिश्रम से अपने कार्य में जुटे रहे। इस प्रकार प्राप्त अपने अनुभव के आधार पर इन्होंने एक शक्ति-चालित विमान के निर्माण का प्रयास किया। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि इसके बनने पर सफल उड़ानें की जा सकेंगी। उन्हें इस बात की शंका भी न थी कि वह ऐसा कार्य करने जा रहे हैं जिससे सारे विश्व में हलचल-सी मच जायगी। कहा जाता है कि इनसे पहले १८९६ ई० में डाक्टर सैम्युएल पिरपान्ट लैंगले ने एक छोटे वाष्प-इंजन युक्त विमान में बड़ी सफलता पूर्वक उड़ान की थी।

1. Forward elevator 2. Aileron 3. Rudder

३. राइट बन्धुओं के प्रयास

१७ दिसम्बर, सन् १९०३ का दिन उड़ान के इतिहास में महत्त्वपूर्ण है। इसी दिन विश्व में विमान की पहली नियन्त्रित सफल उड़ान सम्पन्न हुई। इसका श्रेय राइट भाइयों को है। उस दिन अमेरिका में उत्तरी केरोलिना के किटी हाक में 'किल डेविल हिल' द्वीप पर ये दोनों भाई अपने विमान सहित उपस्थित हुए। यह वही स्थान था जहाँ इन दोनों ने अपने ग्लाइडरों के परीक्षण किये थे। सिक्के को उछालकर यह निर्णय किया गया कि दोनों भाइयों में से कौन इस उड़ान में भाग ले। इसमें दोनों भाइयों, आरविल राइट और विलबर राइट, में आरविल जीता और ११ बजने से कुछ समय पहले आरविल अपने विमान के निचले पंख पर लेट गया और इसने इसमें लगे इंजन को चलाया। कुछ मिनटों के पश्चात् उस तार को हटा दिया जिसके कारण यह एक धातुकी पटरी से बँधा था। २७ नाट वेग की हवा में यह लड़खड़ाता चल पड़ा। थोड़ी दूर तक आरविल इसको संतुलन में रखने के लिए, इसके पंख-कोर[1] को पकड़े, दौड़ता रहा। यह अचानक ऊपर उठने लगा। विश्व के इतिहास में शक्ति-संचालित यह पहली नियंत्रित सफल उड़ान थी। अपनी पहली उड़ान में १२ सेकण्ड के अल्प समय में आरविल ने १२० फुट की दूरी तय की। आजकल के बहुत-से विमानों में उनके पक्ष ही इससे कहीं अधिक लम्बे होते हैं। इस प्रकार आज के मानक पर हम सम्भवतः इसे उड़ान कहते कुछ हिचकें। फिर भी इसके महत्त्व को कम नहीं किया जा सकता। इस सफलता ने विश्व को ऐसे पंख दिये जिनकी सहायता से मनुष्य वायु पर पूर्ण विजय प्राप्त करने का गौरव अनुभव करता है। इसी दिन इन्होंने तीन और उड़ानें कीं। चौथी उड़ान में इन्होंने ५९ सेकन्ड में ८५२ फुट का फासला तय किया था। आश्चर्य की बात है कि इस महत्त्वपूर्ण सफलता का उस समय के अमेरिकी प्रेस समाचार-पत्रों ने कोई विशेष प्रकाशन न किया। राइट भाइयों को समाचारपत्रों से जितना प्रोत्साहन मिलना चाहिए था वह न मिला। इससे उनके कार्य में कोई बाधा न पड़ी। वे अपने विमान को सुधारने में लगे ही रहे। विमान में उड़ान

1. Wing-tip पक्षकोर

भरने के लिए उन्होंने एक विशेष प्रकार का यन्त्र बनाया। विमान के नियन्त्रक में परिवर्तन किया गया ताकि चालक पक्ष पर लेटने की अपेक्षा बैठ सके। विमान की शक्ति नियन्त्रण और स्थायित्व में काफी सुधार किये गये। अन्त में इन दोनों भाइयों ने यह अनुभव किया कि उनकी बनायी हुई मशीन सैनिक पर्यवेक्षण के काम भी आ सकती है। उन्होंने अमेरिकी सैनिक अधिकारियों को इस विषय पर लिखा, पर उन्हें इसमें कोई सफलता न मिली।

१९०५ में उन्होंने उस वर्ष की अपनी सबसे अच्छी उड़ान की। ३८ मिनट ३ सैकण्ड में इन्होंने साढ़े चौबीस मील की दूरी तय की। इन दोनों भाइयों के विमानों में बहुत-सी बातें नयी थीं। आज के विमानों की भाँति इसमें दिशिक, आड़े और पार्श्विक तीनों प्रकार के नियन्त्रण की व्यवस्था थी। वायु से हलकी मशीनों द्वारा उड़ान करने के प्रयास में दो मोगोलफिये भाइयों ने पहले सफल प्रयास किया था। इसके ठीक १२० वर्ष बाद इसी प्रकार वायु से भारी मशीनों द्वारा उड़ान करने के प्रयास में भी एक बार फिर इसी प्रकार दो भाइयों ने पहली बार सफल उड़ान की। यह वैमानिकी के इतिहास में एक संयोग ही है।

दूसरे देशों ने राइट भाइयों के कार्य में दिलचस्पी लेनी आरम्भ कर दी। इंग्लैंड की एक बैलून फैक्टरी के श्री जे० ई० केपर इन दोनों भाइयों के पास अमेरिका गये और इनसे अनुरोध किया कि वह अपना अनुसन्धान-कार्य इंग्लैंड में आरम्भ करें। किन्तु उस समय की इंग्लैंड की सरकार से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता इन्हें नहीं मिली और ये थोड़े निराश अवश्य हुए। तो भी ये चिन्तित न थे, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि इस क्षेत्र में विश्व में जितनी सफलता अब तक उन्हें मिली है वह किसी को प्राप्त नहीं थी। यह ठीक है कि इस विषय में कुछ भ्रांति भी फैली हुई थी।

जर्मनी में हैनोवर-निवासी कार्ल जाथो का कहना था कि १८ अगस्त १९०३ ई० को उसने अपने दुपंखी विमान में २४ किलोमीटर की उड़ान की थी। आज भी कुछ कथनों के अनुसार यूरोप में पहली सफल उड़ान का श्रेय डेनमार्क के जे० सी० एच० एलीहेमर को दिया जाता है। इस विषय पर १९५३ में स्काटलैंड निवासी जे० वाई० वाटसन ने और प्रकाश डाला है।

इनका कहना है कि उनके भाई प्रेस्टन वाटसन ने १९०२ ई० में एक देशी सेन्तूज़ दूमां इंजन युक्त दुपंखी विमान से सफल उड़ान की थी। आज ५० वर्ष बाद इस कथन की पुष्टि करना असंभव-सा है।

सबसे पहले उड़ान करने का श्रेय किसको है, इस बारे में अब तक कोई निश्चित मत नहीं है। इसके मुख्य कारणों में से एक यह भी है कि सफल उड़ान की रूपरेखा पर भिन्न-भिन्न मत हैं। यहाँ तक कि अमेरिका में राइट भाइयों के सम्बन्ध में भी कुछ वर्षों तक एक मत न था। ग्लेन कर्टिस ने लैंगलेंलि के 'एरोड्राम' को दोबारा बनाया था और इससे जल-विमान के रूप में उड़ान की। स्मिथसानयन संस्था के मत के अनुसार इनकी इस उड़ान से यह स्पष्ट है कि राइट भाइयों की अपेक्षा लान्गलि ने वास्तविक विमान का अभिकल्प पहले बनाया था। परन्तु सन् १९४२ में इस संस्था ने यह स्वीकार कर लिया कि लान्गलि के मौलिक माडल में मुख्य सुधार करने के कारण ही उक्त उड़ान संभव हो सकी थी। कुछ भी हो राइट भाइयों को तो स्वयं इस बात का विश्वास था कि इस श्रेय के वे अधिकारी हैं। फ्रांस में सन् १९०६ में सेन्तूज़ दूमां ने अपने एक देशी विमान में ६० मीटर की उड़ान की। फ्रांस में अब तक इस प्रकार की उड़ानों को सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था सेन्तूज़ दूमां की सफलता ने इस सन्देह को दूर करने में काफी सहायता दी। और इस प्रकार वहाँ पर भी अच्छे अभिकल्पों के निर्माण करने के लिए मार्ग-सा बन गया था। तात्पर्य यह कि विश्व में फ्रांस वैमानिकी के भी विकास केन्द्र की भूमिका बनने लगी।

फ्रांस के योग्यतम अभिकल्पों में 'बोआसें' की गिनती होती है। इनके दुपंखी विमान में ही हैनरी फ़ारमान ने जनवरी १९०८ में यूरोप में एक किलोमीटर की वृत्ताकार उड़ान की। इस उड़ान पर इन्हें ५०,००० फ्रांक का पुरस्कार मिला था। इस प्रकार के आयोजित पुरस्कारों ने वैमानिकी अनुसन्धान में लगे खोजियों को आर्थिक रूप से बहुत बड़ी सहायता पहुँचायी। वैमानिकी ऐसे दानकर्ताओं का आभारी रहेगी जिन्होंने इस प्रकार के पुरस्कार दिये थे। इस क्षेत्र में लार्ड नार्थक्लीफ का विशिष्ट स्थान है। इन्होंने अपने समाचार-पत्र 'डेली मेल' द्वारा २५० पौंड, १००० पौंड और १०,००० पौंड के पुरस्कारों

चित्र ३

ओटो लिलियेन्थल ने अपने पक्षी रूप ग्लाइडर में २००० सफल उड़ानें कीं (पृ० ४०)
(रेडियो टाइम्स हल्टन पिक्चर लाइब्रेरी के सौजन्य से)

चित्र ४
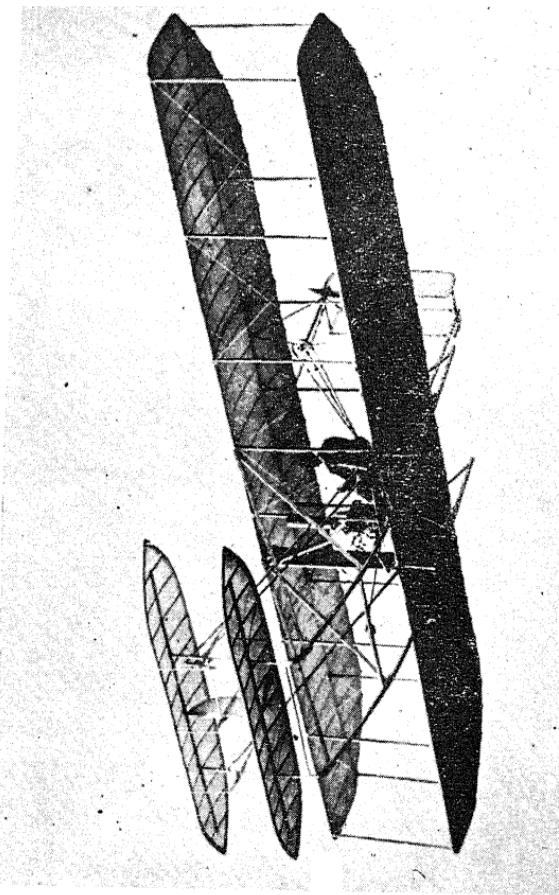
बिलवर राइट अपने दुपंखी विमान में फ्रांस गया (पृ० ४५)

(रेडियो टाइम्स हल्टन पिक्चर लाइब्रेरी के सौजन्य से)

की घोषणा की थी। परन्तु उस समय इंग्लैंड में वैमानिकों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था। यही कारण है कि इंग्लैंड के कुछ वैमानिकों ने फ्रांस में जाकर उड़ान की और हैनरी फ़रमान जैसे वैमानिकों ने फ्रांस में बने विमानों को उड़ाकर इस क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की थी। सन् १९०८ में ३० अक्टूबर को इन्होंने देहाती प्रदेश में बोआसें दुपंखी विमान से साढ़े सोलह मील की उड़ान की। उस समय तक राइट भाइयों ने लगभग एक घण्टे की उड़ान का रिकार्ड बना लिया था। तो भी फ़रमान की इन उड़ानों का एक विशेष महत्त्व है। उसके विमानों में पहिये लगे थे, इसलिए वह कहीं से भी उड़ान कर सकते थे जब कि राइट भाइयों के विमान को अपनी उड़ान आरम्भ करने के लिए मशीनी गुफिया[1] की आवश्यकता पड़ती थी। एक बार विलबर अपने दुपंखी विमान में फ्रांस गया। फ्रांसवाले इससे बहुत प्रभावित हुए, लेकिन इन्होंने इस मशीन की नकल करने के बजाय अपने मौलिक अभिकल्प तैयार करने की प्रेरणा ली। और वे अपने साहस और दूरदर्शिता के कारण इसमें सफल हुए। फ्रांस के वोआसें बन्धुओं के दुपंखी विमानों का उत्पादन दिन प्रति दिन बढ़ने लगा। इन्हीं दिनों में फ्रांस के वैमानिकों ने अपने लम्बे तथा खर्चीले परीक्षणों के आधार पर दुपंखी विमानों को एक नयी आकृति प्रदान की जिसे ('मानोप्लेन') एकपंखी विमान कहते हैं। २५ जुलाई, सन् १९०९ को इस प्रकार के विमान ने ही इंग्लिश चैनल को उड़ान से पार कर 'डेली मेल' का १००० पौंड का पुरस्कार जीता था।

इन विमानों के आविष्कार से अब भौगोलिक एकता बढ़ने लगी। मनुष्य अब पक्षी के समान और उससे भी अच्छी तरह वायु में उड़ान कर सकता था। इस दिशा में उसकी प्रगति तीव्र थी। इन सफलताओं से जनता के हृदय में यह विश्वास भलीभाँति उत्पन्न हो गया कि यह क्षेत्र केवल सनकी लोगों के लिए ही नहीं है। अब तक ऐसा समझा जाता था कि यह शौक संकटमय तथा निराशापूर्ण है। परन्तु इन सफल उड़ानों से इस प्रकार के समस्त सन्देह दूर होते गये और साथ ही विमानों का भविष्य भी उज्ज्वल दिखाई पड़ने लगा। इसके महत्त्व का सैनिक दृष्टिकोण से अभी बहुत कम अध्ययन किया गया था। यह

1. Catapult

आशा भी नहीं की जा सकती थी कि इतनी शीघ्र यह घटना हमारे जीवन की एक साधारण घटना बन जायगी। इंग्लैंड में भी बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही वैमानिक को आदर मिलने लगा था। अब यहाँ के वैमानिकों को अपना घर छोड़कर फ्रांस जाने की आवश्यकता नहीं रह गयी थी। प्रेस की ओर से भी प्रोत्साहन मिलने लगा था। लेज़डान में राइट के दुपंखी विमान बनाने आरम्भ कर दिये गये थे। यह कार्य शाट भाइयों की निगरानी में हो रहा था। इसी वर्ष मोटर निर्माताओं और व्यापारियों की ओर से एक हवाई-प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। यह आलिम्पीया नामक स्थान पर आयोजित की गयी थी। इसमें भिन्न-भिन्न अभिकल्पों के आधार पर बने विमानों का पर्याप्त मात्रा में प्रदर्शन किया गया। इंग्लैंड की एक नयी कम्पनी ने भी, जो हाण्डले पेज लिमिटेड के नाम से प्रसिद्ध हुई, बारकिंग में विमानो के निर्माण के लिए एक ब्रिटिश फैक्टरी खोली। ब्रिटेन में इस प्रकार की यह पहली फैक्टरी थी। थोड़े दिनों में ही फ्रेडरिक हाण्डले पेज ने अपने ढंग का एक मौलिक विमान तैयार किया।

४. स्त्री विमान-चालक

सन् १९०९ के आरम्भ में इंग्लैंड में काडी तथा प्रेस्टन वाटसन सफलतापूर्वक उड़ानें कर रहे थे। फ्रांस में केवल ९ वैमानिक नियमित रूप से उड़ान कर रहे थे। अमेरिका में शायद इनकी संख्या ६ या ७ से अधिक न थी। सन् १९०९ के अन्त तक इनकी संख्या इन सभी देशों में तेजी से बढ़ने लगी थी। महिलाओं ने भी इस क्षेत्र में आना शुरू किया। भिन्न देशों से उड़ानों की सूचनाएँ मिलनी शुरू हो गयी थीं। सन् १९०१ में श्रीमती ब्लांशार के सुझाव पर इंग्लैंड में विमान-क्लब की स्थापना हुई और सन् १९१९ में चालक के रूप में पहली बार एक स्त्री ने वैमानिकी के क्षेत्र में पदार्पण किया।

विमानों के क्षेत्र में अच्छी और लम्बी उड़ानों के लिए राइट विमानों का ही आश्रय लिया जा रहा था, परन्तु उनको हवा में चला देने के लिए मशीनी गुफ़िया की आवश्यकता के कारण एक कमी का अनुभव होता था। उनके लिए बनाये गये हवाई अड्डों से ही, उनकी उड़ान आरम्भ की जा सकती थी। इसके साथ ही साथ दूसरी त्रुटियाँ ये भी थीं कि उनका अभिकल्प इस प्रकार का था

कि उसमें नये विचारों और वैज्ञानिक अनुसन्धान के आधार पर और सुधार करने की क्षमता न थी। इन कारणों से इस प्रकार का विमान इस क्षेत्र में केवल एक वर्ष और अगुआ रह सका। इसके पश्चात् इसकी उपयोगिता अपेक्षाकृत कम होती गयी।

५. हवाई प्रतियोगिता

फ्रांस में मेसियो सेगेने एक विशेष प्रकार के इंजन का आविष्कार किया। इससे उड़ान के क्षेत्र में एक हलचल-सी मच गयी। अगले पाँच वर्षों में फ्रांस में समर्थ और सुरक्षित विमानों का प्रचुर मात्रा में उत्पादन किया गया। इन्हीं दिनों फ्रांस, अमेरिका और इंग्लैंड के प्रमुख वैमानिकों ने एक प्रतियोगिता का आयोजन किया। यह प्रतियोगिता रीमज़ नामक स्थान पर आयोजित की गयी थी। यह विश्व में पहली हवाई प्रतियोगिता थी। इसको देखने के लिए लाखों की संख्या में दर्शक आये। प्रतिदिन नये रिकार्डों की स्थापना होती थी। दर्शकों ने वहां आने में जितना धन व्यय किया उससे कहीं अधिक आनन्द उन्होंने वहाँ आकर प्राप्त किया। प्रसन्नता की बात यह थी कि इस प्रतियोगिता में कोई विशेष दुर्घटना न हुई जिसके कारण किसी की मृत्यु होती। इस प्रतियोगिता में भाग लेनेवाले विमानों में से सबसे अधिक शक्तिशाली बेलरीओ का एकपंखी विमान था। यह ८० अश्व-शक्ति के वी –८ इंजन से युक्त था। बेलरीओ ने इसकी सहायता से एक नया रिकार्ड स्थापित किया, परन्तु स्वयं भी एक भयंकर दुर्घटना का शिकार हो गया। कई बोंआसे विमान भी टूटे, परन्तु किसी व्यक्ति की मृत्यु न हुई। इन सब घटनाओं से दर्शकों में और अधिक कौतूहल होता गया और धीरे-धीरे इस प्रकार की प्रतियोगिता ने विश्व के खेलों में स्थान प्राप्त कर लिया। परन्तु यह खेल अभी सरल नहीं बन पाया था। अभी तो इसे परिवहन के लिए भी सुरक्षित नहीं समझा जाता था। सन् १९१० में ज़ेपलिन ने वायुपोत की सहायता से जर्मनी में परिवहन व्यवस्था शुरू की। उसके हृदय में जैसे वायुपोत को युद्ध के लिए प्रयोग करने की इच्छा थी, ऐसे ही विचार वह विमानों के विषय में भी करने लगा।

पहली बार समुद्री यानों का प्रादुर्भाव हो रहा था। दूसरी ओर विमानों

को युद्धपोतों से उड़ाने और उन पर उतारने के परीक्षण हो रहे थे । इन दोनों कारणों से यह आशा होती जा रही थी कि भविष्य में जंगी बेड़ों के पास पर्यवेक्षण के लिए काफी अच्छे साधन प्राप्त हो जायेंगे । फ्रांस में तो ऐसे कवचित विमान का निर्माण भी किया गया जिस पर पृथ्वी से की गयी गोलाबारी का कोई असर न हो । सन् १९१० में ब्रिस्टल बाक्स-काइट दुपंखी विमानों ने सेलिसबेरी के मैदान में सैनिक दाँवपेंचों में भाग लिया था । इसमें उड़ान करते समय पहली बार बेतार के तार द्वारा सन्देश भेजा गया था ।

वैमानिकी के क्षेत्र में सन् १९१२ के प्रारम्भ में जर्मनी और फ्रांस की प्रगति से आशंकित होकर ब्रिटेन ने सैनिक विमान के प्रश्न पर परामर्श करने के लिए एक समिति नियुक्त की । इसके सुझाव पर रायल फ़्लाइंग कोर की स्थापना १३ मई, सन् १९१२ को हुई । इसके उपरान्त ब्रिटेन की प्राइवेट कम्पनियों ने भी अधिक संख्या में विमान बनाये क्योंकि उन्हें ऐसा विश्वास था कि युद्ध-मंत्रालय अच्छे विमानों को खरीदते समय दक्षता को भी ध्यान में रखेगा । अब तक युद्ध-मंत्रालय फ्रांस से खरीदे गये विमानों का प्रयोग करता था और ब्रिटेन की निजी कम्पनियों को प्रोत्साहन मिलने की कोई गुंजाइश न थी । प्रथम विश्व-युद्ध आरम्भ होने पर ब्रिटेन ने जिन विमानों का युद्ध में प्रयोग किया उनमें उसकी निजी फैक्टरियों के विमानों की संख्या बहुत थोड़ी थी । इन थोड़े से विमानों में 'एवरो–५०४' और सॉपविद टेबलॉड दुपंखी विमान उल्लेखनीय हैं । बाद में ये ही ब्रिटेन में सैनिक विमानों के निर्माण में मानक रूप में स्वीकृत हुए ।

प्रथम-विश्व युद्ध में जंगी विमानों का प्रयोग एक नवीन घटना थी । इस युद्ध में जर्मनी के पास हवाई सेना सबसे अधिक थी जिसमें २६० विमान थे । इनके इंजन अत्यन्त शक्तिशाली थे । ये वे ही इंजन थे जिन्होंने सन् १९१४ में जर्मन विमान चालकों को हवाई रिकार्ड स्थापित करने में सहायता दी थी ।

दूसरी ओर फ्रांस के पास १५६ विमान थे और इंग्लैंड के पास ६३ । इसी युद्ध में बममारों का आविष्कार हुआ । ज़ेप्लिन के कारखानों को प्रथम विश्वयुद्ध में इन बममारों की बममारी द्वारा ही नष्ट किया गया था । इन्हीं दिनों ब्रिटेन के युद्ध-मंत्रालय ने सरकारी तौर पर वैमानिकों में दिलचस्पी

लेना आरम्भ किया। इसको निजी उद्योगों से भी सहायता मिली। यह सोचकर कि यह काम अपने हाथ में लेने से कुछ अच्छा रहेगा, इंग्लैंड की सरकार ने बैलून फैक्टरी को सैनिक विमान फैक्टरी में बदल दिया। बाद में यही 'रायल एयरक्राफ्ट फैक्टरी' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

६. विमान द्वारा डाक का भेजा जाना

एक कथन के अनुसार भारत में विमान-उड़ान का सबसे पहला प्रदर्शन सन् १९११ में हुआ। भारत स्वतन्त्र देश न था। यही कारण है कि वैमानिकी की प्रगति में भारत इन आरंभिक दिनों में प्रमुख न हो पाया। यहाँ पर अंग्रेज़ों की सत्ता थी और जो कुछ उन्होंने इस देश में इस क्षेत्र में किया उसके पीछे एक ही उद्देश्य था कि भारत के आर्थिक साधनों से अधिकतम लाभ उठाया जाय। फिर भी यह उल्लेखनीय है कि विश्व में विमान द्वारा डाक का भेजना पहली बार भारत में ही शुरू हुआ। १८ फरवरी सन् १९११ को फ्रांसीसी चालक पिकेट ने इलाहाबाद से नैनी तक इसी उद्देश्य से उड़ान की थी। यह फासला केवल ६ मील का था। इस अवसर पर सरकारी डाक का एक थैला विमान में ले जाया गया था। इंग्लैंड में इस प्रयोजन से विमान का प्रयोग इस घटना के लगभग छः मास पश्चात् हुआ। परन्तु इस प्रकार के सभी प्रयास विदेशियों के थे, अतः हमारे राष्ट्र को इससे कोई ख्याति नहीं मिलती।

७. प्रथम भारतीय विमान-चालक

१९१७ का अप्रैल भारत के वैमानिकी-इतिहास में एक बड़े महत्त्व का महीना है। इसी में चालक के रूप में एक भारतीय रायल फ्लाइंग कोर में भरती हुआ था। इस समय यह केवल १८ वर्ष का था। इसका नाम इंद्रलाल राय था। यह पहले भारतीय थे जिन्होंने उड़ान के क्षेत्र में रुचि दिखायी और इसे सीखने का प्रयत्न किया।

बहुत कम लोगों ने इनका नाम सुना होगा। इनकी गिनती अच्छे चालकों में होती थी। यह आज के पूर्वी बंगाल में लकुटिया के एक जमींदार श्री पी० एल० राय के द्वितीय पुत्र थे। इनके पिता बार-ऐट-ला थे। इंद्रलाल राय का जन्म कलकत्ते में २ दिसम्बर, सन् १८९२ में हुआ था। इनका सारा परिवार

इंग्लैंड में ही रहता था, इसी कारण इनकी शिक्षा इंग्लैंड में ही हुई थी। अपने विद्यार्थी-जीवन में यह बहुत परिश्रमी तथा चतुर थे। भिन्न-भिन्न परीक्षाओं में इन्होंने बहुत-सी छात्रवृत्तियाँ प्राप्त की थीं। इन्हें आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में भरती होने के लिए भी छात्रवृत्ति प्राप्त हुई थी।

इनके पिता की यह इच्छा थी कि यह आई० सी० एस० की परीक्षा में बैठें, परन्तु भाग्य में कुछ और था। इन्होंने रायल फ्लाइंग कोर की उड़ान-शाखा में भाग लेना प्रारम्भ किया। छः महीने के प्रशिक्षण के बाद इन्हें किंग्स कमीशन मिल गया। अक्टूबर १९१७ को इन्हें फ्रांस भेज दिया गया और वहाँ इन्हें स्क्वाड्रान नं० ५६ में रखा गया। सन् १९१७ में फ्रांस के युद्ध क्षेत्र में जर्मन सैनिकों की गोलियों से यह घायल हुए थे। यह घटना जर्मनी और अंग्रज सैनिकों के बीच के मैदान में हुई जिस पर किसी का भी अधिकार न था। यह भारतीय युवक वहाँ तीन दिन तक बेहोश पड़ा रहा। अंग्रेज सैनिकों ने इसे फ्रांस के एक ब्रिटिश सैनिक अस्पताल में भेज दिया। इसको मरा हुआ समझकर वहाँ के अधिकारियों ने इसे युद्ध की लाशों में डाल दिया। कितने आश्चर्य की बात है, उन लाशों में पड़े रहने के पश्चात् इंद्रलाल राय को होश आना आरम्भ हुआ। इस दुर्घटना के बाद इन्हें कुछ दिनों तक विमान उड़ाने के लिए नहीं दिया गया। कुछ समय पश्चात् इन्हें फिर उड़ान करने के योग्य घोषित किया गया और और जून १९१८ में स्क्वाड्रान नं० ४० के साथ इनको लगा दिया गया। प्रथम विश्व युद्ध में इस प्रकार इंद्रलाल राय पहले भारतीय वैमानिक थे।

इंद्रलाल राय से संबंधित वस्तुएँ अब भी भारतीय वायुसेना के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इनमें इनकी लाग वुक, हाथ से वने चित्रों का एक संग्रह, जार्ज पंचम का पत्र और माँ को लिखे गये पत्र भी सम्मिलित हैं।

८. लड़ाकू विमानों का विकास

लड़ाकू विमानों का विकास कुछ धीरे-धीरे हुआ। विमान में मशीनगनों को इस प्रकार चलाया जाय कि विमान के पंखों को हानि न पहुँचे। इस प्रकार की व्यवस्था करने से पूर्व इस विषय में अनुसन्धान की आवश्यकता थी।

इस कठिनाई को दूर करने का श्रेय श्री एन्थनी फ़ाक्कर को है। बाद में बममार विमानों में और सुधार हुआ और डी० एच—२,एफ० इ० ८ जैसे लड़ाकू विमान फ़ाक्कर के एकपंखी-लड़ाकू विमानों की अपेक्षा कहीं अधिक परिष्कृत थे।

युद्ध में हुई विमान-प्रगति से प्रभावित होकर, ब्रिटिश सरकार ने इस विषय के लिए सन् १९१८ में इंग्लैंड में विमान-मंत्रालय की स्थापना की। मंत्रालय की माँग को पूरा करने के लिए विमान-उद्योग में ३५०,००० मनुष्य और स्त्रियाँ काम कर रही थीं। इससे पता लगता है कि किस तेज़ी से विमान कारखानों में वृद्धि हो रही थी। प्रति वर्ष ये कारखाने युद्ध के लिए कई हजार विमानों का निर्माण कर रहे थे। इस प्रकार युद्ध में प्रयोग के लिए विमान-उद्योग दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति कर रहा था और धीरे-धीरे राष्ट्र के जीवन का यह एक आवश्यक अंग बनता जा रहा था। समुद्र के जहाजों पर टारपीडो विमानों ने पहली बार विजय प्राप्त की। कमजोर समुद्री यानों का स्थान अब ऐसे लड़ाकू विमानों और बममारों ने ले लिया था जो जंगी जलपोतों पर सुगमता से उतर सकते थे और वहाँ से उड़ान भी कर सकते थे। लेकिन युद्ध के क्षेत्र की इस वैमानिकी ने कई समस्याएँ उत्पन्न कीं।

युद्ध-विराम पर विमान सम्बन्धी उद्योग का लगभग सर्वनाश हो गया। बड़ी-बड़ी मुख्य कम्पनियों में से कुछ को तो अपना काम बन्द करना पड़ा और कुछ कम्पनियाँ इस ओर प्रयत्नशील हुईं कि उनके विमानों को सिविल-उड़ानों के लिए प्रयोग किया जाय। सामान्य लोगों में इसके प्रति अब भी कोई ठोस सुरुचि न थी। इसमें इनका दोष न था क्योंकि वैमानिकी एक भयंकर रूप में ही इनके सामने आयी थी। विमान अपने इस सर्वनाशिता के गुणधर्म के कारण निजी या गैर निजी परिवहन के रूप में स्वीकार नहीं किये जा रहे थे। उन्हें शंका थी कि शायद लड़ाकू विमानों के दक्ष चालक भी अपने प्रति भयभीत जनता के हृदय में विश्वास पैदा न कर सकें। आवश्यकता इस बात की थी कि युद्ध-विमानों के अभिकल्प तैयार करने से लेकर, उनके निर्माण, उनके प्रयोग इत्यादि से जो अनुभव अब तक प्राप्त किया गया था उसके आधार पर अधिकारीगण हवाई यात्रा में यात्रियों की सुरक्षा और सुविधा का पूर्णरूप से उत्तरदायित्व लेने का दावा रखते।

९. नागरिक विमानयात्रा की व्यवस्था

ब्रिटेन में बृहत् आकार के जंगी बममारों को प्रयोग में लाने के लिए सिविल विमानों में बदल दिया गया। इसमें यात्रियों की सुविधा का पूरा ध्यान रखा गया। दिसम्बर सन् १९१८ में पहली बार सरकारी तौर पर पेरिस में होनेवाली शांति-कान्फ्रेंस के सदस्यों को ले जाने के लिए हवाई-यात्रा का प्रबन्ध किया गया था। सन् १९१८ में ही कैप्टन रास ने काहिरा से कराची की उड़ान की। स्क्वाड्रान नेता मेकलेरन ने हाण्डले पेज के चार इंजनों वाले बममार में १३ से १६ जनवरी सन् १९१९ के बीच इंग्लैंड से कराची तक उड़ान की थी। इंग्लैंड में मार्च, सन् १९१९ तक पेरिस और लन्दन के बीच हवाई व्यवस्था स्थापित हो गयी थी। छः मास पश्चात् जब यह व्यवस्था बन्द हुई तब तक इसके अन्तर्गत पेरिस और लंदन के बीच ७४९ उड़ानें की जा चुकी थीं और ९३४ यात्री यात्रा कर चुके थे। इसके द्वारा डाक के १००८ थैलों का वितरण किया गया था।

मार्च और अगस्त में फ्राकस्टान तथा कोलोन की अधिकृत फौजों के साथ संचारण स्थापित करने के निमित्त हवाई डाक-सर्विस की व्यवस्था की गयी। इंग्लैंड के विमान मंत्रालय ने धीरे-धीरे सिविल सर्विस और हवाई डाक का कार्य प्राइवेट चालकों पर छोड़ दिया, तथापि इस पर अपने एक विभाग द्वारा परोक्ष रूप से नियन्त्रण की व्यवस्था रखी। यात्रियों की सुविधाओं के अनुसार फ्रांस में भी फरमान कम्पनी ने बममारों को सिविल सर्विस के योग्य बना लिया था। फरवरी, १९१९ में एक ऐसे ही बममार में १२ सैनिक यात्रियों को केनले ले जाया गया था। इस यात्रा में हर एक सुविधा दी गयी, जैसे रास्ते में दोपहर का भोजन, शराब इत्यादि। उस समय इस प्रकार की सुविधाएँ बहुत कम ही मिलती थीं।

अगस्त, १९१९ में पेरिस और लन्दन के बीच जब पहली सिविल सर्विस का आयोजन किया गया तो यात्रियों को बहुत कष्ट हुआ। इनके विमान भी बममारों के बदले हुए रूप थे। इस प्रकार के बममारों में उड़ान करना धैर्य का काम समझा जाता था। यह यात्रा आर्थिक दृष्टि से भी महँगी थी। यात्रियों

को विमान में एक छोटी-सी जगह में इस प्रकार ठूँस दिया जाता था कि खड़े होने या चलने के लिए पर्याप्त स्थान नहीं था। इस प्रकार बैठे हुए ये यात्री अपनी शंकाओं, वायु के झोकों और कोलाहल के बीच केवल अपनी उड़ान की आश्चर्यजनकता पर ही विचार कर पाते थे। इस क्षेत्र में जो भी अनुभव प्राप्त होते थे, उनके आधार पर प्रति दिन सुधार किये जा रहे थे। सितम्बर के पहले मास में हाण्डले कम्पनी ने पेरिस-लन्दन और लन्दन-ब्रुसेल्ज़ के बीच नियमित सर्विस चालू की। अगले मास में एक और कम्पनी ने कारडिफ़-लंदन-पेरिस के लिए एक सिविल सर्विस का आयोजन किया।

भारतवर्ष में आर्थिक दृष्टिकोण से अभी इस प्रकार की सिविल सर्विस आरम्भ करने को उपयुक्त न समझा जाता था। उस समय की भारत सरकार ने सन् १९२० के जनवरी मास में कराची-बम्बई के लिए एक सिविल सर्विस का आयोजन किया। यह भारत की पहली सिविल सर्विस थी। वास्तव में इसका संचालन 'रायल एयर फोर्स' द्वारा किया गया था। इसका सुझाव बम्बई के तत्कालीन गवर्नर ने दिया था। इस सर्विस का आरम्भ प्रयोग की दृष्टि से किया गया था जिससे भारत में जनता के लिए हवाई-सर्विस की स्थापना की संभावनाएँ भी स्पष्ट हो सकें। छः सप्ताह के बाद यह बन्द हो गयी क्योंकि ऐसा अनुभव हुआ कि भारतवर्ष में आर्थिक दृष्टि से इस प्रकार की सर्विस चालू करने का अभी समय नहीं था।

इंग्लैंड में अब चार प्रमुख कम्पनियाँ इस प्रकार की सर्विस का आयोजन कर रही थीं। सन् १९२४ में इन सबको एक सरकारी सहायता-प्राप्त कम्पनी के रूप में मिला दिया गया। यह 'इम्पीरियल एयरवेज़' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसी प्रकार फ्रांसवालों ने भी जनवरी सन् १९२३ में दो प्राइवेट कम्पनियों को मिलाकर 'एयर यूनियन' में बदल दिया। दस वर्ष बाद ये अन्य कम्पनियों के साथ मिलकर एक कम्पनी के रूप में सामने आयीं। इसे 'एयर-फ्रांस' का नाम दिया गया। अमेरिका को छोड़कर लगभग प्रत्येक देश में सरकारी सहयोग के साथ राष्ट्रीय वायु-मार्गों की स्थापना होने लग गयी थी। इस प्रकार के वायु-मार्गों की स्थापना करना इतना सरल काम न था जितना आज प्रतीत होता है।

मार्गों का सर्वेक्षण, हवाई अड्डों का निर्माण, विमानों के वास्ते ईंधन और अन्य आवश्यक सामग्री का उपलब्ध करना, यात्रियों के लिए अन्य आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था करना आदि कोई सरल कार्य न था।

यूरोप में सन् १९१९ में सिविल सर्विस के आरम्भ के समय बहुत-से नये मार्गों की खोज करते हुए इस प्रकार की कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। इस कार्य का आरंभ उत्तरी अटलांटिक के वायुमार्ग से हुआ जो सबसे कठिन और खतरनाक मार्ग था। बहुत ही शक्तिशाली करटिस विमान एन० सी० ४ ने सन् १९१९ में इस महासमुद्र को पार तो किया, परन्तु इसे उस यात्रा में बहुत कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। अजोर के मार्ग से इसको अपनी इस उड़ान में ११ दिन लगे। इसके एक मास पश्चात् न्यूफाउण्डलैण्ड से आयरलैण्ड तक विहटन ब्राउन और उसके एक साथी ने एक सिविल बममार में बिना रुके उड़ान करके वैमानिकी की प्रगति में एक नया अध्याय जोड़ दिया।

इंग्लैंड की रायल हवाई सेना के विमान-चालकों ने सन् १९२० में जो लम्बी उड़ानें कीं उससे सिविल सर्विस को बहुत लाभ हुआ। इनमें सर एलन कोबहान का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने रायल हवाई सेना में नौकरी करने के पश्चात् अपनी सेवाएँ डी० हैवीलेण्ड को प्रस्तुत कर यूरोप के चारों ओर ५००० मील की उड़ान सन् १९२१ में सम्पन्न की। इन्होंने १९२६ में लन्दन-केपटाउन तथा लन्दन-आस्ट्रेलिया के मार्गों पर सफलतापूर्वक उड़ानें कीं। सन् १९२७ में सिंगापुर की एक छोटी वायुनौका में इन्होंने अफ्रीका के चारों ओर २३००० मील की उड़ान की। इनका अनुकरण आस्ट्रेलिया के एक महान् विमान-चालक सर चार्ल्स किन्ग्ज़फोर्ड स्मिथ ने किया। इन्होंने सन् १९२८ में प्रशांत महासागर के ऊपर केलिफ़ोरनिया से ब्रिसबेन तक ७००० मील की उड़ान की। इसके पश्चात् तो इनकी उड़ानों से आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड मानों हवाई मार्ग से बहुत निकट हो गये। नये मार्गों की स्थापना में जो कठिनाइयाँ आती थीं, इस प्रकार इन उड़ानों ने उन्हें दूर किया, इसके साथ ही जनता के हृदय में विश्वास भी उत्पन्न किया।

भारतवर्ष की जनता में भी हवाई सर्विस के अभाव का अनुभव किया जाने

लगा। पहली अप्रैल सन् १९२६ को स्किन कमेटी ने, जिसमें पं० मोतीलाल नेहरू तथा मोहम्मद अली जिन्ना भी थे, भारतीय वायु सेना के बनाने की सिफारिश की। इस सिफ़ारिश को कार्यान्वित करने में सरकार को पाँच वर्ष लगे।

१०. भारत में सिविल वैमानिकी विभाग

भारत में सन् १९२७ में सिविल वैमानिकी विभाग की स्थापना हुई और इसकी निगरानी के लिए एक डाइरेक्टर की भी नियुक्ति की गयी। सन् १९२५ में इंग्लैंड की इम्पीरियल एयरवेज़ ने वहाँ के विमान मंत्रालय से इंग्लैंड और भारतवर्ष के बीच हवाई यात्रा आरम्भ करने के लिए एक समझौता किया और ३० मार्च सन् १९२९ को लंदन-कराची सर्विस का उद्घाटन हुआ। ३० दिसम्बर, सन् १९२९ को एक विशेष व्यवस्था के अन्तर्गत कराची-दिल्ली को भी वायुमार्ग के नक्शे में ले लिया गया। इसी समय भारत सरकार के साथ इम्पीरियल एयर वेज ने एक समझौता किया, जिसके अनुसार लन्दन-कराची मार्ग पर अपनी सिविल सर्विस के स्थान पर, भारत सरकार के निमित्त भारत सरकार के यात्रियों तथा डाक को कराची से दिल्ली ले जाने की व्यवस्था की। इस मार्ग पर उड़ान करने का तमाम खर्च भारत सरकार ने अपने ऊपर लिया, इसलिए यह समझौता भारत सरकार को बहुत महँगा पड़ा था। अतः इस समझौते को सन् १९३१ में समाप्त कर एक दूसरा रास्ता निकाला गया। १९३१ में देहली-कराची सर्विस की व्यवस्था देहली फलाइंग क्लब को सौंप दी गयी। इसने इसको लगभग १८ महीने तक चलाया। सन् १९३२ के मध्य में यह व्यवस्था भंग हो गयी। इसी समय में भारत सरकार की ओर से कराची-कलकत्ता वायुमार्ग की स्थापना की एक योजना बनी। इस साप्ताहिक वायु-सर्विस के लिए दस 'एवरो' विमान खरीदे गये। परन्तु भारतवर्ष में आर्थिक संकटों के कारण यह योजना सफल न हो सकी। तत्कालीन वायसराय के लिए एक विमान के अतिरिक्त शेष सब विमानों को बेच दिया गया। इस प्रकार भारत सरकार की पहली सिविल सर्विस समाप्त हो गयी।

सन् १९३२ में भारत सरकार के एक ऐक्ट के अन्तर्गत भारतीय वायु-सेना की स्थापना हुई। इसका उद्घाटन पहली अप्रैल सन् १९३३ को कराची

में तीन विमानों से हुआ। सेना के *छः अफसरों को इस सेना के लिए चुना गया था। बाद में एक और अफसर इसमें सम्मिलित हो गया था। उन दिनों भारतीय सेना के विमानों के प्रशिक्षण की व्यवस्था क्रैनवेल में थी। सन् १९३२ में पहली बार एक भारतीय कम्पनी ने इस क्षेत्र में कदम रखा। यह 'टाटा एयर लाइन्ज' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसने अपना कार्य १५ अक्टूबर, सन् १९-३२ से आरंभ किया। दो से एक इंजन युक्त विमानों से इस कम्पनी ने कराची-मद्रास मार्ग पर साप्ताहिक सर्विस शुरू की। भारत सरकार की डाक ले जाने का ठेका इसने ले रखा था और इसकी आमदनी का मुख्य साधन यही था। इस हवाई मार्ग पर इसके विमान अहमदाबाद, बम्बई और बेलारी ठहरते थे।

इस प्रकार भारत में सिविल और सैनिक दोनों क्षेत्रों में प्रगति साथ-साथ होती चली। सन् १९३३ में सिविल सर्विस के लिए ब्रिटिश सरकार तथा उसकी इम्पीरियल एयरवेज़ के साथ और एक इकरारनामा हुआ। इसके अन्तर्गत लन्दन-कराची सर्विस को सिंगापुर तक बढ़ा दिया गया और इसे इंग्लैंड-आस्ट्रेलिया के हवाई मार्ग से जोड़ दिया गया। इसके बाद 'ट्रांस-कांटीनेण्टल एयर-वेज़' के नास से एक प्राइवेट कम्पनी की स्थापना की गयी। इसमें भारत सरकार के २४ प्रतिशत, इम्पीरियल एयरवेज़ के ५१ प्रतिशत और इंडियन नेशनल एयरवेज के २५ प्रतिशत हिस्से थे। इस कम्पनी के द्वारा कराची-सिंगापुर के बीच साप्ताहिक सर्विस का आरम्भ हुआ, किंतु इससे जनता की माँग पूरी न होती थी।

११. हवाई डाक-व्यवस्था

सन् १९३३ में इंडियन नेशनल एयरवेज़ की स्थापना आर० ई० ग्रांट गावान ने की। इस कम्पनी ने कुछ देशी सर्विस का भी आयोजन किया, जिसमें कलकत्ता-रंगून, कलकत्ता-ढाका वायुमार्ग सम्मिलित थे। भारत सर-कार के साथ इस कम्पनी ने साप्ताहिक लाहौर-कराची सर्विस चलाने के लिए १० वर्ष का एक समझौता किया था। इसी प्रकार का एक और समझौता एक

* सुब्रत मुकर्जी, जो आजकल भारतीय वायुसेना के कमाण्डर-इन-चीफ हैं, भी इन्हीं छः अफसरों में से हैं। इस पद को सँभालनेवाले ये पहले भारतीय हैं।

अंन्य मार्ग के लिए 'टाटा एयर लाइन्स' के साथ किया गया था। टाटा कम्पनी ने बम्बई त्रिवेंद्रम मार्ग पर अक्टूबर सन् १९३५ से कार्य आरम्भ किया। इसी वर्ष इसी कम्पनी ने बम्बई-देहली सर्विस का उद्घाटन भी किया था। सन् १९३८ इसवी में कराची-मद्रास सर्विस को कोलम्बो तक बढ़ा दिया गया। यह सब योजना सन् १९३६ में ब्रिटिश सरकार ने बनायी थी। इसके अनुसार ब्रिटेन और उसके उपनिवेशों के बीच डाक बिना किसी अतिरिक्त खर्च के ले जानी पड़ती थी। भारत सरकार ने भी इसमें भाग लिया और २८ फरवरी, सन् १९३८ से यह क्रियान्वित होने लगी। लंदन-कराची सर्विस को इसके अनुसार कलकत्ते तक बढ़ा दिया गया। सप्ताह में इसकी चार सर्विस कर दी गयीं। टाटा और इंडियन नेशनल के साथ सरकार ने जो १५ वर्षीय समझौता किया उसके अनुसार अपने अपने मार्गों पर डाक की व्यवस्था का उत्तरदायित्व इन पर था।

टाटा को कराची-मद्रास-कोलम्बो मार्ग पर प्रति वर्ष ५००,००० पौंड भार डाक को ले जाने के उपलक्ष्य में वार्षिक १,५००,००० रुपया देना निश्चित किया गया। यदि डाक का भार इससे बढ़ जाय तो एक पौंड बढ़ोतरी पर एक रुपया के हिसाब से खर्चा देने का निश्चय हुआ। इसी प्रकार इंडियन नेशनल को १३०,००० पौंड डाक प्रति वर्ष के लिए ३२५,००० रुपया वार्षिक देना निश्चय हुआ और एक रुपया प्रति पौंड बढ़ोतरी के लिए। सप्ताह में चार सर्विस इनको भी करनी पड़ीं।

१२. फ्लाइंग क्लबों की स्थापना

सन् १९३९ में युद्ध के आरम्भ होने पर यह योजना समाप्त हो गयी। सिविल सर्विस के साथ-साथ निजी उड़ानें भी लोकप्रिय होने लगी थीं। डी० हैविलैंड ने एक ऐसे छोटे-माथ दुपंखी विमान का निर्माण किया था जिसे कोई भी आसानी से उड़ा सकता था। कार के पीछे बाँधकर इसे मोटरखाने में रखा भी जा सकता था। इसका मूल्य भी ५९५ पौंड था। इस आविष्कार ने खिलाड़ी चालकों को जन्म दिया। इसके पुर्जों को जोड़ने के कारखाने भारतवर्ष में भी खोले गये। इससे फ्लाइंग क्लबों की स्थापना की योजनाओं को प्रोत्साहन

मिला। सन् १९२७ में भारतवर्ष में ऐसे क्लब की स्थापना हुई। भारतवर्ष में ऐसी योजनाओं में सर विक्टर सस्सून ने बहुत रुचि दिखायी। दिसम्बर सन् १९२७ को इन्होंने भारत सरकार को निम्न शर्तों पर आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया—

क—भारत सरकार भारत के एरो-क्लब को ३०,००० रुपये की सहायता दे।

ख—जो नये क्लब खोले जायँ, प्रत्येक को भारत सरकार २०,००० रुपये सहायता के रूप में दे।

ग—अनुदान मिलने तक वह स्वयं प्रत्येक क्लब के घाटे को पूरा करती रहे।

भारत सरकार ने यह स्वीकार कर लिया और प्रारम्भिक ग्रांट के रूप में दो विमान, एक अतिरिक्त इंजन और जिस क्लब में हैंगर की व्यवस्था न थी उसको इसके निर्माण का कुल खर्च देने का निश्चय किया। इसके फलस्वरूप कलकत्ता,बम्बई, दिल्ली तथा कराची में कुल चार क्लबों की स्थापना हुई, बाद में तीन क्लब और खोले गये। सन् १९३९ में युद्ध आरम्भ होने से पूर्व इस प्रकार के दस क्लब थे। इनमें से सात को सरकार से आर्थिक सहायता दी जाती थी। आर्थिक सहायता की राशि इन क्लबों में विमानों की संख्या और उनके वर्ग पर निर्भर थी। यह सहायता अधिक से अधिक २५,००० रुपये तक दी जा सकती थी।

इस बीच सैनिक विमान में कम उन्नति हुई। इस समय में युद्ध का भय न था और आर्थिक दशा भी कुछ अच्छी न थी। अतः भिन्न-भिन्न देशों की सरकारें बममार तथा लड़ाकू विमानों के लिए अधिक मात्रा में धन व्यय करना उपयुक्त न समझती थीं। इतना होने पर भी विमानों में सुधार का काम चल रहा था। दुपंखी विमानों की अपेक्षा इकपंखी विमान फिर अच्छे समझे जाने लगे थे। अन्तर्राष्ट्रीय हवाई प्रतियोगिताओं का आयोजन होने लगा था। इनमें शनेडर ट्राफ़ी की उड़ान उल्लेखनीय है।

स्काट और ब्लैक ने एकपंखी विमान द्वारा ही दौड़ को जीता था, इसलिए और भी एकपंखी विमानों की ज्यादा माँग हो गयी। इन लम्बी दौड़ों में जो

विजय इन विमानों को प्राप्त हुई इससे इन पर जनता में विश्वास जमने लगा, अब इनकी सहायता से अधिक चाल के साथ लम्बे फासले तय किये जा सकते थे। अमेरिका में भी इस प्रकार के विमानों का निर्माण आरम्भ किया गया। ये डेकोटा के नाम से प्रसिद्ध हुए।

ब्रिटेन की इम्पीरियल एयरवेज़ ने साम्राज्य में फैले हुए वायुमार्गों के लिए अट्ठाईस एकपंखी का आर्डर दिया। यह अपने किस्म के नये विमान थे। इनका सारा ढाँचा धातु का बना था। इनमें चार इंजनों के लगाने की व्यवस्था थी। इस प्रकार के पहले विमान ने ४ जुलाई, सन् १९३६ई० को उड़ान की। इसके लगभग चार मास बाद यह इम्पीरियल एयरवेज़ के अन्तर्गत उड़ानों में भाग लेने लगा था। कुल मिलाकर इस कम्पनी के अन्तर्गत इन विमानों ने चार करोड़ मील की उड़ान की थी।

धीरे-धीरे इन विमानों से ब्रिटेन विश्व के सिविल-सर्विस वायुमार्गों में अगुआ-सा बन गया। 'साम्राज्य हवाई डाकयोजना' का उद्घाटन भी इन्हीं विमानों से हुआ। अब ब्रिटिश-साम्राज्य के किसी भी कोने तक आधे औंस भार का पत्र डेढ़ पेंस में आ-जा सकता था। इन सफलताओं ने हवाई यात्रा के सुनहरे युग के आने की सूचना दी। ऐसा प्रतीत होता था कि ये विमान लम्बी उड़ानों के लिए सबसे ज्यादा उपयुक्त होंगे। इधर प्राइवेट उड़ानें भी काफी लोकप्रचलित हो गयी थीं। इनको और लोकप्रिय करने के लिए प्रत्येक देश में सरकार की ओर से योजनाएँ बनायी जा रही थीं। इन योजनाओं की सहायता से ऐसे विमानचालक भी तैयार किये जा रहे थे जो संकट आने पर देश के काम भी आ सकें। अब द्वितीय युद्ध के भय से सभी आशंकित थे। यही कारण था कि ब्रिटेन में सन् १९३६ के पश्चात् एकपंखी लड़ाकू विमानों तथा बममारों के उत्पादन की मात्रा दुगुनी कर दी गयी। जर्मनी-जैसे अन्य देशों में अभिनव विमानों का निर्माण हो रहा था।

विमानों के विकास और प्रगति के साथ ही साथ हवाई अड्डों पर एरियल के बड़े-बड़े स्तम्भ दिखाई देने लगे थे। किसी भी देश की सुरक्षा की व्यवस्था में यह भी एक आवश्यक अंग का स्थान प्राप्त कर रहे थे। ये 'रेडार' यंत्र-

व्यवस्था के अन्तर्गत आते हैं। विमानों की उड़ान के समय उनके सम्बन्ध में पता लगाने के लिए इनको एक अच्छा साधन माना जाता रहा है।

ब्रिटेन और जर्मनी में जेट-इंजनों पर परीक्षण हो रहे थे। आशा की जा रही थी कि शीघ्र ही इनका प्रयोग हवाई युद्ध में एक क्रांति पैदा करेगा। इस बात के स्पष्ट प्रमाण विद्यमान थे कि भविष्य के युद्ध में विमानों के प्रयोग पर काफी जोर दिया जायगा। एबीसीनिया पर मुसोलिनी द्वारा काफी सफल प्रयोग किया जा रहा था। स्पेन में इटली और जर्मनी के बममारों की रूस के बममारों से मुठभेड़ भी हम सुन ही चुके थे।

१३. द्वितीय महायुद्ध

३ सितम्बर सन् १९३९ को द्वितीय विश्वयुद्ध ने विश्व को आ घेरा। इस कारण इसी मास 'साम्राज्य हवाई डाकयोजना' समाप्त कर दी गयी। भारत में 'टाटा एयरलाइन्स' को अपने विकास की बहुत-सी योजनाओं में कमी करनी पड़ी। तत्कालीन भारत सरकार ने इस कम्पनी के बहु-इंजनयुक्त विमानों के बेड़े को अपने अधिकार में ले लिया। इस प्रकार इस कम्पनी को अपने कार्य में कुछ कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। एयर सर्विसेज़ नामक एक और कम्पनी जो बम्बई और काठियाबाड़ राज्य के कुछ भाग में सिविल-सर्विस का संचालन करती थी, सन् १९३९ में आर्थिक कठिनाइयों के कारण ठप हो गयी। और इस प्रकार युद्ध आरम्भ होने पर भारत सरकार ने उस समय में काम करने वाली दो हवाई कम्पनियों से युद्ध के लिए काम लेना शुरू किया। मुख्यतः ये सरकारी आवश्यकताओं को ही पूरा करती थीं। सन् १९४१ तथा सन् १९४२ में भारत सरकार ने इन कम्पनियों को दो इंजन-युक्त कुछ विमान दिये जिससे युद्ध के लिए ये अपनी उड़ानों को सुगमता से सम्पन्न कर सकें। उस समय भारतवर्ष में निम्नलिखित मार्गों पर हवाई सर्विस प्राप्त थी——

कराची-कोलम्बो, बम्बई-कलकत्ता, बम्बई-करांची, बम्बई-दिल्ली, बम्बई-कोलम्बो, बम्बई-कोइम्बटूर, दिल्ली-कराची, दिल्ली-भोपाल-हैदराबाद-बंगलोर-त्रिचनापल्ली-कोलम्बो, दिल्ली-जोधपुर-कराची, दिल्ली-अहम-

दाबाद-बम्बई, लाहौर-कराची, लाहौर-क्वेटा, लाहौर-पेशावर, कलकत्ता-दिल्ली, कलकत्ता-दिनजान, कलकत्ता-जोरहाट।

द्वितीय युद्ध के दिनों में भारतीय वायुसेना में वालण्टियर रिजर्व की स्थापना की गयी। इसने रायल एयर फोर्स के अफसरों के साथ भारत के समुद्री किनारों की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया था। इसके चौबीस अफसर इंग्लैंड की रायल एयर फोर्स के साथ यह काम करने के लिए सन् १९४० में इंग्लैंड के लिए भेजे गये। भारतीय स्थल-सेना को भी सैनिक पर्यवेक्षण के लिए एक हवाई टुकड़ी दी गयी थी। मजूमदार को सन् १९४२ में स्क्वाड्रन नं० १ को कमान करते समय बर्मा में वीरता के कार्य करने के उपलक्ष्य में डी० एफ० सी० पारितोषिक मिला। भारतीय वायुसेना का इस प्रकार का सम्मान प्राप्त करने का यह पहला अवसर था। १९४३ तक भारतीय वायुसेना के पास ९ स्क्वाड्रन फौजें थीं। इनमें से सात तूफानी हवाई जहाजों और दो गोताखोर बममारों से सुसज्जित थीं। सन् १९४३ और १९४५ में इस सेना ने अराकान और इम्फ़ल के युद्ध में महत्त्वपूर्ण विजय पायी। इसी कारण यह १४वीं फौज की 'आँखें और कान' उपाधि से पुकारी जाने लगी थी। सन् १९४८ में भारतीय वायुसेना में कुछ वेम्पायर जेट विमान शामिल किये गये। कुछ फ्लाइंग क्लबों को भी युद्ध में अपना कार्य बन्द करना पड़ा था। केवल पाँच फ्लाइंग क्लब ही खुले थे और इनको भी प्रतिरक्षा-विभाग से संबंधित कार्यों को कभी-कभी देखना पड़ता था।

युद्ध ने विमान-उद्योग की प्रगति का एक और अवसर प्रदान किया। यह प्रगति अधिकतर बड़े देशों में ही हुई। विमान अब और तेज़ चाल से उड़ने लगे थे। इनके लिए अटलांटिक महासागर को पार करना अब एक सरल काम था। इन्होंने युद्ध में अपने विशाल रूप का भली भाँति प्रदर्शन किया था। इनके द्वारा फेंके गये विस्फोटक पदार्थों, बम इत्यादि ने जनता के हृदय में इनकी शक्ति का सिक्का जमा दिया था। जर्मनी इस क्षेत्र में सबसे आगे था। उसके लड़ाकू राकेट तथा द्रुतगामी जेट विमानों की उपेक्षा करना आसान न था। इस सम्बन्ध में जितना अनुसन्धान कार्य वह कर चुका था, उसे देखकर आश्चर्य होता था। युद्ध समाप्त होने पर ब्रिटेन, रूस और अमेरिका ने अपने विमान-निर्माण कार्यों में इससे काफी सहायता ली।

युद्ध के पश्चात् विमानों से शांति-योजनाओं में सहायता ली गयी। नीदरलैंड जैसे देशों में, जहाँ अनाज की कमी थी, बमों के स्थान पर इनके द्वारा अनाज की वर्षा की गयी। इस युद्ध के फलस्वरूप ही हवाई अड्डे, अच्छे विमान-चालक और प्रचुर मात्रा में विमान प्राप्त हुए जिन्होंने शांति के समय सिविल सर्विस की स्थापना में भारी सहायता दी। धीरे-धीरे सब मुख्य कम्पनियों ने स्थल-विमानों को अपनाना आरम्भ किया। इससे अमेरिका के विमान-उद्योग को बहुत लाभ हुआ, क्योंकि युद्ध के समय हुए एक समझौते के अनुसार अमेरिका को ही इस प्रकार के विमान बनाने का अधिकार प्राप्त था, जब कि इंग्लैंडवालों का क्षेत्र युद्ध-विमानों के निर्माण तक सीमित था।

१४. हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट फैक्टरी

युद्ध के पश्चात् भारत सरकार से अमेरिकी विमानों को बहुत सस्ते में खरीदा जा सकता था, इस कारण यहाँ की बहुत-सी कम्पनियों ने इससे लाभ उठाना चाहा। युद्ध के इन विमानों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करने के लिए भाग्य से बंगलोर में हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट लिमिटेड नाम की कम्पनी प्रस्तुत थी। सन् १९४० में इसकी स्थापना भारत सरकार तथा मैसूर राज्य के संरक्षण में हुई थी। पहला विमान, जिसके पुर्जे यहाँ जोड़े गये, हार्लो पी सी ५ था। अगस्त, सन् १९४१ में इसने अपनी पहली उड़ान की। इसके पश्चात् कर्टिस हाक फाइटर पर काम आरम्भ हुआ। इसकी पहली उड़ान सन् १९४२ के जुलाई मास में हुई। इस समय तक यहाँ पर केवल पुर्जे जोड़ने का कार्य ही होता था। सन् १९४२ में पहली बार दस सैनिकों के बैठने योग्य ग्लाइडर का अभिकल्प यहाँ पर तैयार किया गया और देशी लकड़ी से इसका निर्माण हुआ। अगस्त सन् १९४२ में इसकी पहली सफल उड़ान हुई थी।

मध्यपूर्व में युद्ध के बादल आने पर भारत सरकार ने उक्त कम्पनी को अपने हाथ में ले लिया और सन् १९४३ में अमेरिकी वायुसेना को इसकी व्यवस्था सौंप दी गयी। इसकी निगरानी में इस कम्पनी का खूब विस्तार हुआ। यहाँ पर अधिकतर पुर्जे जोड़ने, मरम्मत करने तथा विमानों में सुविधा के अनुसार परिवर्तन करने का ही कार्य होता था। इसमें बहुत से कारीगर भारतीय थे।

चित्र ५

हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट कंपनी का कारखाना, बंगलोर (पृ० ६२)
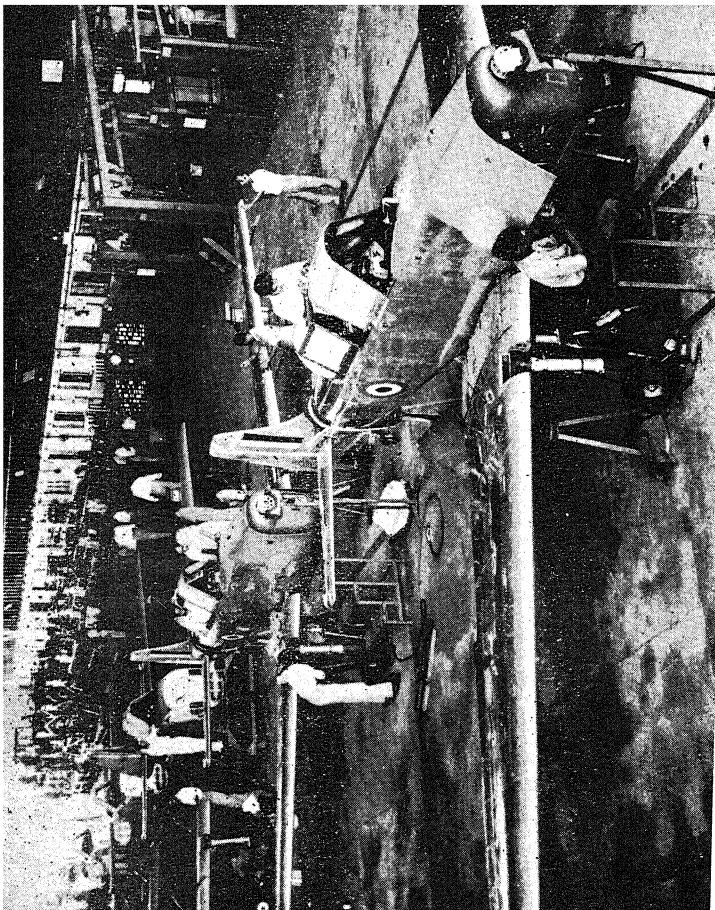
चित्र ६

भारत में बना पहला पूर्णतः भारतीय विमान——एच० टी०—२ (पृ० ६३)
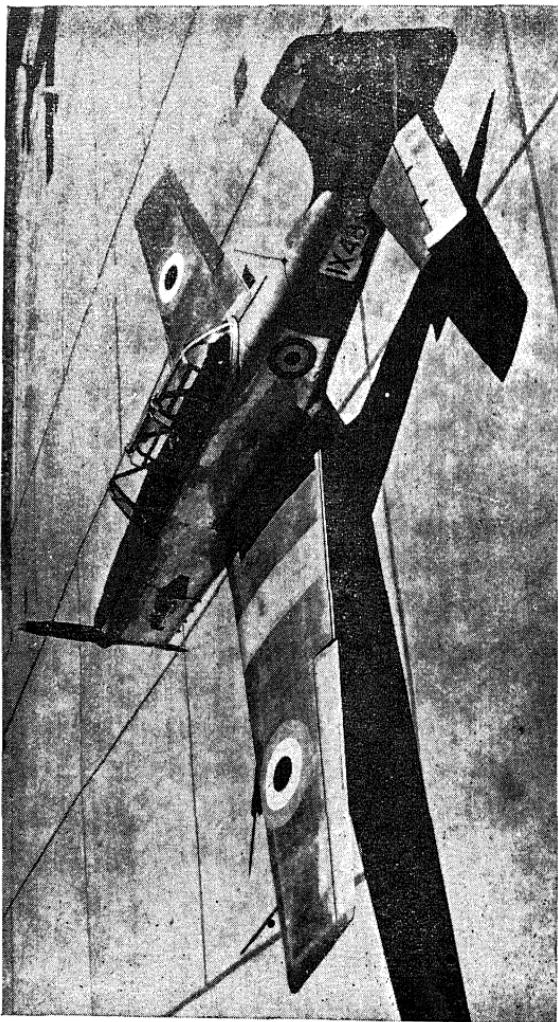
युद्ध समाप्त होने पर सन् १९४५ में इसे पुनः भारत सरकार और मैसूर रियासत ने अपने हाथ में ले लिया। इस कम्पनी की सहायता से संख्या में लगभग १५० सी–४७ डेकोटा को सिविल-सर्विस योग्य बनाया गया। यह राष्ट्रीय महत्त्व की बात थी। टाटा और इंडियन नेशनल के अतिरिक्त लगभग १९ कम्पनियाँ और मैदान में आयीं। सन् १९४७ में भारतवर्ष में विभाजन के फलस्वरूप कुल १३ कम्पनियाँ ही रह गयी थीं। भारत आर्थिक दृष्टि से इतना समर्थ न था कि वह इतनी कम्पनियों को सँभाल सकता। धीरे-धीरे ये कम्पनियाँ बन्द होने लगीं और सन् १९५२ तक केवल नौ कम्पनियाँ ही शेष रह गयीं।

अब भारतीय सेना को व्यवस्थित करने के लिए हिन्दुस्तान एयर क्राफ्ट कम्पनी को इस सेना के विमानों से सम्बन्धित मरम्मत तथा पुर्जे जोड़ने का कार्य सौंपा गया। इसके फलस्वरूप १०० माथ विमानों को प्रयोग योग्य बनाया गया। इसके अतिरिक्त अन्य लड़ाकू विमानों, डेकोटा इत्यादि को भी ठीक किया गया। इस फैक्टरी ने मध्य-पूर्व तथा एशिया के कुछ अन्य देशों की आवश्यकताओं को भी पूरा किया।

सन् १९४९ में ब्रिटेन की एक कम्पनी की अनुमति से भारत सरकार ने इस कम्पनी को ५० ट्रेनर विमान बनाने के लिए कहा। ३० अप्रैल सन् १९४९ को इस प्रकार के पहले भारतनिर्मित विमान ने सफल उड़ान की। इस प्रकार भारत में विमानों के निर्माण में आत्मनिर्भर होने का कार्य आरम्भ हुआ।

१५. भारतीय ट्रेनर विमान

सन् १९४८ में एच० टी०–२ नाम के ट्रेनर विमान का निर्माणकार्य आरम्भ हुआ। इसने अपनी पहली उड़ान १३ अगस्त सन् १९५१ को की। एच० टी०–२ पूर्ण रूप से भारतीय विमान था। यह भारत में ही बना और भारतीयों द्वारा ही बनाया गया था, लेकिन इसके इंजन और पुर्जे इंग्लैंड से प्राप्त किये गये थे। इसके पश्चात् इस कम्पनी ने भारतीय वायुसेना के लिए वैम्पायर जेट विमान भी बनाना आरम्भ किया और इसके लिए डी० हैविलैण्ड की अनुमति प्राप्त की। इस प्रकार के पहले विमान ने अपनी पहली उड़ान सन् १९५७ ई० में की।

रात्रि के समय हवाई डाक की व्यवस्था भारतवर्ष में सन् १९४९ में की गयी। मई सन् १९५३ को भारतीय संसद ने एयर कारपोरेशन ऐक्ट पास किया, जिसके अनुसार १ अगस्त १९५३ को भारत की सभी हवाई कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। अब ये कम्पनियाँ इंडियन नेशनल एयरवेज़ के नाम से प्रसिद्ध हैं। १५ मई, १९५७ ई० तक इंडियन एयर लाइन्स कारपोरेशन के पास ६५ डकोटा, १२ वाइंकिंग, ६ स्काई मास्टर, ८ हीरोन, १ सिगल-बीच, १ अवरो, १९ और एक एल ५ हैं। इसके अतिरिक्त एयर इंडिया इन्टर-नेशनल ने भारत सरकार की स्वीकृति से तीन बोइंग ७०७ जेट विमान मँगाने का आर्डर दिया है। उसके पास इस समय ४ सुपर कान्स्टेलेशन (माडल १०४९) और ३ कान्स्टेलेशन (माडल ७४९ ए) हैं। नौ चार्टर कम्पनियाँ मुख्य तौर पर भार ले जाने का कार्य करती हैं।*

इसी प्रकार की व्यवस्था इंग्लैंड में भी है। हमारा देश अभी विमान-क्षेत्र में बहुत पीछे है। इस समय तो ब्रिटेन के इंजन बहुत लोकप्रिय हैं। रूस, अमेरिका, फ्रांस और स्वीडन वालों ने भी इन इंजनों का प्रयोग अपने द्रुतगामी विमानों में किया है। ब्रिटेन के कामेट, वाइकाउण्ट और ब्रिटेनियाँ ने उस देश को काफी ख्याति दी है। भारत में आजकल बंगलोर की हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट लिमिटेड द्वारा एक अत्यन्त उच्च कोटि के जेट विमान, जिनके पंख पीछे को मुड़े होंगे, तैयार किये जा रहे हैं। जेट-विशेषज्ञ डा० कुर्टवंक के नेतृत्व में जर्मनी का एक दल इस कम्पनी को परामर्श दे रहा है।

विमानों की प्रगति हमें किस ओर ले जायगी हम नहीं कह सकते। ध्वनि से भी अधिक तेज चाल से आज हम वायु में उड़ान कर सकते हैं। नयी धातुएँ, नये इंजन, नये ढंग का ईंधन और नयी आकृतियों ने विमानों के एक नये युग का सूत्रपात किया है। आज विश्व का प्रत्येक राष्ट्र वैमानिकी में नेतृत्व प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न कर रहा है।

इन सब प्रगतियों को देखते हुए यह असम्भव नहीं है कि ऐसा समय भी आ जाय जब हमें हवाई अड्डों की आवश्यकता न रहेगी। ऊर्ध्व-उड़ान के

* संसद-प्रश्नोत्तर, १६ मई, १९५७ ई०।

चित्र ८

इंडियन एयर लाइन्स कारपोरेशन द्वारा बम्बई–कराची, दिल्ली–कलकत्ता, रंगून आदि मार्गों में प्रयुक्त वाइकाउण्ट एयर क्राफ्ट (पृ० ६४)

चित्र ७

भारत में बने दो ट्रेनर विमान—एच० टी०-२ (पृ० ६३)
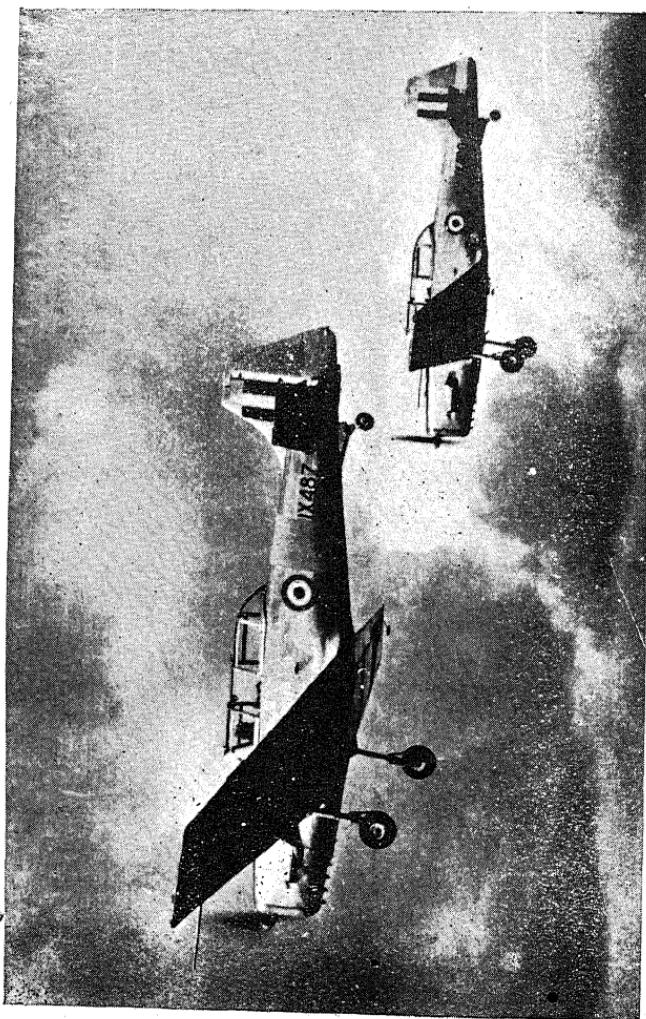
परीक्षण किये जा रहे हैं। इनमें सफलता प्राप्त होने पर शहर में किसी भी स्थान से उड़ान हो सकेगी। फिर भी इसे हम प्रगति की अन्तिम सीमा नहीं कह सकते। राकेट द्वारा मनुष्य चन्द्रलोक तथा अन्य ग्रहों में जाने का प्रयत्न कर रहा है। १४ सितम्बर, १९५९ को रूस का राकेट यान 'लूनिक' द्वितीय चन्द्रमा पर पहुँच भी गया। हो सकता है कि भविष्य में इन ग्रहों में आना-जाना भी सामान्य बात हो जाय।

पाँचवाँ अध्याय

वायुमण्डल

१. पतंग से सादृश्य

वैमानिकी के विकास का इतिहास पढ़ने पर हमारे भन में इन 'उड़ानों' का रहस्य जानने का कौतूहल उत्पन्न होना स्वाभाविक है। वायु से भारी इस मशीन में क्योंकर उड़ान करने की क्षमता आती है, इसे समझने के लिए हम पतंग का सादृश्य लेंगे। पतंग को उड़ाते समय उसका बोझ नीचे की ओर होता है और डोर इसे पीछे की ओर खींचती है। वायु इन दोनों खिचावों को तोलती-सी हुई पतंग को आकाश की ओर उठाती है और ज्यों-ज्यों हवा अधिक होती जाती है त्यों-त्यों पतंग और भी ऊपर की ओर उठती जाती है। हवा की मात्रा पर्याप्त होने से, झोंके आदि लगने पर, वह इधर-उधर नाचती है। ऐसी दशा में 'पूँछ' बाँधने से वह थमी रहती है। वायु के ज़ोर में कमी पड़ने पर पतंग नीचे आना शुरू कर देती है। भूमि पर वायु का जोर कम होता है, अतः इसे बढ़ाने के लिए पतंग हाथ में लेकर थोड़ी दूर तक दौड़ते हैं और तब इसे छोड़ते हैं। वायु में दौड़ते हुए हमारे साथ पतंग खिचती है और नीचे से ज़ोर पाकर हवा इसे ऊपर उठा देती है। विमान में इसी प्रकार उसका इंजन मानो पतंग का उड़ानेवाला है। आरम्भ में विमान को जमीन पर दौड़ाने पर उसके भार से हवा का ज़ोर बढ़ जाता है, जिससे ही वह ऊपर उठ पाता है। इस क्रिया में विमान के सामने के पंखे सहायता देते हैं और फिर वह अपनी बगल में दोनों ओर लगे पक्षों की सहायता से उड़ान आरम्भ कर देता है।

जिन सिद्धान्तों पर विमान की उड़ान निर्भर है• उनका वायुमण्डल के गुण-धर्मों से घनिष्ठ सम्बन्ध है, अतः यह आवश्यक है कि हम इसके विषय में कुछ जानकारी प्राप्त करें।

२. वायु का विश्लेषण

वायु का यह मंडल अनेक वायव्य पदार्थों का मिश्रण है और एक जगह से दूसरी जगह जाने पर यह कुछ-न-कुछ बदला हुआ मालूम पड़ता है। इसमें पानी के वाष्प के अलावा चार भाग आक्सीजन तथा एक भाग नाइट्रोजन गैस होती है। इसके अतिरिक्त अमोनिया, नीआन, ओज़ोन, कार्बन-डाइ-आक्साइड इत्यादि गैसों की भी कुछ मात्रा मिली रहती है। इनमें से दो मुख्य गैसों (नाइट्रोजन और आक्सीजन) में से पहली गैस अक्रिय और दूसरी गैस सक्रिय होती है। आक्सीजन गैस मनुष्य के जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अधिक ऊँचाई पर विमान के चालक को इसकी कमी पूरी करने के लिए कृत्रिम आक्सीजन का आश्रय लेना पड़ता है। वायुमंडल की निचली सतहों पर ज़ल-वाष्प हमेशा रहता है, इसकी मात्रा ऋतु के साथ बदलती है तथा ऊँचाई बढ़ने से घटती है। एक-सी अवस्थाओं में पानी के वाष्प का घनत्व हवा के घ़नत्व का ३/५ भाग होता है, इसलिए जलवाष्प के होने से हवा का दाब और घ़नत्व घट जाता है।

वायु में इतने पदार्थों का मिश्रण होता है तथापि वह अदृश्य होती है। इसके इस गुण-धर्म के कारण उड़ान का रहस्य समझने में कुछ कठिनाई का अनुभव होता है। समुद्र में किसी जहाज के चलने पर पानी में जो प्रतिक्रिया होती है वह स्पष्ट दिखाई पड़ती है, परन्तु विमान की उड़ान के समय वायु में जो प्रतिक्रिया होती है उसको प्रत्यक्ष रूप से देखना कठिन है। वायु में विमान के चलने पर काफी विक्षोभ होता है। वायु में धुएँ की कुछ मात्रा को मिलाने पर इसमें विमान से उत्पन्न हलचल को देखा जा सकता है। हमने सिगरेट से धुएँ को ऊपर जाते देखा ही है। आरम्भ में यह एक सीधी रेखा में आकाश की ओर चलता है। कुछ दूर जाने पर इसकी गति में भँवर पड़ने लगते हैं। इसी प्रकार धुएँ की कुछ मात्रा मिलाने पर हम विमान से वायुमण्डल में उत्पन्न हलचल को भी देख सकते हैं।

वायुमण्डल कहाँ तक फैला है, यह भी एक कठिन प्रश्न है। इसका ठीक-ठीक उत्तर देना असम्भव है। गुब्बारे की सहायता से लगभग ३५ मील की

ऊँचाई तक वायु का पता लगाया गया है। विमान द्वारा तो केवल ७९,००० फुट तक ही उड़ान की जा सकी है। रेडियो तरंगों द्वारा लगभग २०० मील ऊँचाई तक की प्रतिध्वनि प्राप्त हुई है। इसके फैलाव का संबंध गुरुत्वाकर्षण से है।

३. गुरुत्वाकर्षण

गुरुत्वाकर्षण एक विशेष प्रकार की शक्ति है। भौतिक पदार्थ का प्रत्येक कण इस सृष्टि में हर दूसरे कण को सभी दूरियों पर दोनों को मिलानेवाली रेखा की दिशा में आकर्षित करता है। इनके इस बीच के आकर्षण-बल को ही 'गुरुत्वाकर्षण' कहते हैं। आकाशीय पदार्थों के बीच आकर्षण का वर्णन करते समय इसका प्रायः वर्णन किया जाता है। सूर्य, पृथ्वी, ग्रह, नक्षत्र, तारे इत्यादि सभी के बीच यह शक्ति विद्यमान है। यही कारण है कि सौर जगत के ग्रह सूर्य की परिक्रमा, ग्रहों के उपग्रह उनकी परिक्रमा और सारा सौरमंडल किसी अन्य तारा-पुंज की परिक्रमा करता रहता है।

पृथ्वी और उसके धरातल पर या उसके पास पड़ी हुई दूसरी वस्तु के बीच लगनेवाले बल को भी 'गुरुत्वाकर्षण' कहते हैं। पृथ्वी का द्रव्यमान प्रत्येक ढंग से धरातल पर पायी जानेवाली किसी भी वस्तु से कई गुना अधिक होता है। अतः उस वस्तु पर पृथ्वी का ही आकर्षण सक्रिय रहता है। इस प्रकार सभी वस्तुएँ इस बल के कारण पृथ्वी के केन्द्र की ओर आकृष्ट रहती हैं। ऐसा विचार किया जाता है कि इस कारण वायुमण्डल का विस्तार भी सीमित होना चाहिए।

४. भार-द्रव्यमान

वायु में भी अन्य पदार्थों की भाँति भार होता है। किसी भी वस्तु का भार वह बल है जिससे पृथ्वी उस वस्तु को अपनी ओर खींचती है। यह बल पदार्थ में द्रव्य की कुल मात्रा पर निर्भर है। वैज्ञानिक भाषा में इसे 'द्रव्यमान' कहते हैं। किसी भी वस्तु को स्थिर अथवा गति की दशा में लाने के लिए जो कठिनाई होती है, उसके मान को उस पदार्थ का द्रव्यमान[1] कहते हैं, तो भी

1. Mass

'द्रव्यमान' की परिभाषा करना कठिन है। द्रव्यमान द्रव्यमान है, ऐसा भी कहा जा सकता है। सामान्यतः भार और द्रव्यमान को पर्यायवाची शब्द समझा जाता है। सामान्य तुला की सहायता से हम वस्तुओं का द्रव्यमान और कमानीदार तुला से भार मालूम करते हैं। वस्तु से उसके पदार्थ के परिमाण को द्रव्यमान तथा गुरुत्वाकर्षण बल को उसका भार कहते हैं। एक वस्तु का द्रव्यमान पृथ्वी के प्रत्येक स्थान पर एक ही रहेगा, परन्तु उसका भार गुरुत्वाकर्षण बल के कारण भिन्न होता है; भूमध्यरेखा के समीप कम और ज्यों-ज्यों इससे दूर जायँगे यह अधिक होता जायगा। किसी भी स्थान पर किसी वस्तु का भार उसके द्रव्यमान का समक्रमानुपाती होता है, अर्थात् यदि द्रव्यमान दूना है तो गुरुत्वबल भी दूना होगा, यदि द्रव्यमान चार गुना है तो गुरुत्वबल भी चार गुना होगा।

५. दाब-संबन्धी नियम

भार के कारण किसी भी तल पर वायु अपना दाब डालती है। एक इकाई क्षेत्र पर वायु का जो बल लगता है वही उसका दाब कहलाता है। दो वर्गफुट क्षेत्रफल पर दस पौंड बल लगा हो तो इस क्षेत्र पर दाब की मात्रा पाँच पौंड प्रति वर्गफुट होगी। वायु में उसके अणु अन्य द्रव-पदार्थों की भाँति तीव्र गति से घूमते रहते हैं। किसी ठोस पिंड को इस द्रव-पदार्थ में रखने पर ये अणु उस पिंड के तल पर टकराते हैं। इस प्रकार इन करोड़ों अणुओं के टकराने से उस पिंड पर दाब का अनुभव होता है। द्रव-पदार्थों के दाब से सम्बन्धित नियम मुख्य रूप से इस प्रकार है—

क—प्रत्येक द्रव अपने भीतर प्रत्येक बिन्दु पर और सभी दिशाओं में दाब डालता है।

ख—द्रव के अन्दर किसी भी बिन्दु अथवा किसी भी क्षितिज तल में सभी बिन्दुओं पर, तथा सभी दिशाओं में द्रव का दाब बराबर रहता है।

ग—द्रव के अन्दर किसी भी बिन्दु पर उसका दाब उस बिन्दु की गहराई के समानुपात होता है।

प्रत्येक वस्तु पर वायुमंडल का दाब पृथ्वी की सतह पर हर वर्गइंच पर १५ पौंड भार के लगभग है। मानवशरीर पर भी यह दाब पड़ता है, परन्तु चारों

और वायु से घिरे रहने के कारण इसका हमें अनुभव नहीं होता। समुद्रतल पर यह १४·७ पौंड प्रति वर्गइंच होता है। हम कह चुके हैं कि जगह-जगह पर ऋतु और ताप बदलने से दिन-प्रतिदिन, यह भी बदलता है। ऊँचाई बढ़ने से दाब कम होता है, जैसा कि तालिका सं० १ (पृष्ठ ७५) से स्पष्ट है। ऐसा अनुमान किया गया है कि कम ऊँचाई पर १०० फुट ऊपर या नीचे जाने पर वायु-दाबमापी के पाठ्यांकमें एक इंच का अन्तर पड़ता है। अधिक ऊँचाई पर यह बात लागू नहीं होती। साढ़े तीन मील ऊँचाई पर वायुमण्डल का दाब ३० सें० मी० होगा और २० मील की ऊँचाई पर ७ से० मी०।

६. घनत्व तथा न्यूटन के नियम

ऊपर वर्णन किये गये वायुदाब के (ग) नियम के अनुसार वायु में आकाश में से नीचे की ओर जाने पर उसका दाब अधिक होता जायगा। यदि हम इस वायु-मण्डल को छोटे-छोटे समानान्तर स्तरों में बँटा हुआ मान लें तो हम कह सकते हैं कि नीचेवाले वायु के स्तर, ऊपरवाले वायु के भार से दबते जायँगे। अधिक दाब के कारण वायु के अणु एक दूसरे के समीप आने का प्रयत्न करेंगे, जिसके कारण नीचेवाली वायु में ऊपरवाली वायु की अपेक्षा कुछ अधिक घनापन प्रतीत होगा। यांत्रिकी में इस घनेपन को 'घनत्व' शब्द से व्यक्त करते हैं। किसी भी वस्तु की इकाई-आयतन के द्रव्यमान की मात्रा को उसका 'घनत्व' कहते हैं।

वायु के घनत्व का उसके दाब से सम्बन्ध है। आकाश की ओर ऊपर जाते समय, ऊँचाई के साथ दाब कम होता जाता है, अतः उसके अनुसार घनत्व में भी कमी पड़ती जाती है। (दे०तालिका-१,पृष्ठ७५)समुद्रतल पर इसकी मात्रा अधिकतम होती है। वायु के घनत्व के कारण ही उड़ान संभव है। वायु में उड़ान करनेवाली जितनी मशीनें, गुब्बारे, वायुपोत, विमान हैं सभी को उड़ान के लिए वायु में जिस बल का सहारा लेना पड़ता है वह सब वायु के घनत्व पर पूर्णतया निर्भर है। वायु का घनत्व जितना कम होगा उतना ही विमान कम ऊपर उठेगा। समुद्रतल पर वायु के घनत्व को, जो लगभग ०·०८ पौंड प्रति घनफुट है, घनत्व मान की इकाई मानते हैं।

वायु में न्यूटन के निम्न नियमों के पालन करने की प्रवृत्ति पायी जाती है—

(क) अवस्थितित्व नियम के अनुसार भौतिक जगत् में जो वस्तु स्थिर ही रहती है और जो वस्तु संवेग में चल रही है, वह उसी दिशा में उसी वेग से उस समय तक चलती रहती है जब तक उस पर कोई बल नहीं लगाया जाता। यह न्यूटन का पहला नियम है। यहाँ पर अवस्थितित्व का अर्थ स्थिरता नहीं है, किन्तु अपनी दशा (स्थिर अथवा गतिशील) को स्वतः परिवर्तन करने की सामर्थ्य है। मेज पर रखी हुई पुस्तक वहीं पर पड़ी रहती है, जब तक किसी बाह्य शक्ति की सहायता से उसे उठाया नहीं जाता। एक रेलगाड़ी पटरी पर २० मील प्रति घण्टे की चाल से चल रही है, यह स्थिर अवस्था में नहीं है, परन्तु यांत्रिकी के नियमानुसार साम्यावस्था में है। इस प्रकार कोई भी वस्तु स्थिर अथवा गति की दशा में साम्यावस्था में रह सकती है। साथ ही उसमें अपनी अवस्था में रहने की प्रवृत्ति भी पायी जाती है। संक्षेप में हम कहेंगे कि इन पदार्थों में अवस्थितित्व का गुण-धर्म पाया जाता है। वायु में भी सामान्य पदार्थों की भाँति यह गुण-धर्म पाया जाता है। पुस्तक अथवा रेलगाड़ी की अवस्था में परिवर्तन लाने के लिए जिस शक्ति का प्रयोग किया जाता है उसे यांत्रिकी में 'बल' कहते हैं।

(ख) किसी वस्तु के संवेग[1] परिवर्तन की दर उस पर लगानेवाले बल की समक्रमानुपाती होती है। यह परिवर्तन बल की दिशा में ही होता है। यह न्यूटन का दूसरा नियम है।

संवेग क्या है ? किसी भी गतिशील वस्तु में उसके द्रव्यमान और वेग के कारण जो शक्ति पैदा होती है उसे उस वस्तु का 'संवेग' कहते हैं। स्थिर स्थिति में बड़े से बड़ा पिण्ड भी शक्तिहीन होता है। इसके प्रतिकूल गति पाते ही छोटे से छोटा तिनका भी शक्तिशाली हो जाता है। यह इसी संवेग के कारण होता है। वस्तु के वेग और द्रव्यमान के गुणनफल से उस वस्तु के संवेग की मात्रा प्राप्त होती है। इस नियम के दूसरे भाग से हमें बल के मान का ज्ञान होता है। यदि किसी पिण्ड पर बल लगाया जाय तो पिण्ड लगे हुए बल की दिशा में चलना आरम्भ करता है और उसी दिशा में उस वस्तु के वेगमान में भी परिवर्तन होता

1. Momentum

रहता है। द्रव्यमान स्थायी होते भी पिण्ड के संवेग में परिवर्तन होता है क्योंकि वस्तु के वेग में परिवर्तन होता है। कल्पना कीजिए कि किसी वस्तु का द्रव्यमान (द्र) ग्राम है और बल लगाने से पहले इसका वेग ($वे_1$) से० मे० प्रति सेकण्ड है, अतिरिक्त बल के लगने पर (स) सेकण्ड बाद मान लो, यह वेग ($वे_2$) से० मे० प्रति सेकण्ड हो जाता है तो (स) सेकण्ड में संवेग परिवर्तन द्र $वे_2$—द्र $वे_1$ के बराबर होगा। अतः संवेग परिवर्तन प्रति सेकण्ड $\frac{द्र\ वे_2 - द्र\ वे_1}{स}$ के बराबर होगा। इसमें राशि $\frac{वे_2 - वे_1}{स}$ वेग की वृद्धि को व्यक्त करती है। इसे यांत्रिकी में 'त्वरण' कहते हैं। इस प्रकार किसी भी वस्तु में त्वरण की मात्रा तथा उसके द्रव्यमान के गुणन फल से, उस पर लगे बल की मात्रा का ज्ञान होता है।

(ग) न्यूटन के तीसरे नियम के अनुसार प्रत्येक क्रिया से उसी के बराबर और विपरीत दिशा में प्रतिक्रिया होती है।

इस नियम से एक बात स्पष्ट है कि बल के अकेलेपन का कोई अस्तित्व नहीं, वह सर्वदा जोड़े के रूप में पाया जाता है। एक साधारण-सी समस्या यहाँ यह होती है कि यदि यह नियम ठीक है तो किसी भी वस्तु पर कोई बल लगाने से उसमें गति क्यों आती है? इसका कारण यह है कि क्रिया और प्रतिक्रिया की कार्य-दिशा का एक ही होना आवश्यक नहीं।

७ ऊँचाई और ताप

ऊँचाई बढ़ने पर वायु के ताप में भी कमी पड़ती है। इसका मूल कारण यह है कि सूर्य की विकीर्ण ऊष्मा वायु में से गुजरते समय वायुमण्डल के ताप में कोई विशेष अन्तर नहीं डालती, जब कि पृथ्वी इस ऊष्मा का अवशोषण कर लेती है, जिससे उसका ताप बढ़ जाता है और जो वायु पृथ्वी के इस भाग के सम्पर्क में होती है वह भी इस ऊष्मा का थोड़ी-सी मात्रा में अवशोषण कर लेने के कारण फैलना आरम्भ करती है। इस प्रकार इसके घनत्व में कमी पड़ जाती है तथा यह संवहन धाराओं के रूप में आकाश की ओर उठने लगती है। कम दाब के क्षेत्र में पहुँचने पर वायु का यह भाग और फैलता है। इसकी मात्रा, ताप के परिवर्तन

इत्यादि को जानने के लिए गैस नियम का सहारा लेना पड़ता है। बायल नियम के अनुसार स्थायी ताप पर दाब के बढ़ने से आयतन घटता है।

चार्ल्स नियम के अनुसार किसी भी आदर्श गैस के आयतन में, उसका ताप एक डिग्री सेंटीग्रेड बढ़ने पर, उसके शून्य डिग्री सेंटीग्रेड के आयतन के $\frac{१}{२७३}$ वें भाग की बढ़ोतरी होती है। वास्तव में जब कभी कोई गैस फैलती है तो उसके दाब, आयतन और ताप में कुछ-न-कुछ परिवर्तन होता है, जिसे नीचे दिये हुए गैस समीकरण से समझा जा सकता है।

$$\frac{\text{दाब} \times \text{आयतन}}{\text{ताप}} = \text{स्थिरांक}$$

इसमें दोनों नियम सम्मिलित हैं। स्पष्ट है कि कम दाब के क्षेत्र में, वायु के प्रसार के कारण इस समीकरण के आधार पर ताप में कमी पड़ेगी।

इस प्रकार की संवहन धाराओं की अनुपस्थिति में भी धरातल के समीप की अधिक घनत्ववाली वायु अधिक ऊँचाई पर कम घनत्ववाली वायु की अपेक्षा अधिक मात्रा में इस ऊष्मा का अवशोषण करती है। प्रयोग द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि स्थिर अवस्था में ३०० फुट ऊँचाई के बाद वायु के ताप में लगभग एक डिग्री फारेनहाइट की कमी होती है।

जहाँ तक वायुमण्डल के ताप का सम्बन्ध है उसे मोटी तौर से दो प्रदेशों में बाँटा जा सकता है। इनमें से नीचेवाला प्रदेश 'परिवर्त-मण्डल' कहलाता है। इसमें ऊँचाई पर जाने से करीब ५ डिग्री सेंटीग्रेड प्रति किलोमीटर की दर से काफी जल्दी ताप गिरता है। यह प्रदेश ३६,००० फुट तक माना जाता है। इससे ऊपरी मण्डल को 'समताप मण्डल' कहते हैं। इसके ताप में ऊँचाई के अनुसार कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता। इसका ताप लगभग –६० डिग्री फारेनहाइट से कुछ कम या ज्यादा होता है। यही कारण है कि बहुत ही अधिक ऊँचाई पर विमान में उड़नेवालों तथा पहाड़ पर चढ़नेवालों को ठण्ड से बचने के लिए विशेष व्यवस्था की जाती है। अधिकतर उड़ान 'परिवर्त-मण्डल' में ही होती है।

ऊँचाई के साथ-साथ ताप में कमी होने पर साधारणतः घनत्व बढ़ना चाहिए,

परन्तु ऐसा नहीं होता, क्योंकि ताप में कमी पड़ने के साथ दाब में भी कमी होती है जिसके कारण घनत्व में वृद्धि होने के बजाय कुछ कमी ही होती है जैसा कि तालिका सं०-१ से प्रकट है।

८. तुंगतामापी

भिन्न-भिन्न स्थानों पर वायुमण्डल का दाब जानकर उन स्थानों की ऊँचाई या गहराई का पता लगाते हैं। इसके लिए जिस यन्त्र का प्रयोग करते हैं उसे 'तुंगतामापी' कहते हैं। यह एक प्रकार का 'निर्द्रव वायु दाबमापी' होता है। इस पर इंचों के बजाय फुट अंकित होते हैं। यह दाब को बताता है। क्योंकि दाब का सीधा सम्बन्ध ताप तथा तुगंता से है, इसलिए इसे इस प्रकार अंकित किया जाता है कि इससे तुगंता का प्रत्यक्ष ही पता चल सके। परन्तु ऐसा करने के लिए हमें किसी एक क्षेत्र के ताप को मान की इकाई मानना पड़ता है, इसलिए हम इस प्रकार के अंकित दाबमापी से उस क्षेत्र में जहाँ ताप की स्थिति भिन्न हो ठीक तुगंता मालूम नहीं कर सकते। आजकल एक 'अन्तर्राष्ट्रीय प्रामाणिक वायु-मण्डल' मान लिया गया है और इसके अनुसार ही ताप के परिवर्तन की मात्रा मालूम की जाती है। इसी के आधार पर 'तुगंतामापी' यन्त्र बनाये जाने लगे हैं। इस व्यवस्था में तुंगता के मापने में कम त्रुटि होने की संभावना है। इस प्रकार के यंत्र आजकल प्रत्येक विमान में काम में लाये जाते हैं। विमान चालक इसके द्वारा यह जान लेता है कि उसका विमान किस ऊँचाई पर उड़ रहा है।

९. अन्तर्राष्ट्रीय प्रामाणिक वायुमण्डल

वायु के गुणों; ताप, घनत्व और दाब में परिवर्तन होता रहता है। विमान, उसके इंजन तथा उसके पंखों की कार्यक्षमता का आधार उक्त तीनों गुणों पर निर्भर है। ताप, घनत्व और दाब भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में विभिन्न होते हैं, इस कारण दो विमानों की उड़ान-क्षमता की तुलना करना कठिन हो जाता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए वैमानिकी में एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रामाणिक वायुमण्डल को अपना आधार माना गया है, इसके अनुसार ताप, दाब और घनत्व में तुंगता के अनुसार जो परिवर्तन आता है वह आगे दी गयी तालिका से स्पष्ट हो जाता है।

(तालिका संख्या—१)

समुद्री तलसे ऊंचाई	ताप से०	फा०	घनत्व पौंडप्रति घ० फु०	दाब पौंड क्षेत्रफल	इंच पारा
समुद्र तल	१५°	५९°	·०७७	१४·६९	२९·२
५,०००	५°	४१°	·०६६	१२·२३	२४·९६
१०,०००	– ५°	२३°	·०५६	१०·१०	२०·६३
१५,०००	–१५°	५°	·०४८	८·२९	१६·९३
२०,०००	–२५°	–१३°	·०४१	६·७५	१३·७८
२५,०००	–३५°	–३१°	·०३४	५·४५	११·१३
३०,०००	–४५°	–४९°	·०२९	४·३६	८·९१
३५,०००	–५५°	–६७°	·०२४	३·४६	७·०६
४०,०००	–५७°	–७०°	·०१९	२·७२	५·५५
४५,०००	–५७°	–७०°	·०१५	२·१४	४·३७

१०. वायु-चाल और भूमि-चाल

हवा की चाल का विमान की चाल पर प्रभाव पड़ता है। जब हम कहते हैं कि एक विमान ४० मील प्रति घण्टे की चाल से चल रहा है, तो वास्तव में हम वायु से इसकी आपेक्षिक चाल का वर्णन करते हैं। इसे 'वायु-चाल' कहते हैं। वायु के अस्तित्व का अर्थ है कि वायु का वह भाग पृथ्वी की आपेक्षिक गति
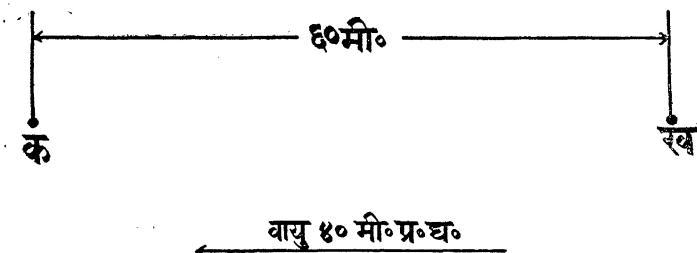
चित्र २—विमान की भूमि-चाल।

में है और यह विमान की चाल पृथ्वी की आपेक्षिक चाल (भूमि-चाल) को प्रभावित करेगी, परन्तु इसके कारण वायु की अपेक्षा विमान की चाल में कोई अन्तर न पड़ेगा। निम्नलिखित उदाहरण से यह अधिक स्पष्ट हो जायगा।

कल्पना कीजिए कि एक विमान क से ख (जो ६० मील की दूरी पर है) मार्ग पर उड़ान कर रहा है और इसकी सामान्य चाल (वायु-चाल) १०० मील प्रति घण्टा है। यदि ख से क की ओर हवा की चाल ४० मील प्रति घण्टा हो, तो विमान की भूमि-चाल क से ख की ओर ६० मील प्रति घण्टा होगी और ख स्थान तक पहुँचने के लिए इसे एक घण्टा लगेगा, यद्यपि इसकी वायु-चाल १०० मील प्रति घण्टा है। ख स्थान पर पहुँचने के बाद जब यह क की ओर वापसी उड़ान आरम्भ करेगा तब इसकी भूमि-चाल १४० मील प्रतिघण्टा होगी, जब कि इसकी वायु-चाल १०० मील प्रति घण्टा ही रहेगी। इस प्रकार आध घंण्टे से कम में ही यह क स्थान पर पहुँच जायगा।

प्रत्यास्थता—प्रकृति को शून्य से घृणा है। जहाँ कहीं भी आंशिक शून्य होता है प्रकृति तुरन्त उसे भर देती है। इसी प्रकार किसी क्षेत्र में दाब कम होने पर जब वायु फैलती है तो वह अपनी इस प्रक्रिया द्वारा दाब को घटने से रोकने की चेष्टा करती है। हवा का यही गुण 'आयतन-प्रत्यास्थता' कहलाता है।

श्यानता—हवा के चलने पर प्रवाह की दिशा में इसकी विभिन्न परतों के बीच कुछ न कुछ आन्तरिक प्रतिरोध बल लगता रहता है। यह प्रतिरोध सम्पर्क में आनेवाले तलों के समानान्तर दो पास-पासवाली परतों के बीच रहता है। हवा के इस गुण को 'श्यानता' कहते हैं। इस प्रतिरोध के कारण तेज चलनेवाली परतों की गति कम और धीरे-धीरे चलनेवाली परतों की गति तेज़ हो जाती है। इस प्रकार विभिन्न परतों के बीच सापेक्षिक गति कम हो जाती है। इस प्रकार श्यानता, तरल पदार्थ का वह गुण हुआ जिसके कारण तरल के भिन्न-भिन्न भागों में सापेक्षिक गति होने से चाल रोकनेवाले बल पैदा हो जाते हैं, जो प्रत्येक तरल के लिए अंशतः भिन्न होते हैं। यह निम्न चित्र से भलीभाँति स्पष्ट हो जायगा। (दे० चित्र संख्या ३)

अ ब और स द दो लम्बे और चौड़े आकार के ठोस पदार्थ से बने पट्टों को इस प्रकार रखा गया कि इनको एक दूसरे के समानान्तर चलाया जा सके। इस सारे उपकरण को एक वायु-प्रवाह रहित कक्ष में रखा गया है। वायु के स्थिर अवस्था में आने पर स द को धीरे-धीरे चलाने पर इन दोनों सीमाओं के बीच जो

प्रतिक्रिया हो उसे देखने के लिए धुएँ की कुछ मात्रा इसमें प्रविष्ट करने से हमें वायु की गति स्पष्ट दिखाई देगी। दोनों सीमाओं के बीच के स्थानों पर, भिन्न-

चित्र ३—**तरल पदार्थ पर श्यानता का प्रभाव।**
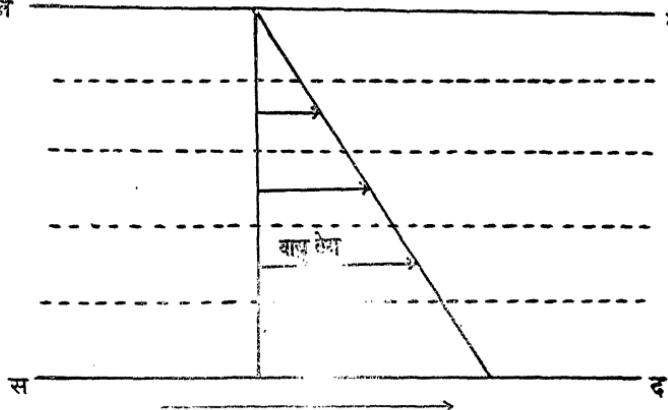
भिन्न बिन्दुओं पर, इस वायु के वेग को मापने से पता लगेगा कि यह समानान्तर अवयवों में अलग-अलग वेग से प्रवाह कर रही है और स द पर यह वेग अधिकतम है। जैसे-जैसे हम स द से अ ब की ओर जाते हैं, परत का वेग कम होता जाता है और इस प्रकार स्थिर सीमा अ ब पर यह शून्य हो जायगा।

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि वायु दोनों सीमाओं पर चिपकी रहती है और गतिशील सीमा इसको अपने साथ-साथ घसीटती है। तत्पश्चात् यह गति समीपवर्ती स्तरों में फैल जाती है। जब एक स्तर दूसरे पर फिसलता है तो दोनों के बीच घर्षण-बल लगता है। यह घर्षण-बल अधिक वेगवाले स्तर के वेग में कमी और कम वेगवाले स्तर के वेग में वृद्धि कर देता है। इस प्रकार कमी होते-होते जब यह गति स्थिर सीमा अ ब तक पहुँचती है तो शून्य हो जाती है। यह प्रयोग बहुत उपयोगी है, क्योंकि इससे गैसों की श्यानता के प्रभाव से सम्बन्धित निम्न दो बातों का पता लगता है।

(क) गतिशील सीमा के सम्पर्क में जो वायु होती है उसके कारण ही

सीमा पर की गति का प्रसार होता है। जो गति ठोस पिंड से बनी सीमा में सान्द्रित थी, उसका ठीक उसी प्रकार गैस में विस्तार हो जाता है जिस प्रकार धुएँ का गैस में होता है।

(ख) एक सीमा से दूसरी सीमा तक समतलों के बीच वायु की चाल बदलती है। यांत्रिकी की परिभाषा के अनुसार गैस में वेग-प्रवणता उत्पन्न हो जाती है। इन सीमाओं के बीच जिस दर से चाल में परिवर्तन होता है उसे 'वेग की प्रवणता' कहते हैं।

सीमाओं के बीचवाली वायु में जो प्रतिक्रिया होती है उसे एक उदाहरण से स्पष्ट कर सकते हैं। मेज पर रखी एक किताब के ऊपरी आवरण को उसके पुश्ते के समकोण की दिशा में धीरे से धकेलिए, किताब के पन्ने एक दूसरे के ऊपर फिसलेंगे। पारिभाषिक भाषा में इस प्रक्रिया को व्यक्त करने के लिए हम कहेंगे कि पुस्तक का विरूपण हो रहा है। जिस बल के कारण यह विरूपण[1] हुआ उसे 'विरूपण-प्रतिबल' कहते हैं।

हमारे गैसवाले प्रयोग में भी सीमाओं के बीचवाली वायु में इस प्रकार का प्रतिबल पाया जाता है और इसी के कारण समानान्तर समतलों में वायु के कण एक-दूसरे के ऊपर फिसलते हैं। इस प्रयोग से पता लगता है कि विरूपण-प्रतिबल, वेग-प्रवणता के सम क्रमानुपात होता है अर्थात् वेग के बदलने की दर उसकी सीमा से दूरी के साथ बदलती है।

वायु की श्यानता उसके अणुओं की संरचना पर निर्भर है। वायु के किसी भी निश्चित आयतन में इस प्रकार के करोड़ों अणु होते हैं और यह सब तेज़ चाल के साथ लगातार इधर-उधर भागते हुए एक-दूसरे से तथा अपनी सीमाओं से टक्कर खाते रहते हैं। संयोगवश इस प्रकार की लगातार गति के कारण जो ऊर्जा उत्पन्न होती है उसे हम गैस के ताप के रूप में व्यक्त करते हैं। वायु की स्थिर अवस्था में भी यह गति बन्द नहीं होती। इसके विपरीत ये अणु एक ही स्थान पर घूमते रहते हैं। उक्त प्रयोग में एक सीमा को चलाने का प्रभाव यह होता है कि इसके कारण अणुओं को अतिरिक्त दिशिक गति मिलती

1. Sheering

है। ये इससे टक्कर खाने पर पीछे आते हैं। ऊष्मा-गति में इस अतिरिक्त गति के कारण कोई विशेष गड़बड़ी नहीं पड़ती और जो कुछ थोड़ा-बहुत प्रभाव होता भी है, वह बहुत थोड़ा होता है। परन्तु इसके परिणामरूप अन्त में सतह के समीप के सारे अणुओं में एक ही दिशा में अपवहन करने की प्रवृत्ति आती है। इस प्रकार वह गति जो ठोस पिण्ड से बनी सीमा में सान्द्रित थी समस्त गैस में प्रसार पा जाती है। इस कारण अतिरिक्त गति के उद्गम से दूरी के बढ़ने के साथ-साथ कमी पड़ती जाती है। जब किसी ठोस पिण्ड पर से किसी गैस का प्रवाह होता है तब भी इसी प्रकार की प्रतिक्रिया होती है। अन्तर केवल इतना होता है कि इसमें सीमा संपूर्ण द्रव्य की गति के विरुद्ध कार्य करती है और सतह के समीप के अणुओं की एकदिशिक गति में जो कमी होती है वह बाकी अणुओं के अपवहन पर ब्रेक का काम करती है। इस कारण से गैस की श्यानता को अक्सर 'आन्तरिक-घर्षण' भी कहते हैं। तरल घर्षण के नियम ठोस घर्षण (मोटरगाड़ी के ब्रेक के घर्षण) से बहुत भिन्न होते हैं। ध्यान रखने योग्य बात यह है कि तरल पदार्थों में इस प्रकार का कोई गुण नहीं होता।

उड़ान में इसका बहुत महत्त्व है। जब एक वस्तु वायु में से चलती है तो उसके सम्पर्क में आनेवाली वायु की परतें भी चल पड़ती हैं। इससे कुछ सीमा तक वायु की अन्य परतें भी चलती हैं। वायु की पड़ोसी परतों में इस प्रकार हुई गति गतिमान् वस्तु के आकार और वायु की अपेक्षा उस वस्तु की गति पर निर्भर करती है। जब यह आपेक्षिक गति काफी अधिक होती है तो वस्तु के चारों ओर की वायु में भँवर या बवंडर पैदा हो जाते हैं जिससे उड़ान में कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। वायु के कारण उत्पन्न इस कठिनाई को ही वैमानिकी में 'वात-रोध'[1] कहते हैं।

1. Drag

छठा अध्याय

वात-रोध

जब कोई वस्तु हवा या किसी तरल पदार्थ में चलती है तो उसकी गति में सर्वदा एक निश्चित रुकावट पड़ती है। वैमानिकी में इस रुकावट को 'वात-रोध' कहते हैं। अच्छी उड़ान का यह एक भयंकर शत्रु है। विमान का निर्माण करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि उसकी संरचना ऐसी हो कि उसे उड़ान करते समय इस प्रकार की कम से कम रुकावट का सामना करना पड़े। इस सम्बन्ध में जो प्रयोग किये गये हैं उनका इतिहास ज्यादा पुराना नहीं है, क्योंकि द्रवगतिकी[1] में प्राचीन विद्वानों ने मौलिक रूप से केवल आदर्श तरल पदार्थों के प्रवाह के सम्बन्ध में ही अधिक अध्ययन किया था। उनकी व्याख्या के अनुसार आदर्श तरल पदार्थ के प्रवाह में इस प्रकार का आन्तरिक प्रतिरोध उत्पन्न नहीं होता। जब यह आदर्श तरल किसी ठोस नली में से होकर प्रवाह करता है तो यह उसकी दीवारों के साथ चिपकता भी नहीं।

१· रुकावट का मुख्य कारण

इस क्षेत्र में गणितज्ञों ने जो कार्य किया उसके परिणाम प्रयोगों के आधार पर ठीक नहीं बैठते। एक ठोस पिंड पर वायु-प्रवाह के कारण, उसके तल के भिन्न-भिन्न बिन्दुओं पर दाब की मात्रा के सैद्धान्तिक और प्रायोगिक ढंग से जो परिणाम प्राप्त होते हैं, उनकी सहायता से यदि लेखाचित्र बनाया जाय तो पता लगेगा कि प्रायोगिक और सैद्धान्तिक लेखाचित्र भिन्न-भिन्न मार्ग को दर्शित करते हैं। (दे० चित्र संख्या ४) इसके पहले अर्ध भाग में ये दोनों लेखाचित्र लगभग एक समान हैं, परन्तु पिछले अर्ध भाग में इनमें पर्याप्त अन्तर हो जाता है। इस

1. Aero-dynamics

भाग में आशा के अनुसार दाब की मात्रा नहीं बढ़ती, अर्थात् पहले अर्ध भाग में नोद की मात्रा, पिछले अर्ध भाग की नोद की मात्रा से सन्तुलन नहीं रख पाती।
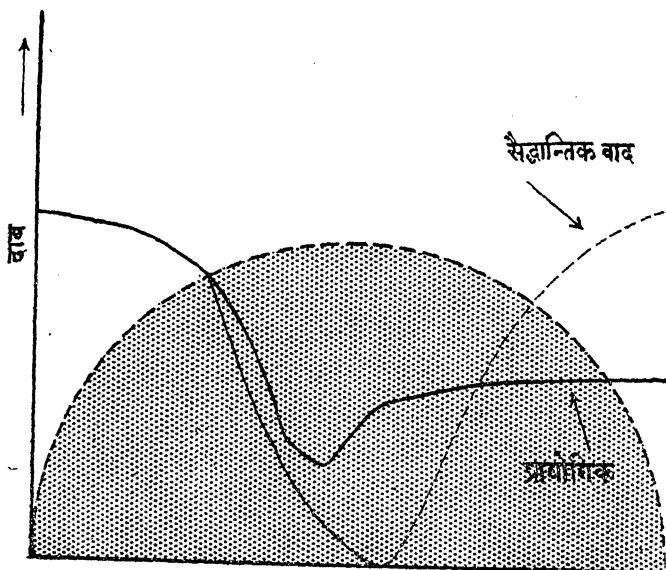
चित्र ४—ठोस पिंड के चारों ओर दाब वितरण।

पिंड में प्रतिरोध-बल का अनुभव इसी कारण होता है। इस प्रकार वातरोध के होने का आधार इस तथ्य पर है कि सामान्य द्रव्य में पिंड के पिछले भाग का प्रवाह उसके अग्र भाग के प्रवाह से भिन्न होता है। इस प्रक्रिया को प्रवाह में धुएँ की कुछ मात्रा के प्रवेश करने पर प्रत्यक्ष रूप से देख सकते हैं। ऊपर जाते समय प्रवाह द्रवगतिकी के नियम के अनुसार होगा, परन्तु नीचे के अर्ध भाग में यह प्रवाह पिंड के पीछे एक ऐसा क्षेत्र छोड़ता जायगा जिसके प्रवाह में विघ्न होगा। इस क्षेत्र को 'अनुवात'[1] कहते हैं। वात-रोध का मुख्य कारण यही अनुवात है।

1. Wake

२. धारारेखाएँ

प्रस्तुत विषय का अध्ययन करते समय द्रवगतिकी में "धारारेखाओं[1]" की धारणा का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है। तरल पदार्थ की ये काल्पनिक धाराएँ, किसी भी बिन्दु पर तरल पदार्थ के प्रवाह की दिशा का द्योतन करती हैं। वैमानिकी की परिभाषा के अनुसार धारारेखा एक ऐसा वक्र है जो तरल पदार्थ के प्रवाह की सदैव स्पर्शज्या होता है और इस कारण वह तरल पदार्थ इस धारारेखा को पार नहीं कर सकता, वह केवल इसके साथ-साथ प्रवाह कर सकता है। इस प्रकार इन रेखाओं की समानता ऐसी नलियों की लड़ी से की जा सकती है जिनमें से तरल पदार्थ का प्रवाह हो सकता हो। इन धारारेखाओं से किसी तरल पदार्थ के प्रवाह का जो चित्र हमारे सम्मुख बनता है वह केवल प्रवाह की दिशा को बतलानेवाले चार्ट का ही काम नहीं देता, बल्कि उससे हमें तरल पदार्थ के वेग का भी पता लगता है। इसका नियम इस प्रकार है। जिन स्थानों पर धारा-रेखाएँ बहुत समीप हों वहाँ तरल पदार्थ का वेग अधिक होगा। जिस स्थान पर इन धारारेखाओं में पर्याप्त अन्तर हो वहाँ तरल
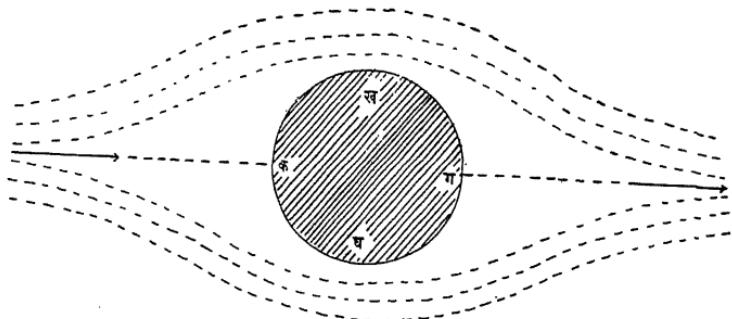
चित्र ५—आदर्श तरल के प्रवाह में रुकावट का प्रभाव।

पदार्थ का प्रवाह सम होगा। यदि इन धाराओं की आकृति में कोई परिवर्तन न हो तो इस प्रकार के प्रवाह को हम 'सतत प्रवाह' कहेंगे। एक लम्बे गोल

1. Stream lines

सिलेंडर को यदि आदर्श तरल के प्रवाह की दिशा में रखें तो हमें इस प्रकार का सतत प्रवाह प्राप्त होगा। यदि इससे प्राप्त वक्र रेखाओं का लेखाचित्र बनायें तो (चित्र–५) जैसा चित्र बनेगा। इससे स्पष्ट है कि सिलेंडर से बहुत दूरी पर धारारेखाओं ने सीधी समानांतर रेखाओं का रूप धारण कर लिया है। इनमें आपस में दूरी भी एक समान है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत इन धारा-रेखाओं में कोई विघ्न नहीं पड़ता। सिलेंडर के समीप पहुँचने पर यह धारा अपने को संयमित रूप से बाँट लेती है और क तथा ग स्थान पर सिलेंडर के कारण स्थिर अवस्था में आ जाती है। ख और घ स्थान पर यह धारा संकीर्ण हो जाती हैं जिससे पता लगता है कि इन स्थानों पर प्रवाह का वेग अधिकतम होता है। इस प्रवाह के वेग को एक साधारण गणित के समीकरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है जिसका परिचय आगे दिया जायगा।
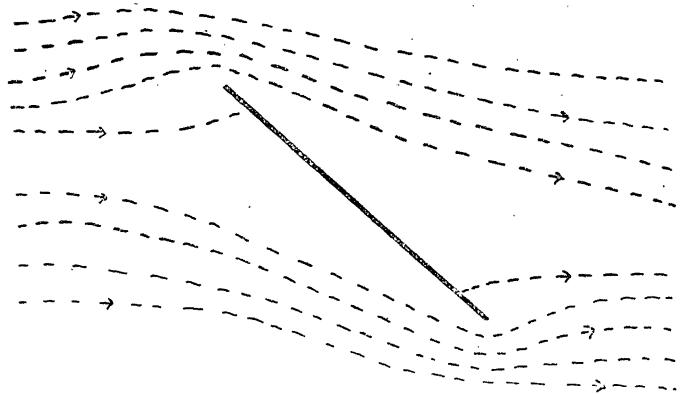
चित्र ६—**तिरछी चादर की रुकावट।**

चित्र ६ में एक तिरछे तल को आदर्श-तरल में चलते हुए दिखलाया गया है। इसमें भी ये धारारेखाएँ आपस में बहुत समीप आ जाती हैं, परन्तु गोल सिलेंडर में जो प्रतिक्रिया होती है उससे इसमें हुई प्रतिक्रिया कुछ भिन्न है। इस तिरछे तल पर एक बल युग्म[1] लगने लगता है जो इसे बिलकुल सीधे खड़ा

1. Couple

करने की चेष्टा करता है। सीधा खड़ा हो जाने पर नलके की भाँति इस पर भी आदर्श तरल का कोई प्रतिरोध नहीं होता। परन्तु इस प्रकार का आदर्श-तरल केवल एक कल्पना है। व्यवहारतः यह देखा जाता है कि हवा में से जब कोई पिंड गुजरता है तो उस पर हवा का कुछ न कुछ प्रतिरोध होता है जिसका प्रभाव पिंड की गति पर पड़ता है, अतः वायु को आदर्श-तरल नहीं कहा जा सकता।

जब कभी हवा के मार्ग में कोई रुकावट आ जाती है तो रुकावट के पास तो हवा के प्रवाह की दिशा और उसका मान बदलता है और इसके अतिरिक्त काफी दूर तक इधर-उधर इस प्रभाव का अनुभव भी होता है। जब तक हवा विभिन्न स्तरों में एक दूसरे के समानान्तर निश्चित मार्ग पर ठोस नलियों की दीवारों के बीच से गुजरती रहती है, उसकी गति धारानुकूल होती है।

हवा के धारानुकूल प्रवाह पर रुकावट का जो प्रभाव पड़ता है उससे संबंधित समस्याओं का निम्न भागों में अध्ययन किया गया है।

क—ठोस पिंडों पर वायु-प्रवाह की प्रकृति का अध्ययन।

ख—वायु-प्रवाह के कारण ठोस पिंडों में जो बल पैदा होते हैं उनका अध्ययन।

इन दो भिन्न मार्गों से इस समस्या का अध्ययन करने पर जो दत्त प्राप्त हुआ उससे यह बात स्पष्ट हो गयी कि इन दोनों में सीधा सम्बन्ध है और इसके फलस्वरूप कह सकते हैं कि वायु-प्रवाह के समय जो भँवर और बवंडर इसमें उत्पन्न होते हैं उससे रुकावट की मात्रा में परिवर्तन आता है। समुद्र में जहाजों के चलने के कारण समुद्रतल में उत्पन्न प्रतिक्रिया से इस प्रतिक्रिया का सादृश्य मिलता है। जिस प्रकार समुद्र-जहाजों को चलते समय, समुद्र की तरंगों की मात्रा के समानुपात कठिनाई का सामना करना पड़ता है उसी प्रकार वायु में विमान को वायु में उत्पन्न भँवरों और बवंडरों की मात्रा के समानुपात रुकावट का सामना करना पड़ता है।

३. वात-सुरंगें

इस दिशा में जो अनुसंधान-कार्य हुआ है वह अधिकतर वात-सुरंगों[1] की

1. Wind tunnel

सहायता से सम्पन्न किया जाता रहा है। इसमें छोटे-छोटे माडलों की सहायता से प्रयोग किये जाते हैं। इसकी सबसे बड़ी सुविधा यह है कि इसमें माडल स्थिर अवस्था में रहता है जिसके कारण इसके बल का अध्ययन सुगमतापूर्वक हो पाता है। इसके विपरीत, वायुमण्डल की वायु के वेग, दिशा और परिमाण में सर्वदा परिवर्तन आते रहने के कारण वास्तविक उड़ान के समय इस प्रकार के सफल और विश्वसनीय प्रयोग करने में काफी कठिनाई का अनुभव करना पड़ता है। यही कारण है कि वायु में उड़ान की अपेक्षा, विमान के माडल पर एक वात-सुरंग में वायु-प्रवाह उत्पन्न कर उससे संबंधित समस्याओं को अध्ययन करना अधिक प्रायोगिक समझा जाता है।

एक बात और ध्यान रखने योग्य है कि वैमानिकी में हमारा सम्बन्ध विमान और वायु की आपेक्षिक गति से है। स्थिर वायु में माडल को उड़ाने पर अथवा स्थिर माडल पर वायु-प्रवाह करने में जो आपेक्षिक गति प्राप्त होगी वह एक समान ही होगी। इन प्रयोगों में जिन वात-सुरंगों का प्रयोग होता है उनको मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है—

क—खुले मुँह की जेट आकार की वात-सुरंग।

ख—बन्द मुँह की वात-सुरंग।

वायु-प्रवाह को पैदा करने के लिए दोनों प्रकार की वात-सुरंगों में एक पंखे से सहायता ली जाती है जिसे बिजली की मोटर से चलाया जाता है। इसमें जो भेद है वह इस प्रकार है—

खुले मुँह की जेट आकारवाली वात-सुरंग का प्रायोगिक कोष्ठ, सुरंग से बहुत बड़ा होता है और वायु-प्रवाह इसमें आर-पार होता है। (चित्र संख्या ७)

बन्द मुँह की वात-सुरंग में प्रायोगिक कोष्ठ, सुरंग की दीवारों से घिरा रहता है। (चित्र संख्या ८)

इसमें वायु क मार्ग से आती है और प्रायोगिक कोष्ठ ख में से गुजरती हुई प्रसार कोष्ठ ग तक यह सुरंग की दीवारों से घिरी रहती है। इसके प्रायोगिक कोष्ठ में माडल के अतिरिक्त अन्य औजारों इत्यादि के पहुँचने की कोई व्यवस्था नहीं होती। खोजबीन करनेवाले और इस प्रयोग से संबंधित अन्य पदार्थों को

चित्र १७—खुले मुँह की जेट वात-सुरंग।

इससे बाहर रहना पड़ता है। इसके विपरीत खुले मुँह की जेट की सुरंग में इन सब पदार्थों को सुरंग से बाहर रहते भी ऐसी व्यवस्था रहती है कि आवश्यकता पड़ने पर, वात-प्रवाह के समय भी माडल तक पहुँचा जा सके। वायु-प्रवाह को सम रेखा में रखने के लिए बात-सुरंग के प्रवेश द्वार पर छत्ता-जैसी एक दीवार रहती है। वात-सुरंग में वात-प्रवाह सतत रूप से हो इसके लिए आवश्यक है कि उसकी वायु के समवितरण की व्यवस्था की जाय। इसको प्राप्त करने के लिए दो बातों का ध्यान रखा जाता है——

क——वात-सुरंग में वायु को एक धारा में न छोड़कर पंखों की सहायता से इसे धाराओं के एक समुद्र में छोड़ा जाता है।

ख——जिस कोष्ठ से इस वायु को लौटाना होता है उसको छत्ते की सहायता से दो भागों में बाँट दिया जाता है।

बन्द मुँह की वात-सुरंग का प्रयोग, फ्रांस देश को छोड़कर अन्य देशों में काफी दिनों तक रहा। फ्रांस में इफिल प्रकार की खुले मुँह की जेट आकार-वाली वात-सुरंग का अधिक प्रयोग किया गया। बाद में खुली वात-सुरंगों का अधिक प्रचार होना आरम्भ हुआ। आजकल की वात-सुरंगों में वायु-प्रवाह की वापसी एक बन्द कोष्ठ के मार्ग से होती है।

इस प्रकार कुछ सीमा तक दोनों प्रकार की सुरंगों के अच्छे गुण इसमें आ जाते हैं। यहाँ राष्ट्रीय भौतिक विज्ञान प्रयोगशाला में बनी वात-सुरंग का वर्णन करना भी अप्रासंगिक न होगा। लकड़ी की

चित्र ९—रा० भौ० वि०
प्रयोगाशाल में बनी वात-सुरंग

बनी पाइप के रूप की इस वात-सुरंग का सिरा आयताकार होता है। यह लोहे के ढाँचे पर सधी रहती है।

सुरंग का कुछ भाग गोलाकार है। इस भाग में लगा एक वायु-पेंच बिजली के पंखे की भाँति कार्य करता है। पंखा चलने से सुरंग में वायु का प्रवाह आरम्भ हो जाता है। पंखे के पीछे एक विसारक (डिफ्यूजर) रहता है (चित्र-९)। यह सुरंग में आनेवाली वायु के वेग को हलका कर उसे एक बड़े क्षेत्र में से वापस बाहर भेज देता है। अन्दर आनेवाली वायु को भंवर इत्यादि से बचाने अर्थात् इसको धारानुकूल रखने के लिए दो पर्दे $प_१$, $प_२$, पंखे पहले से ही लगे रहते हैं। इनमें से एक ($प_१$) तो सुरंग के मुँह पर और दूसरा ($प_२$) उस स्थान पर लगा रहता है जहाँ सुरंग चौड़ी होती है। पंखे के चलाने पर सुरंग की वायु बाहर निकल जाती है और दूसरे से ताजी वायु अन्दर आती है। इस वायु का प्रवाह धारानुकूल होता है। इसके प्रवाह को सम रखने के लिए सुरंग के मुँह को ग्रामोफोन के हार्न की भाँति थोड़ा चौड़ा बनाया जाता है। वस्तुतः प्रयोग करने में सुरंग के बीचवाला भाग ही काम में आता है। इस भाग में वायु का वेग सम और धारानुकूल होता है। इस सुरंग की वायु को प्रशीतक[1] की सहायता से इच्छानुसार ठंडा किया जा सकता है।

सबसे बड़ी वात-सुरंग सीटेल में है। इसके सिरेका क्षेत्रफल कम से कम १५०० वर्गफुट है। इसमें दोहरे फलवाला पंखा लगा है। यह १८ अश्वशक्ति की मोटर से चलता है। मोटर के चलाने पर सुरंग में वायु की चाल प्रति घण्टा ७०० मील तक हो जाती है जब कि तेज से तेज चलनेवाले तूफान की चाल २०० मील प्रति घण्टा होती है। इस सुरंग की हवा को प्रशीतक की सहायता से ६७° फ़ा० तक ठंडा किया जा सकता है। इस प्रकार वात-सुरंग में हम ताप को अपने नियन्त्रण में रख सकते हैं। वात-सुरंग के माडल पर वायु के जिस बल का अनुभव किया जाता है उसके परिमाण को एक विशेष प्रकार की तुला से तोलते हैं। यह वात-सुरंग बुलाके नाम से प्रसिद्ध है।

1. Cooler

४. वात-सुरंगों की त्रुटियों के तीन कारण

जब हम अपने विमानों का निर्माण करना वात-सुरंगों में किये गये प्रयोगों द्वारा प्राप्त परिणाम दत्त के आधार पर आरम्भ करते हैं तो इस प्रकार प्राप्त परिणामों में त्रुटियां होने की सम्भावना रहती है। इसके कारण निम्न-लिखित हैं —

(क) **स्केल के कारण**—वात-सुरंग में छोटे-छोटे माडलों पर प्रयोग किये जाते हैं। इनके आधार पर जो नियम बनाये जाते हैं वे कुछ सीमाओं तक उन विमानों के लिए तो उचित हो सकते हैं जिनमें माडल के आकार में अधिक अन्तर न हो।

वास्तव में जिन विमानों का हम निर्माण करते हैं वे माडल के आकार से बहुत बड़े होते हैं। यहाँ पर इन नियमों में त्रुटियाँ होने की सम्भावना रहती है। सबसे बड़ी समस्या स्केल के कारण होती है।

कल्पना कीजिए कि हमारा माडल $\frac{१}{५}$ स्केल के अनुसार बनाया गया है। इसमें समस्त आयाम—लम्बाई, चौड़ाई आदि—वास्तविक विमान के $\frac{१}{५}$ के बराबर होगा। माडल और इसके वास्तविक रूप के क्षेत्रफल में १:२५ का अनुपात होगा। यदि यह उसी पदार्थ से बनाया जाय जिससे वास्तविक विमान बनाया गया हो तो इसके द्रव्यमान का अनुपात १:१०० होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ परिस्थितियों में तो स्केल $\frac{१}{५}$ है और कुछ में नहीं। यदि हम सावधानी से काम न लें तो विमानों के माडल से जो परिणाम हमें मिलते हैं उनके आधार पर बने विमान के सुचालन-जैसी अन्य क्रियाओं में हमें अशुद्ध परिणाम प्राप्त होंगे।

(ख) वात-सुरंगों की दूसरी त्रुटि का सम्बन्ध वायु के विस्तार से है। वात-सुरंग की वायु का स्वभाव, वायुमण्डल की स्वतन्त्र वायु से भिन्न है। इसके बहुत-से कारण हैं। इनमें से मुख्य तो यह है कि वायु को वात-सुरंग की दीवारों के कारण कुछ अवरोध का सामना करना पड़ता है। इससे उसके स्वतन्त्र प्रभाव पर असर पड़ता है और इस प्रकार प्रभावित वायु-प्रवाह के कारण माडल पर लगे बलों पर प्रभाव पड़ता है जिससे परिणामों का दोषपूर्ण होना कोई बड़ी

बात नहीं है। इसके विपरीत वायुमंडल की वायु के विस्तार में कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता।

यही कारण है कि इसके कारण उत्पन्न त्रुटि को कम करने के लिए बड़ी से बड़ी सुरंगों के निर्माण के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

(ग) तीसरा कारण माडल के आकार से संबंधित है। माडल जितना छोटा होगा उतना ही इसमें पूर्ण विमान की समस्त आवश्यकताओं को पूरा करना कठिन होगा। जितना हम इसके आकार को बड़ा बनाते जायेंगे उतना ही इसमें वास्तविक विमान के समस्त गुणधर्मों का समावेश होता दीख पड़ेगा। इस प्रकार प्राप्त परिणामों में हमें सच्चाई प्राप्त होगी, ऐसी आशा हो सकती है। वैमानिकी सम्बन्धी कार्यों में इसी कारण बड़े माडलों को पसन्द किया जाता है।

इन तीन कारणों से पूर्ण रूप से तो पीछा छुड़ाना बहुत कठिन है, फिर भी जो प्रयत्न इस क्षेत्र में हो रहे हैं उनके फलस्वरूप ये सारी त्रुटियाँ अंशतः तो दूर होती दीख पड़ती हैं। वात-सुरंगवाले प्रयोगों के अतिरिक्त इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए निम्न प्रयोगों का उपयोग किया जाता है।

क—पानी में किये गये प्रयोग।

ख—उड़ान करते समय के प्रयोग।

ग—माडल को एक लम्बे बाँस पर लगाकर, इसे दूसरे सिरे से वायु में घुमाकर किया गया प्रयोग।

५. दो प्रकार का वातरोध

इन सभी प्रयोगों के परिणामों का अध्ययन करने के बाद वायु में पिंड की आपेक्षिक गति में जिस वातरोध का सामना करना पड़ता है उसको मुख्यतः दो भागों में बाँट सकते हैं।

(क) **आकृति वात-रोध**[1]—एक ठोस पिंड से किसी श्यान तरल के प्रवाह के समय पिंड के कारण तरल में कुछ भँवर पड़ते हैं जिसके कारण तरल का प्रवाह धारारैखिक[2] नहीं रह पाता। इस प्रकार तरल पदार्थ में कुछ अवरोध पैदा होता है जिसका सम्बन्ध पिंड की आकृति से

1. Form drag 2. Stream-lined
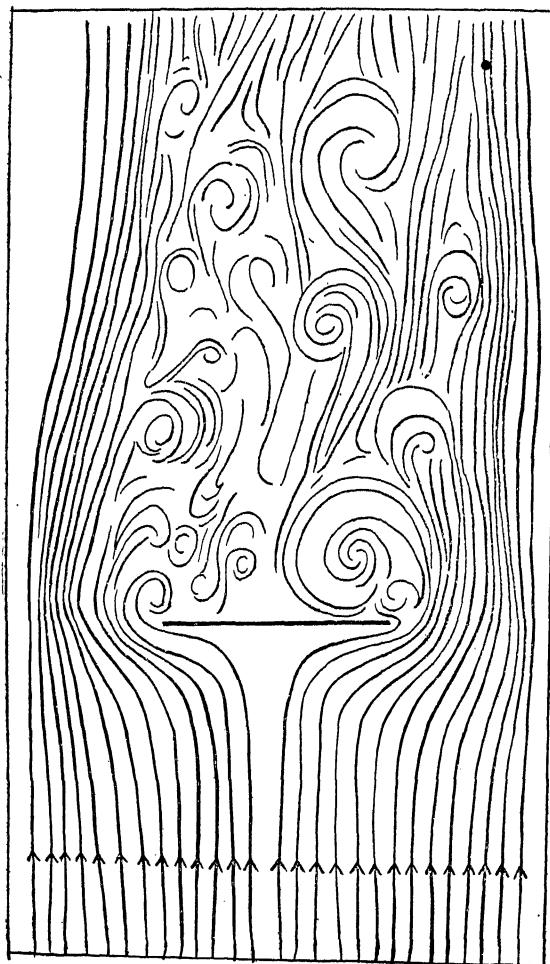
चित्र १०—आकृति-वातरोध ।

होता है। इसे ही वातरोध कहते हैं। आकृति वातरोध का सबसे अच्छा

उदाहरण वायु के समकोण में एक चपटी पत्ती रखने से मिलता है। इस अवस्था में पत्ती के कारण वायु में रोध बहुत अधिक मात्रा में
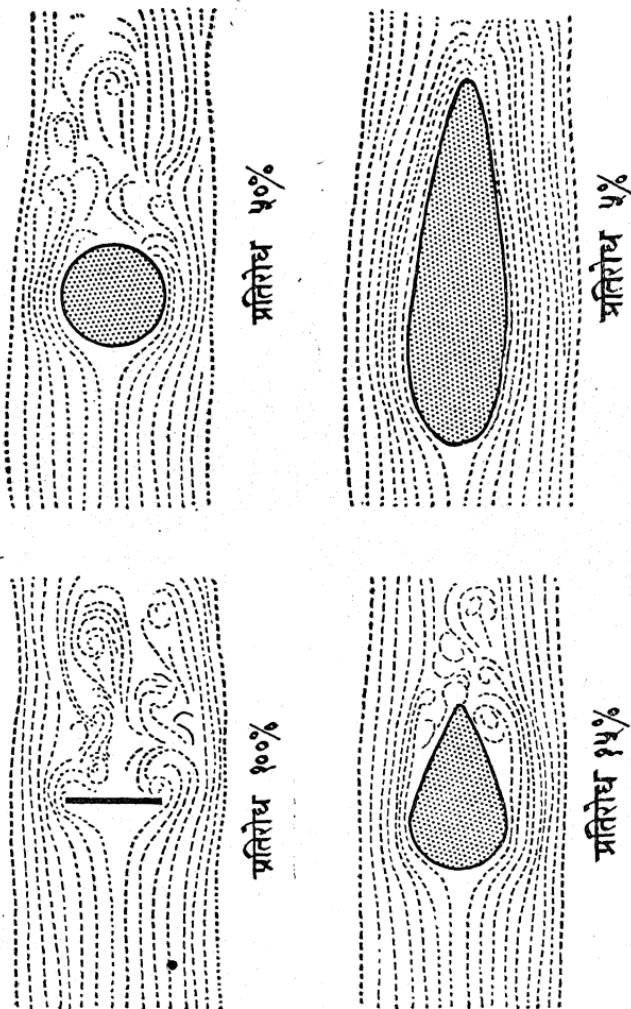
चित्र ११—धारारेखिक आकार का प्रभाव।

होता है क्योंकि इस प्रकार भँवर काफी मात्रा में उत्पन्न होते हैं।
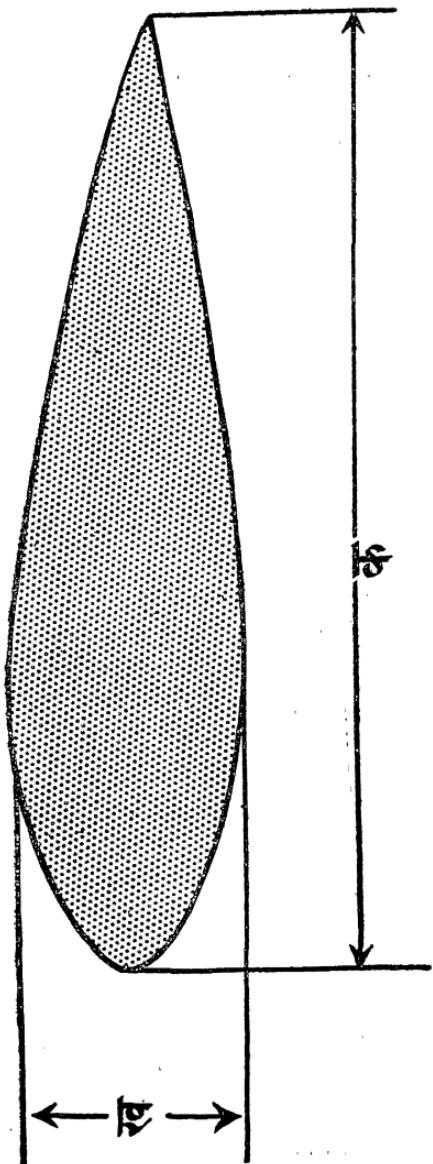
चित्र १२—सूक्ष्मता-अनुपात।

विमानों के आकार का निर्माण करनेवालों का प्रधान उद्देश्य विमान के खुले भागों में इस आकृति वात-रोध को कम करना होता है। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि इसका विमान के भागों के भिन्न-भिन्न आकारों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः विमान के खुले भागों को भिन्न-भिन्न आकार देकर यह जानने का प्रयत्न किया जाता है कि किस आकार में इस प्रकार का वात-रोध कम से कम मात्रा में उत्पन्न होगा। ऐसे आकार को वैमानिकी में 'धारारैखिक आकार' कहते हैं। (चित्र संख्या ११) अतः यह स्पष्ट है कि गोलाकार पिंड के कारण जो वात-रोध उत्पन्न होता है वह मात्रा में एक चपटे आकार के पिंड से उत्पन्न वात-रोध के आधे से अधिक नहीं होता। इसीको एक अच्छा धारारैखिक आकार देने पर वात-रोध गोलाकार पिंड के वात-रोध से दसवाँ भाग रह सकता है। बहुत अच्छे धारा-रखिक प्रवाहवाले पिंड के आकार में सूक्ष्मता-अनुपात क/ख तीन और चार के मध्य

होता है। इसके आकार को इस अनुपात के अनुसार बढ़ाया या घटाया जा सकता है। ऐसा करने पर भी इसके वातरोध में कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। (चित्र संख्या १२)।

विमान के भिन्न-भिन्न अंगों को धारारैखिक आकृति का बनाने पर भी यह आवश्यक नहीं कि इस प्रकार बना विमान धारारैखिक हो अर्थात् कबन्ध और पंख यदि धारारैखिक आकृति के हों तो आवश्यक नहीं कि इनको मिलाकर जो आकृति बने वह भी धारारखिक हो। इस सम्बन्ध में भी अनुसन्धान-कार्य हो रहा है और समय आने पर सम्भवतः इस प्रकार के वात-रोध को कम करने का यह एक अच्छा साधन सिद्ध हो सकेगा।

(ख) **तल-घर्षण-वातरोध**[1]—वायु का एक गुण श्यानता भी है। जिस समय तरल पदार्थ पिंड पर से प्रवाहित होता है कोई भी तरल पदार्थ जिसमें श्यानता होगी सर्वदा पिंड के तलों के साथ चिपकेगा। उन स्थलों पर जहाँ तरल पदार्थ और पिंड का मेल होता है कोई सापेक्षिक गति नहीं होगी और ऐसे स्थलों पर वायु का वेग लगभग शून्य होगा। यह क्रिया वायु के वेग से पूर्ण स्वतन्त्र है। ऐसा देखा गया है कि यदि विमान के पंख पर उड़ान से पूर्व धूल के कुछ कण पड़े हों तो उड़ान के पश्चात् भी ये कण उसी स्थान पर पाये जायँगे, चाहे विमान ने १५० मील प्रति घंटे की चाल से उड़ान की हो। यदि हम अपनी सुविधा के लिए यह मान लें कि वायु का विस्तार इसके विभिन्न स्तरों के कारण है जो पिंड के आकार के समानान्तर है तो वायु के पहले स्तर और पिंड के तल के बीच तो गति शून्य होगी, लेकिन अन्य स्तरों के बीच जो आपेक्षिक गति होगी वहाँ उस तरल में श्यानता-गुणधर्म होने के कारण कुछ रुकावट होगी जिसके कारण पिंड के वेग में अन्तर होना अनिवार्य ही होगा। इसीको 'तल-घर्षण-वात-रोध' कहते हैं। (चित्र संख्या १३)।

1. Skin Friction
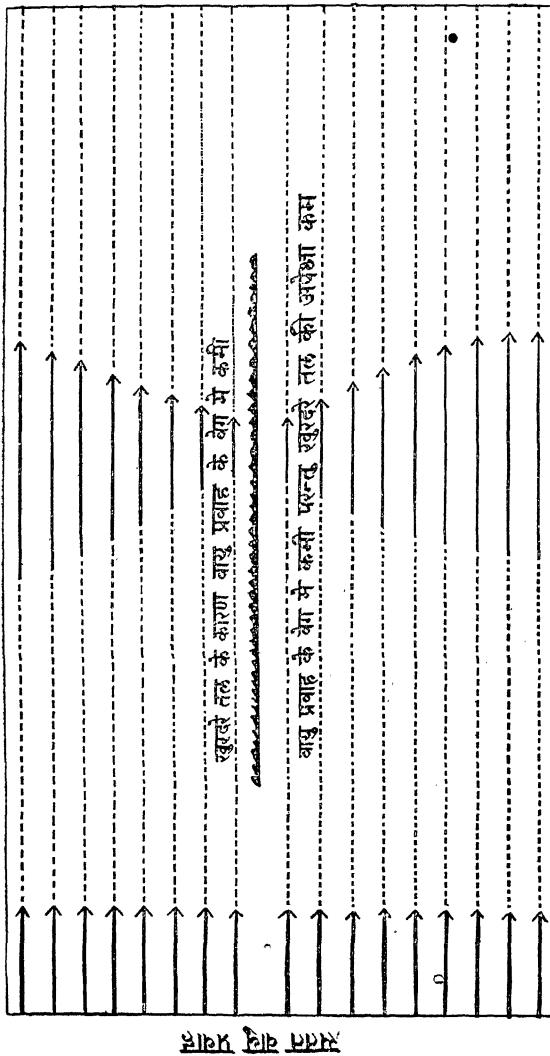
चित्र ४३—तल-घर्षण-वातरोध।

यह एक सामान्य तथ्य है कि खुरदरे तल की अपेक्षा समतल पर वायु-प्रवाह अधिक तीव्रता से हो सकता है, क्योंकि खुरदरे तल में भिन्न-भिन्न स्तरों के बीच विरूपण[1] प्रतिक्रिया अधिक होगी। यही कारण है कि तल-घर्षण से उत्पन्न रुकावट की मात्रा खुरदरे तल में अधिक होगी। इस कारण कभी-कभी विमान में प्रतिरोध बहुत अधिक होता है। इससे एक बात स्पष्ट है कि इसका मुख्य कारण तल का खुरदरापन है, अतः इसको कम करने के लिए इस खुरदरेपन को कम करना चाहिए। विमानों में इसको पालिश इत्यादि की सहायता से कम किया जाता है।

तल-घर्षण-वातरोध वायु की श्यानता, वायु-प्रवाह के वेग तथा तल के उस क्षेत्रफल पर जिस पर वायु प्रवाह करती है, निर्भर है। जब विमान अधिक वेग से उड़ान करता है तो इसकी मात्रा बढ़ जाती है। इस सम्बन्ध में अनुसन्धान कार्य करनेवालों में जर्मन गणितज्ञ लुडविग प्रानड्टिल का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने इस क्षेत्र में सीमान्त स्तर नामक एक नयी धारणा को जन्म दिया। यह वायु का वह स्तर है जिसमें, पिंड के तल पर पूर्ण वेग के साथ वायुप्रवाह करते समय, विरूपण प्रतिक्रिया होती है। तल-घर्षण-वातरोध से एक निश्चित सीमा में रखने के लिए सीमान्त स्तर के सम्बन्धमें पर्याप्त अध्ययन किया जाता रहा है।

वायु-प्रवाह की भाँति सीमान्त स्तर में भी पटल प्रवाह और प्रक्षुब्ध प्रवाह उत्पन्न होता है। (चित्र संख्या १४) आकृति-वातरोध पर जो प्रभाव धारा-रैखिक आकृति का पड़ता है, ठीक वही प्रभाव पटल-सीमान्त-स्तरों का तल-घर्षण-वातरोध पर पड़ता है। यदि किसी प्रकार विमान के पंख के कुछ सीमान्त-स्तरों को पटलीय रूप दे दिया जाय तो इस व्यवस्था के कारण तल-घर्षण-वातरोध की मात्रा पुराने ढंग के पंख के इस प्रकार के वातरोध की मात्रा से दसवाँ भाग रह सकती है।

सामान्य रूप से ऐसा देखा गया है कि पिंड के अगले हिस्से के समीप के तल के सीमान्त-स्तरों में पटलीय-प्रवाह[2] की प्रवृत्ति आनी आरम्भ होने

1. Sheering 2. Laminar Flow
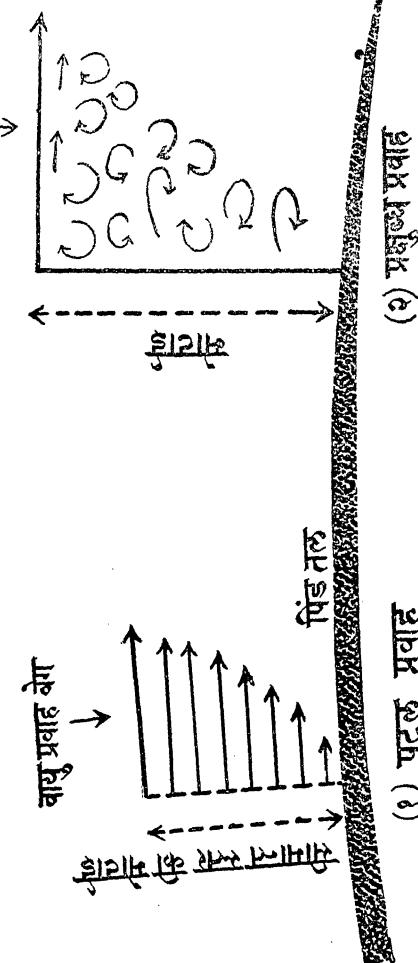
चित्र १४—पटल और प्रक्षुब्ध सीमान्त-स्तर।

लगती है। इसके पश्चात् प्रोफेसर रेनाल्ड के अनुसार वेग चरम-गति से बढ़ जाता है। यह द्रव के लिए उस तापक्रम पर आश्रित है। इस समय सीमान्त-स्तर में प्रवाह प्रक्षुब्ध होने लगता है। वेग के बढ़ने के साथ-साथ यह संक्रमण-

बिन्दु समीप आता जाता है। इस प्रकार और सीमान्त-स्तरों को प्रक्षुब्ध करता जाता है, जिसके कारण तलीय घर्षण वातरोध की मात्रा बढ़ती जाती है।

वैज्ञानिकों में इस बिन्दु की गति पर नियन्त्रण करने के अनेक प्रयत्न किये जा रहे हैं जिससे अधिक से अधिक सीमान्त-स्तरों को पटलीय बनाया जा सके।

६. वातरोध-सूत्र

इस संक्षिप्त अध्ययन से यह बात तो स्पष्ट हो ही जाती है कि वात-रोध, कुछ सीमाओं के अन्तर्गत निम्न बातों पर निर्भर है---वस्तु का आकार, सतह, खुले पिंड का अग्र क्षेत्र (क्ष) वर्गफुट, वायु का घनत्व घ (पौंड प्रति घनफुट), वायु-प्रवाह के वेग (वे) का वर्ग (फुट प्रति सैकण्ड), गुरुत्व-जन्य वेगवृद्धि (गु) (फुट प्रति सैकण्ड^2)। वैज्ञानिकों ने इसे एक सूत्ररूप में इस प्रकार व्यक्त किया है--

$$\text{वातरोध} = \text{के०} \frac{\text{घ क्ष० वे}^2}{\text{गु}} = \text{पौंड भार}$$

वातरोध के इस सूत्र में (के) एक स्थिरांक है जो प्रत्येक पिंड के आकार पर निर्भर होता है। इसे प्रयोग द्वारा मालूम किया जाता है। मोटे शब्दों में चपटे आकार के लिए इसका मान ०·६ और धारारैखिक आकार के लिए ०·०३ है। इसमें (क्ष) पिंड के अग्र भाग के क्षेत्रफल तथा घ वायु के घनत्व के लिए है।

इस सूत्र में 'वायु-प्रवाह के वेग का वर्ग' वातरोध का समक्रमानुपात दिखाया गया है। वास्तव में ऐसा सभी चालों पर ठीक नहीं है। औसत चाल पर हम इसे सत्य मान सकते हैं, परन्तु बहुत कम और बहुत अधिक चाल पर यह संबंध ठीक नहीं बैठता। पिंड के वायु में धीरे-धीरे चलने पर उसके अगले भाग के सामने वायु का संपीडन होता है। सब जानते हैं कि वायु संपीडनीय (कांप्रेसिबिल) है और किसी सीमा तक सुघट्टीय भी, अर्थात् संपीडन के बाद यह अपनी मौलिक अवस्था में आने का प्रयत्न करती है। परन्तु सामान्य उड़ान में हमारा संबंध जिस चाल से होता है उस पर वायु के ये गुण काम नहीं आते। इस चाल पर तो वायु पानी के सदृश असंपीडनीय पदार्थ की

तरह कार्य करती है। इस नियम को हम ३० मील से ३०० मील प्रति घण्टे की उड़ानों के लिए व्यावहारिक रूप में ठीक मान सकते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि इस परास में चाल को दुगना करने पर वातरोध की मात्रा चार गुनी होगी। चाल को तीन गुना करने पर वातरोध की मात्रा भी नौ गुनी होगी। आज के विमान तो ध्वनि के वेग (११०० फुट प्रति सैकण्ड) से भी अधिक वेग से चलने लगे हैं। इनके लिए यह नियम ठीक नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार स्केल कुछ बातों में तो ठीक रह पाता है, कुछ में नहीं। यदि माडल $\frac{१}{१०}$ स्केल के अनुसार बना है तो उसके क्षेत्रफल में $\frac{१}{१००}$ का अनुपात होगा।

घनत्व के साथ वारोध में जो परिवर्तन होता है वह सामान्य घनत्व पर ठीक पाया जाता है और प्रत्यक्ष रूप से ऐसा प्रतीत होने लगता है कि अधिक ऊँचाई पर घनत्व कम होने के कारण वातरोध भी कम होगा और इसलिए विमान को अधिक वेग से चलाने में सहायता मिलेगी, परन्तु यह इतना सरल कार्य नहीं है। विमान के पंखों के नोद[1], इंजन की शक्ति और पंखों के उद्भार पर तुगंता का जो प्रभाव पड़ता है उसके कारण अधिक ऊँचाई पर घनत्व कम होते हुए भी अधिक वेग से उड़ान करने में और अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

७. बर्नोली-सिद्धान्त

वातरोध की समस्या को सुलझाने का एक और ढंग बर्नोली-सिद्धान्त है। इसके अनुसार बिना किसी आन्तरिक प्रतिरोधवाला और जिसे दबाया न जा सके ऐसा आदर्श द्रव जब किसी असम छेदवाली नली में से बहता है, तो इसकी एक इकाई की मात्रा का ऊर्जा-परिवर्तन धारानुकूल-रेखा के साथ-साथ द्रव द्वारा दाबान्तर पर से नीचे गिरने में होनेवाले कार्य के बराबर होता है। इस प्रकार से यह सिद्धान्त ऊर्जा की अविनाशिता के सिद्धान्त का ही दूसरा रूप है, विशेषतः द्रवों के लिए।

1. Propulsion

साधारण रूप में इसी सिद्धान्त को हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि यदि किसी नली में कोई द्रव्य धारारैखिक गति से प्रवाह कर रहा हो तो उस नली के भीतर दाब तरल पदार्थ के वेग का विलोमी होता है। सकरे भाग में जहाँ वेग अधिक होता है, दाब कम पाया जाता है और चौड़े भाग में जहाँ वेग कम होता है, दाब अधिक पाया जाता है।

इस तथ्य को समझने में पाठक को शायद कुछ कठिनाई का अनुभव करना पड़े, क्योंकि अधिक दाब के साथ अधिक वेग का सम्बन्ध जोड़ना कुछ स्वाभाविक-सा प्रतीत होता है। ध्यान से विचार करने पर पता लगेगा कि यह बर्नोली सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं है। हम अपने दैनिक जीवन में आँधी का दाब उस समय अनुभव करते हैं जब उसकी गति में हमारे द्वारा रुकावट पड़ती है और बर्नोली-सिद्धान्त भी ऐसे बिन्दुओं का स्थान बताता है जहाँ वायु के प्रवाह में रुकावट पड़ने के कारण उसके स्वतन्त्र प्रवाह में कमी पड़ती है और उन बिन्दुओं पर दाब की मात्रा बढ़ जाती है। दाब, ऊर्जा का एक प्रकार ही है। बर्नोली-सिद्धान्त के अनुसार गति और दाब के कारण उत्पन्न ऊर्जा में सर्वदा सन्तुलन रहता है।

इसी सिद्धान्त पर विमान की वायु-चाल का पता लगानेवाले यन्त्रों का निर्माण किया जाता है। वायु-प्रवाह में रखे किसी भी पिंड के प्रति जो वातरोध पैदा होता है वह और बातों के अलावा प्रवाह के वेग पर भी निर्भर है, यह प्रतिरोध-सूत्र से पता लगता है। यदि किसी प्रकार और बातों से छुटकारा पा लिया जाय तो एक ऐसे यन्त्र का निर्माण किया जा सकता है जो वातरोध की मात्रा का मापक होने पर प्रवाह के वेग का पाठ्यांक बता सके।

एक चपटी प्लेट को, जिसके पीछे एक संपीडन कमानी-तुला लगी हो, वायु-प्रवाह के समकोण रखने पर कमानी-तुला के पाठ्यांक और प्रवाह के वेग में एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, यदि इस दशा में वायु का घनत्व तथा प्लेट का क्षेत्रफल स्थिर रहे। क्षेत्रफल से हमारा अभिप्राय प्लेट के अग्र भाग के उस क्षेत्रफल से है जो वायु-प्रवाह के सम्मुख रहता हो। प्लेट को यदि वायु-प्रवाह के समकोण रखा जाय तो इस उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है।
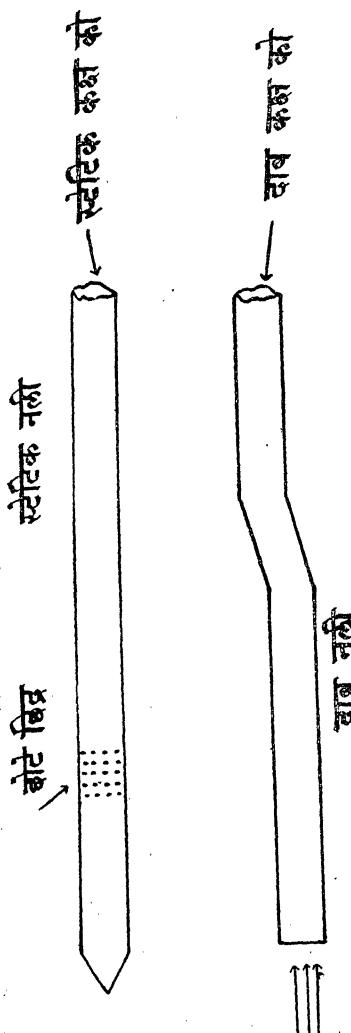
चित्र १५—पिटेट स्टेटिक नली।

घनत्व की समस्या को इतनी सरलता से नहीं सुलझाया जा सकता। आजकल जितने भी साधन वायु-चाल को मालूम करने के हैं वे सब वायु के घनत्व पर निर्भर हैं। वायु-चाल का पाठ्यांक सर्वदा एक निश्चित घनत्व पर ही ठीक होता है।

८. पिटेट स्टेटिक नलियाँ

पहले विमानों की इस चाल को जानने के लिए एक छोटे पंखे का प्रयोग किया जाता था। इसकी पंखड़ियाँ वायु-दाब पड़ने के कारण घूमने लगती थीं। इसमें प्रति सैकण्ड होनेवाले चक्करों की माप इसके साथ लगे एक मीटर से जानी जाती थी। आजकल इनका उपयोग विमानों में नहीं होता, परन्तु ऋतु-सम्बन्धी अनुसन्धान-कार्य में होता है। विमान की वायु-चाल जानने के लिए आज-कल नये प्रकार के यन्त्र काम में लाये जाते हैं। पिटेट स्टेटिक नलियाँ और वेण्टूरी नली इसी प्रकार के यन्त्र हैं। पिटेट स्टेटिक नलियों में (चित्र-संख्या १५) धातु से बनी दो नलियाँ होती हैं। एक पिटेट नली और दूसरी स्टेटिक नली। पहली का मुँह खुला होता है और दूसरी का सिरा धीरे-धीरे पतला

होकर नुकीला होता जाता है। इस दूसरी नली में कुछ दूरी पर बहुत से छेद होते हैं। इस उपकरण को विमान में ऐसे स्थान पर रखा जाता है जिससे यह वायु-प्रवाह के सम्मुख रहे। आज-कल विमानों में ये नलियाँ संकेन्द्रित होती हैं। पिटेट नली केन्द्र का काम करती है और स्टेटिक या स्थिर नली इसके चारों ओर रहती है। चालक घर के वायुचाल-सूचक के साथ इनका सम्पर्क रहता है।

चित्र १६—**पिटेट नलियाँ।**

पुराने वायु-चालसूचक यंत्रों में दो कोष्ठ रहते थे। इनको एक दूसरे से अलग रखने के लिए एक पतली झिल्ली द का प्रयोग किया जाता था। (चित्र-संख्या १६) दोनों नलियों के निचले सिरे इनमें से एक-एक कोष्ठ के साथ जुड़े रहते थे। यह कोष्ठ वायुरुद्ध होता था, परन्तु आजकल पिटेट नली धातु के बने एक चपटे, परन्तु गोलाकृति बक्स के भीतरी भाग और स्थिर नली इस बक्स के बाहरी भाग के साथ जुड़ी रहती है। इन दोनों अवस्थाओं में एक ही सिद्धान्त काम करता है। शून्य वायु-चाल
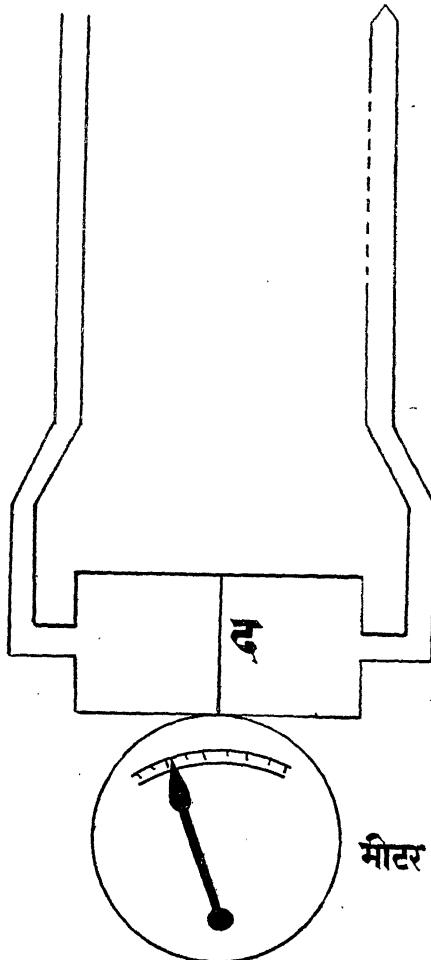
के समय झिल्ली अथवा बक्स के दोनों भागों में सामान्य वायु-दाब रहता है। खुली नली की दूसरी ओर वायु के चलने पर उस पर जो दाब होता है वह सामान्य वायु के दाब तथा वायुवेग के कारण उत्पन्न दाब के योग के बराबर होता है। परन्तु स्थिर नली पर जो दाब होगा वह सामान्य दाब के बराबर होगा। इस प्रकार दोनों भागों के दाब में अन्तर पड़ने के कारण झिल्ली अथवा बक्स में कम दाब की ओर मुड़ने की प्रवृत्ति आयेगी। जितना अधिक दाबान्तर होगा उतना ही अधिक मुड़ाव होगा। इस मुड़ाव का सम्बन्ध एक संकेतक से होता है और यह चालक को वायु-चाल का पाठ्यांक बतलाता है। साधारणतः इसके लिए समुद्र तल पर की वायु के घनत्व को प्रमाणभूत माना जाता है। स्थिर नली के छिद्र विमान के ढाँचे के इतने निकट होते हैं कि उस क्षेत्र में वायु और विमान के ढाँचे के बीच कोई आपेक्षिक वेग नहीं होता। अतः इस पर साधारण वायु-मण्डलीय दाब ही होता है। उपकरण की दूसरी नली का ऊपरी सिरा धारारैखिक प्रवाह में रखते हैं। कल्पना कीजिए कि इस प्रवाह का वेग (वे) और पिटेट नली द्वारा बताया गया दाब ($दा_१$) है, वायु का घनत्व घ है तो बर्नोली के सिद्धान्त के अनुसार इस अवस्था को इस सूत्र द्वारा प्रस्तुत किया जायगा।

$$दा = दा_१ + \frac{१}{२} घ\, वे^२ \text{ अर्थात् } दा - दा_१ = \frac{१}{२} घ\, वे^२$$

$$\therefore वे = \sqrt{\frac{दा - दा_१}{घ}} \qquad वे = \sqrt{दा - दा_१} \quad \because \text{ समुद्र तल पर } घ = १$$

इस अवस्था में दाबों का अन्तर आपेक्षिक गति के वेग के समक्रमानुपाती होता है। इस प्रकार यदि (मीटर के पैमाने) सूचक को दाबान्तर के वर्गमूल के अनुपात में अंकित कर दिया जाय तो इससे वायुचाल सीधे ही पढ़ी जा सकती है। किसी भी ऊँचाई पर यदि उस स्थान की वायु का आपेक्षिक घनत्व ७ है तो इस उपकरण द्वारा वे $\sqrt{७}$ की माप मिलेगी।

इस प्रकार हमने देखा कि पिटेट नली पर गतिज दाब[1] और स्थैतिक दाब[2] दोनों होते हैं और स्थिर-नली पर केवल स्थैतिक दाब और वायु तथा चाल-

1. Dynamic pressure 2. Static pressure

सूचक इनके अन्तर अर्थात् गतिज दाब को व्यक्त करता है जो $\frac{1}{2}$ घ वे^{2} के बराबर होता है । इसको इकाई मानकर यदि हम प्रतिरोध-सूत्र में रखें तो इस सूत्र का रूप इस प्रकार होगा—

$$\text{वातरोध} = 2 \text{ के } \frac{1}{2} \text{ घ वे}^2 \frac{\text{क्षु}}{\text{गु}}$$

$$= \text{सी } \frac{1}{2} \text{ घ वे.}^2 \frac{\text{क्षु}}{\text{गु}}$$

(सी) एक स्थिरांक है जो पहले प्रतिरोध सूत्र के स्थिरांक (के) के दुगने के बराबर होता है। इसका मूल्य प्रयोग द्वारा भिन्न-भिन्न आकृतियों के लिए मालूम कर लिया जाता है क्योंकि यह पिंड की आकृति पर ही निर्भर है। इसका मूल्य भिन्न-भिन्न आकृतियों के लगभग इस प्रकार होता है—

चपटी आकृति के लिए	(सी डी)		=१·२
गोल	,,	,,	=०·६
धारारैखिक	,,	,,	=०·०६

इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी भी पिंड पर लगे वायुगतिकी बल मात्रा, उस पिंड की आकृति (जो स्थिरांक (सी) से व्यक्त की जाती है), गतिज दाब (जिसकी मात्रा $\frac{1}{2}$ घ वे^{2} के बराबर है), उस पिंड के अग्र भाग के क्षेत्रफल (क्ष) तथा गुरुत्ववृद्धि (गु) पर निर्भर है।

९. स्थान-त्रुटि

वायु-चाल को मालूम करने के लिए ऐसे स्थान को चुनना पड़ता है जहाँ वायु-प्रवाह स्थायी हो तथा स्थैतिक दाब पर विमान, उसकी चाल तथा वायु के प्रति उसके व्यवहार का कोई प्रभाव न हो। ऐसे स्थान का पाना ही एक कठिन समस्या है। पूर्ण रूप से इस प्रकार का आदर्श स्थान इस यन्त्र के लिए विमान पर नहीं मिल पाता,जिसके कारण इस यन्त्र से दिये गये परिणामों में कुछ न कुछ अशुद्धि अवश्य रह जाती है। इस त्रुटि को 'स्थान-त्रुटि' कहते हैं। इसकी मात्रा विमान, उसकी चाल तथा वायु के प्रति उसके व्यवहार पर निर्भर है, अतः भिन्न-भिन्न विमानों के लिए यह राशि भी विभिन्न होती है। हम पहले कह चुके हैं कि वेण्टूरी नली नामक यन्त्र में धातु से बनी एक नली होती है और इसका

मुँह दोनों सिरों पर चौड़ा होकर धीरे-धीरे 'ब' स्थान पर सकरा हो जाता
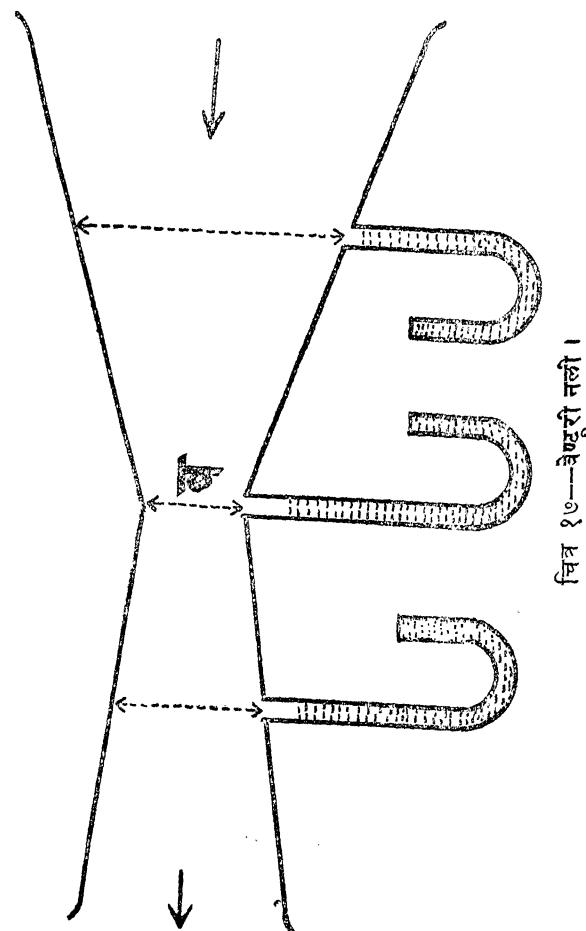
चित्र १७—वेण्टूरी नली।

है। इसका चित्र यहाँ दिया जा रहा है। (चित्र-१७) इसकी उपयोगिता का आधार इसके आकार पर निर्भर होता है।

जब प्रधान नली में वायु का प्रवाह नहीं होता, तो इसकी यू-नलियों में द्रव के तल एक से रहते हैं। स्पष्ट है कि इस अवस्था में प्रधान नली के सभी भागों में साधारण वायुमण्डलीय दाब लग रहा है। इसके विपरीत जब इसमें से वायु का प्रवाह वेग से होता है तो बर्नोली सिद्धान्त के अनुसार गतिज दाब के बढ़ने के साथ, स्थैतिक दाब भी कम हो जाता है। इससे सकरे भाग में जल की ऊँचाई अधिक और चौड़े भाग में कम पायी जाती है, जैसा कि उक्त चित्र में दिखाया गया है। इससे स्पष्ट है कि सकरे भाग में द्रव का वेग अधिक और दाब कम तथा चौड़े भाग में द्रव का वेग कम और दाब अधिक होता है। इस प्रकार इस उपकरण के मुख पर वायु-वेग दाबमापी की सहायता से ज्ञात हो सकता है।

इस यन्त्र की सहायता से एक और प्रयोग किया जा सकता है। एक साधारण पिटेट नली को (जिसके साथ स्थैतिक नली न हो) वेण्टूरी नली में प्रवाह के सम्मुख भिन्न-भिन्न बिन्दुओं पर रखिए और पिटेट नली को यू-नली से जोड़िए। यू नली के दूसरे सिरे को बाहर के वायुदाब में खुला छोड़ दीजिए। ऐसा करने पर पिटेट नली प्रवाह के स्थैतिक दाब तथा गतिज दाब के योग को तथा यू-नली (दा $+\frac{1}{2}$ घ वे^{2}) बाहर के वायुदाब से इस योग के अन्तर को व्यक्त करेगी। इससे पता लगेगा कि किसी भी स्थान पर प्रवाह में (दा $+\frac{1}{2}$ घ वे^{2}) कोई अन्तर नहीं पड़ता, अर्थात् दा $+\frac{1}{2}$ घ वे^{2} एक स्थिर राशि है। यही बर्नोली-सिद्धान्त का भी मत है।

इसी प्रकार पिटेट नली को यदि वायुचाल-सूचक के साथ जोड़ दें और इस सूचक की स्थैतिक नली को बाहर वायुदाब (सामान्य) में छोड़ दें तो भी प्रवाह के प्रत्येक स्थान पर पाठ्यांक एक ही होगा। बर्नोली-सिद्धान्त इस प्रयोग पर भी ठीक ही उतरता है।

यह बात ध्यान में रखने की है कि वायुचाल-सूचक, विमान की वायुचाल उसी समय बताता है जब इसका एक भाग वायु-प्रवाह में रखी पिटेट नली से तथा दूसरा भाग वायु-प्रवाह के उसी भाग में रखी स्थैतिक नली से जुड़ा हो। इस प्रकार की व्यवस्था के अन्तर्गत यदि पिटेट नलियों को वेण्टूरी यन्त्र के वायु-प्रवाह के भिन्न बिन्दुओं पर रखा जाय तो पता लगेगा कि इस यन्त्र के प्रवेश द्वार से

सकरे भाग तक वायु-प्रवाह के वेग में वृद्धि होती है और उसके पश्चात् कमी होना आरम्भ हो जाता है। यह वेग इस यन्त्र के क्षेत्रफल में हुई कमी के समानुपात में बढ़ता है, जिससे पता लगता है कि इसमें वायु के घनत्व में कोई परिवर्तन नहीं होता।

१०. अंकित वायु-चाल

विमान के चालक को सूचक के पाठ्यांक से जो वायु-चाल प्राप्त होती है, वह अंकित वायु-चाल कहलाती है। यह वास्तविक वायु-चाल से भिन्न होती है। विमान की वास्तविक वायु-चाल को जानने के लिए दो बातों का ज्ञान होना आवश्यक है।

(क)——वायु का वह घनत्व जिसके आधार पर सूचक अंकित किया जाता है।

(ख)——जिस ऊँचाई पर हमने अंकित वायु-चाल का पाठ्यांक लिया हो उस स्थान की वायु का घनत्व।

कल्पना कीजिए कि २०,००० फुट की ऊँचाई पर अंकित चाल २४० मील प्रति घण्टा है अर्थात् ३५२ फुट प्रति सेकण्ड, और इस स्थान पर वायु का घनत्व ०·०४१ पौंड प्रति घनफुट है।

पिटेट नली ३५२ फुट प्रति सैकण्ड चाल के लिए सामान्य वायुघनत्व ·०७७ पौंड प्रति घनफुट (मान लो) पर दाब की मात्रा

$$\frac{1}{2}घ\frac{वे^2}{गु} = \frac{1}{2}\times\frac{·०७७}{३२·२}\times ३५२^2$$

$$= \frac{1}{2}\times ·००२४\times ३५२^2$$

यदि वास्तविक चाल (वे) फुट प्रति सेकण्ड हो तो यह दाब

$$= \frac{1}{2}\times \frac{०·०४१}{३२·२}\times वे_1^2$$

$$= \frac{1}{2}\times ·००२४\times ३५२^2$$

$$वे_1 = \sqrt{\frac{·००२४}{·००१२७}}\times ३५२ = ४८२ \text{ फुट प्रति सेकण्ड}$$

$$= ३२९·२ \text{ मील प्रति घण्टा}$$

इस प्रकार स्पष्ट है कि वास्तविक वायु-चाल का ज्ञान इस सूत्र से मालूम हो सकता है—

$$\text{वास्तविक वायु-चाल} = \text{वे}_1 = \sqrt{\frac{\text{घवे}^2}{\text{घ}_1}} = \sqrt{\frac{\text{घ}}{\text{घ}_1}} \times \text{वे} = \sqrt{\frac{\text{घ}}{\text{घ}_1}} \times \text{अंकित वायु-चाल}$$

जिसमें घ = सामान्य घनत्व।

घ_1 = ऊँचाई का घनत्व।

विमान की वास्तविक चाल मालूम करने के लिए अनेक साधनों का प्रयोग किया जाता है, परन्तु ऊपर दिये सूत्र के अतिरिक्त कोई और सरल साधन इसके लिए उपयुक्त नहीं है। इसके दो कारण हैं जिन्हें नीचे दिये उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है—

१०० मील प्रति घण्टे की अंकित वायु-चाल

१०,०००	फुट की ऊँचाई	=११६	मील प्रति घंटा वास्तविक वायु-चाल
२०,०००	,,	=१३७	,,
३०,०००	,,	=१६३	,,
४०,०००	,,	=२०१	,,

स्पष्टतः इन दोनों चालों में काफी अन्तर हो सकता है और किसी साधारण नियम की सहायता से हम इन चालों को एक दूसरे में बदल नहीं सकते। कम्प्यूटर यंत्र ने इस समस्या को कुछ सरल कर दिया है। इसकी सहायता से अंकित वायु-चाल, ताप तथा ऊँचाई तीनों को ठीक-ठीक लगाकर वास्तविक वायु-चाल का पता लगाया जा सकता है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि एक समाकृतिक पिण्ड के चारों ओर के प्रवाह-क्षेत्र को दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक वह भाग जो पिण्ड के तल पर बहुत पतले आवरण के समान प्रवाह कर रहा होता है और जहाँ पर वेग-प्रवणता[1] जितनी अधिक होती है उतनी ही अधिक मात्रा में वहाँ पर श्यान-प्रतिबल होता है। इनके प्रभाव की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

1. Velocity gradient

दूसरा वह भाग जो स्तरों से बाहर होता है। इसका आधार मुख्यतः दाब की प्रतिक्रिया ही है। इसकी श्यानता के प्रभाव को हम आसानी से भुला भी सकते हैं। विमान को पहले भाग के कारण तलीय घर्षण तथा दूसरे भाग के कारण आकृति वातरोध सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार वातरोध को दो वर्गों में व्यक्त किया जाता है—

(क) वह भाग जिसका मुख्य कारण श्यानता है। इसे 'तल वातरोध' कहते हैं।

(ख) वह भाग जिसका मुख्य कारण अनुवात[1] है। इसे 'आकृति वातरोध' कहते हैं।

आकृति वातरोध को धारारैखिक आकार देकर बिलकुल दूर किया जा सकता है, परन्तु तल-वातरोध को पूरी तरह रोका नहीं जा सकता।

1. Wake

सातवाँ अध्याय

रेनाल्ड संख्या

१. रेनाल्ड के अनुसंधानों का परिणाम

पिछले अध्याय में विमान से उड़ान करते समय उस पर तथा उसके पक्षों और अन्य अंगों के सम्पर्क में आने पर होनेवाली वायु की प्रतिक्रिया—वातरोध की चर्चा की गयी थी। उड़ान करते समय विमान के समीप वायु-प्रवाह की रूपरेखा कैसी होती है? क्या इसे किसी राशि द्वारा व्यक्त किया जा सकता है और उड़ान की समस्याओं को सुलझाने में इसका ज्ञान कहाँ तक सहायक हो सकता है? इस क्षेत्र में अनुसन्धान करनेवालों में रेनाल्ड का एक मुख्य स्थान है। यह मानचेस्टर यूनिवर्सिटी में इंजीनियरिंग के प्रोफेसर थे। सन् १८८३ में इन्होंने इस क्षेत्र में किये गये अपने अनुसन्धानों से प्राप्त परिणामों को एक लेख के रूप में प्रकाशित कर वायुगतिकी[1] के क्षेत्र में अपना नाम सर्वदा के लिए अमर कर दिया। (दे० चित्र संख्या १८)

उक्त चित्र में इनके प्रयोग करने का उपकरण दिखाया गया है। इसमें काँच की एक लम्बी नली है जिसे बड़ी सावधानी के साथ बाह्य कम्पनों की अपेक्षा सुरक्षित किया गया है। इसका सम्बन्ध एक ऐसे हौज से है जो स्वयं प्रत्येक प्रकार के बाह्य विक्षोभ से सुरक्षित है। प्रवाह का अध्ययन करने के लिए इस उपकरण में इस नली में कोई रञ्जक पदार्थ डाल दिया जाता है। प्रयोग करते समय इस नली को तरल पदार्थ से भरना आरम्भ किया जाता है। ऐसा करते समय आरम्भ में यदि तरल पदार्थ में कुछ क्षोभ होता है तो उसे कम करने का प्रयत्न करते हैं। नली में तरल पदार्थ के सतत प्रवाह की व्यवस्था की जाती है।

1. Aero-dynamics

चित्र १८—रेनाल्ड-प्रयोग।

जब प्रवाह की चाल कम होती है तो रंजक पदार्थ नली की दीवारों के समानान्तर एक पतली-रेखा जैसा दीख पड़ता है। यह समानान्तर रेखा थोड़ा इधर-उधर चलते हुए भी आरम्भ से अन्त तक एक समान रहती है और आरम्भ की अपेक्षा नली के बाहरी सिरे पर कुछ थोड़ी मोटी-सी हो जाती है। (चित्र संख्या १८ क)
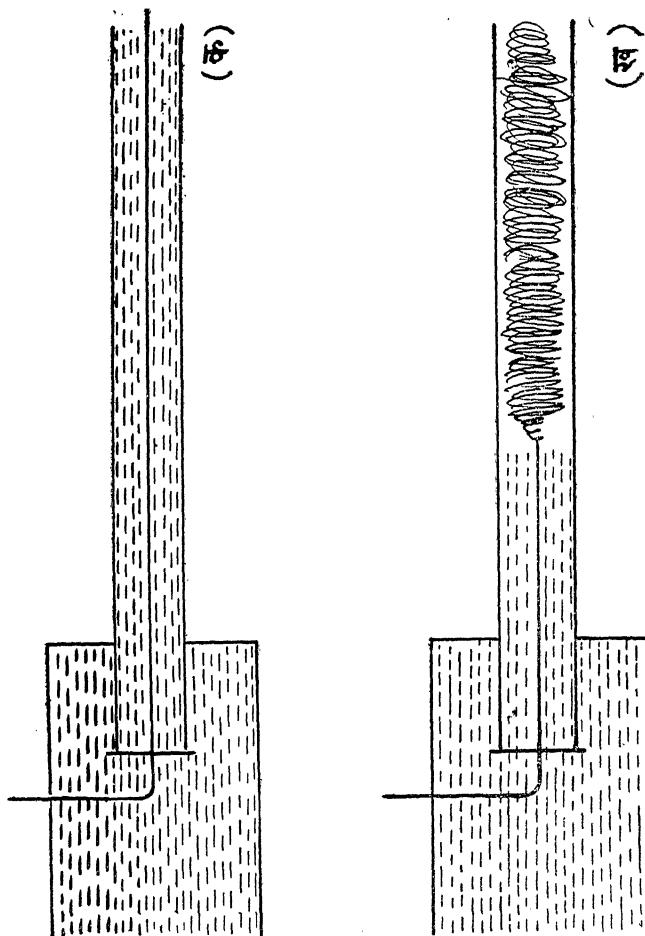
प्रवाह का वेग बढ़ते-बढ़ते ऐसी स्थिति आ जाती है कि रञ्जक पदार्थ के प्रवाह में आकस्मिक रीति से परिवर्तन आ जाता है, परन्तु यह संपूर्ण प्रक्रिया इतने धीरे सम्पन्न हो जाती है कि रञ्जक पदार्थ के रेशे की आकृति में कोई दर्शनीय परिवर्तन नहीं आने पाता। हम केवल उस आकस्मिक परिवर्तन को ही देख पाते हैं। इस परिवर्तन के कारण रंजक पदार्थ की सम रेखा नष्ट हो जाती है, और इसमें बड़े वेग के साथ क्षोभ पैदा होता है। इसके साथ ही यह पदार्थ तमाम नली में फैल जाता है और नली के दूसरे सिरे पर इस पदार्थ की सम रेखा को पहचानना कठिन हो जाता है। (दे० चित्र संख्या १८ ख)

इस प्रकार यह प्रक्रिया दो अवस्थाओं में सम्पन्न होती है —

(क) सामान्य वेग में प्रवाह की गति एक समानान्तर रेखा के समान होती है।

(ख) क्रांतिक वेग में प्रवाह की गति अत्यधिक अव्यवस्थित हो जाती है। तरल पदार्थ के कण इस अवस्था में भी नली के बाहरी सिरे की ओर प्रवाहित होते हैं, परन्तु यह प्रवाह समानान्तर न होकर, बहुत ही बेतरतीबवार होता है।

पहले प्रकार के प्रवाह को 'पटलीय प्रवाह' और दूसरे प्रकार के प्रवाह को 'प्रक्षुब्ध प्रवाह' कहते हैं। पहले भी किसी अध्याय में इस ओर संकेत किया जा चुका है। रेनाल्ड ने इन दोनों प्रकारों के प्रवाहों के अस्तित्वों का सफल प्रदर्शन किया और साथ ही उन अवस्थाओं का भी वर्णन किया जिनके अंतर्गत पटल-प्रवाह प्रक्षुब्ध प्रवाह में बदल सकता है। इन अवस्थाओं से सम्बन्धित रेनाल्ड के सिद्धान्त ने वायुगतिकी के विकास में पर्याप्त सहायता दी।

पटल-प्रवाह और प्रक्षुब्ध प्रवाह का यह परिवर्तन तरल पदार्थ के निम्नलिखित गुणों पर निर्भर है।

घ=तरल का घनत्व स्लग प्रति घनफुट (वायु के लिए भूस्तर पर ·००२४ है)

वे=परीक्षण वेग फुट प्रति सेकंड।

ल=पिण्ड के आकार का आयाम (विमान इत्यादि में जीवा की लम्बाई ली जाती है)

μ=तरल की श्यानता स्लग प्रति फुट प्रति सैकंड (सामान्य दाब और ताप पर वायु के लिए ०·०००,०००,३७३)

यह परिवर्तन परीक्षण वेग (वे) और लम्बाई तथा घनत्व (घ) के सम-क्रमानुपात और श्यानता (μ) के विलोमानुपात होता है $\left(=\frac{\text{वे ल घ}}{\mu}\right)$ । इस प्रकार जो संख्या प्राप्त होती है उसे उस परीक्षण की रेनाल्ड संख्या कहते हैं। वायुगतिकी में इसे (रेस) से व्यक्त करते हैं।

$$\text{रेस} = \frac{\text{वे ल घ}}{\mu} = \text{वे ल}\frac{\text{घ}}{\mu}$$

श्यानता को घनत्व से भाग देने पर गतिज श्यानता गुणांक प्राप्त होता है जिसे η से व्यक्त किया जाता है। ऊपरवाले समीकरण में $\frac{\text{घ}}{\mu}$ के स्थान पर $\frac{१}{\eta}$ रखने से रेनाल्ड संख्या $= \frac{\text{वे ल}}{\eta}$ होती है।

वायुगतिकी में इस संख्या का अत्यन्त महत्त्व है। इस राशि का कोई आयाम नहीं होता। यह केवल अनुपात मात्र है। भौतिकी में कुछ परिमाणों को, जिनमें लम्बाई, समय आदि सम्मिलित है, 'मूल राशियाँ' कहते हैं। ये राशियाँ स्वतः स्वतन्त्र हैं अर्थात् इनको व्यक्त करने के लिए इनसे साधारण और कोई ढंग नहीं है। अन्य भौतिकी परिमाण इनसे ही बने हैं। जैसे, लम्बाई को समय से भाग देने पर हमें वेग-राशि प्राप्त होती है, इसी प्रकार द्रव्य-मान को आयतन से भाग देने पर घनत्व-राशि प्राप्त होती है। विज्ञान की भाषा में इन राशियों को 'आयाम युक्त राशियाँ' कहते हैं।

आयाम को व्यक्त करने के लिए भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न मात्रक पद्धतियों का प्रयोग होता है। जैसे, फुट, मीटर लम्बाई के लिए, पौंड, ग्राम द्रव्यमान के लिए, सेकण्ड आदि समय के लिए। अनेक पद्धतियों के प्रचलित होने के कारण, कभी-कभी एक ही राशि को भिन्न-भिन्न संख्या से व्यक्त किया जाता है। गणित में कुछ ऐसी शुद्ध संख्या है जैसे π इत्यादि जो इन मात्रक पद्धतियों से स्वतन्त्र है। सर्वदा इनका मूल्य एक ही रहता है। दूसरी ओर ध्वनि का वेग एक निश्चित ताप पर दो भिन्न पद्धतियों के अनुसार ११२० फुट प्रति सेकण्ड अथवा ३४१·४ मीटर प्रति सेकण्ड हो सकता है। दो राशियों का अनुपात

निकालते समय, सुविधा के लिए एक ही मात्रक पद्धति[1] का प्रयोग करना अच्छा रहता है। उदाहरणार्थ रेनाल्ड संख्या को लीजिए। पिण्ड की लम्बाई और वेग के गुणनफल को गतिज श्यानता गुणांक से भाग देने पर यह संख्या मिलती है। इस समीकरण के लव (अंश) में वेग (लम्बाई ÷ समय) को लम्बाई से गुणा किया गया है और हर में गतिज श्यानता गुणांक $\frac{\text{लम्बाई}^2}{\text{समय}}$ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि समीकरण के लव और हर दोनों में एक समान आयाम है। यदि हम लव और हर दोनों की राशियों के लिए एक ही मात्रक पद्धति का प्रयोग करें तो इस प्रकार जो संख्या प्राप्त होगी वह मात्रक पद्धति के बन्धन से मुक्त होगी। यही कारण है कि हम कहते हैं कि रेनाल्ड संख्या में आयाम नहीं होता। भिन्न-भिन्न आकारों के पिण्डों के लिए यह प्रयोग द्वारा मालूम की जाती है।

२. प्रक्षुब्ध प्रवाह

रेनाल्ड के परिणामों को कभी इस प्रकार भी व्यक्त करते हैं कि रेनाल्ड संख्या के २२०० से अधिक होने पर सीधी नली का प्रवाह प्रक्षुब्ध हो जाता है और इससे कम होने पर प्रवाह पटलीय रहता है। इस कथन में कुछ अपवाद हैं क्योंकि प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि कुछ सावधानी बरतने पर, रेनाल्ड संख्या की मात्रा २२०० से अधिक होने पर भी प्रवाह पटलीय रह सकता है। यद्यपि इस दशा में थोड़ी मात्रा में भी विघ्न पड़ने से यह प्रवाह प्रक्षुब्ध प्रवाह में बदल सकता है। इसके विपरीत रेनाल्ड संख्या यदि २२०० से कम हो तो किसी अवस्था में भी प्रवाह प्रक्षुब्ध नहीं हो सकता, चाहे आरम्भ में यह कितना ही अनियन्त्रित रहा हो।

तरल पदार्थों की गति के सम्बन्ध में रेनाल्ड के मौलिक आविष्कार ने वायुगतिकी को एक ऐसी शुद्ध संख्या $\frac{\text{वे ल}}{\eta}$ दी जिस पर दोनों प्रकार के प्रवाहों के अस्तित्व का आधार है। वायुगतिकी के विकास के साथ-साथ इसका महत्त्व

1. Unit System

भी सामने आने लगा। इसके कारण वायुगतिकी के प्रयोगात्मक पक्ष के विकास में काफी सहायता मिली है।

रेनाल्ड ने जिस प्रक्षुब्ध प्रवाह से सम्बन्धित सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, उसकी वैज्ञानिक परिभाषा देना कठिन है। इसको केवल पहचाना जा सकता है। प्रकृति में होनेवाली सभी गतियाँ इसी वर्ग में आती हैं। सिगरेट के धुएँ की गति में हमें इसका सादृश्य मिलता है। सिगरेट के जलते सिरे से यह धुआँ धीरे-धीरे एक पतली समरेखा के रूप में आकाश की ओर जाता है। यह पटलीय प्रवाह का उदाहरण है। कुछ दूर जाने पर गरम धुएँ की यह रेखा अपनी दिशा खोने लगती है और अपने में प्रक्षुब्ध प्रवाह के लक्षणों का प्रदर्शन करने लगती है। इसके कणों की गति अनेक दिशाओं में बेतरतीबवार होने लगती है। ऋतु-सम्बन्धी विज्ञान में इस प्रकार के प्रवाह का एक विशेष महत्त्व है, विशेषतः भूमि के पासवाले स्तरों में। सामान्यतः इन स्तरों में प्रक्षुब्ध प्रवाह होता है अर्थात् इसमें झोंके, तूफान इत्यादि अक्सर आते हैं। इन कारणों से हमारे दैनिक जीवन में इस प्रवाह का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है।

अणुओं की निरन्तर अनियमित गति के कारण, तरल पदार्थ के प्रवाह में प्रक्षुब्ध प्रवाह का विसरण हो जाता है। इसी प्रक्षोभ के कारण तरल पदार्थ में ऊष्मा का चालन होता है। गैस के अणु बहुत छोटे आकार के होते हैं। एक अणु दूसरे अणु के टकराने से पहले जिस दूरी को तय करता है वह भी बहुत थोड़ी होती है। यही कारण है कि गैसों में आणविक चालन और विसरण[1] की प्रक्रिया बहुत ही मन्द होती है।

प्रक्षुब्ध प्रवाह में तरल पदार्थ की श्यानता, चालन तथा विसरण के आवर्धन होने पर भँवर तथा बवंडर, ऊष्मा, गति और अन्य बाह्य-द्रव्यों को तरल पदार्थ के एक भाग से दूसरे भाग तक ले जाते हैं। प्रक्षुब्ध प्रवाह के कारण उसके अवयवों[2] के परस्पर मिश्रण होने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। इस प्रक्रिया में भँवर तथा बवंडर को हम यदि एक अणु मान लें, तो इस प्रकार के सहस्रों अणुओं को इस प्रक्रिया में भाग लेते पायेंगे। ठीक इसी प्रकार वायुमंडल में भी इस प्रकार

1. Diffusion 2. Elements

के प्रवाह के कारण श्यानता, चालन तथा विसरण की मात्रा बढ़ जाती है। वायु-मण्डल में भँवर की श्यानता, चालन और विसरण के गुणांक अपने अनुरूप वायु-मण्डल के आणविक गुणांकों की अपेक्षा सैकड़ों, हज़ारों गुने अधिक होते हैं।

पृथ्वी के समीप की वायु में भी इसी प्रकार मिश्रण क्रिया होती रहती है। यदि यह क्रिया न होती तो हमें दैनिक जीवन में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता, क्योंकि हमारे साँस लेने के स्तर पर की वायु या तो अधिक ठंडी या अधिक गरम या अधिक आर्द्र या अधिक खुश्क होती। अतः प्रक्षुब्ध प्रवाह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विसरण प्रक्रिया है, जिससे समुद्रों से पानी के वाष्पीकरण, पृथ्वी से ऊष्मा के विसरण आदि की प्राकृतिक प्रक्रियाएँ नियंत्रित रहती हैं।

पृथ्वी पर लगभग कुछ दूर तक वायु में इस प्रकार का प्रवाह रहता है। ऊँचाई के साथ-साथ इसमें कमी पड़ने लगती है और लगभग २००० फुट के ऊपर पृथ्वी के तल-घर्षण-वातरोध की मात्रा शून्य के बराबर हो जाती है। जिस प्रकार का तीव्र दोलन वायुमण्डल में पृथ्वी के समीप के स्तरों में पाया जाता है, २००० फुट ऊपर जाने पर अच्छे से अच्छे सुग्राहित यन्त्र द्वारा इस प्रकार के दोलन का हमें पता नहीं चलता। अतः कह सकते हैं कि ऐसे क्षेत्र के वायुमण्डल में प्रक्षुब्ध प्रवाह शून्य के बराबर होता है। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि इस क्षेत्र में इस प्रकार का प्रवाह होता ही नहीं। वस्तुतः स्थिति यह है कि पृथ्वी के समीपवाले वायु-मण्डल की अपेक्षा, वायुमण्डल के इस भाग में अधिक विराम के पश्चात् दोलन प्रकट होते हैं। साधारणतः विमान इसी प्रक्षुब्ध रहित वायु-प्रवाह के क्षेत्र में अपनी उड़ान करता है। बहुत पूर्व इन दोलनों की उत्पत्ति का कारण एक विशेष प्रकार के बादल समझे जाते थे और विमान-चालकों को इन बादलों के क्षेत्र से बचने की विधि सिखलायी जाती थी। किन्तु अब यह सभी जानते हैं कि वायुमण्डल में इस प्रकार के बादल न होने पर भी प्रक्षुब्ध प्रवाह पैदा हो सकता है और जिससे द्रुतगामी विमानों की उड़ान को भय की सम्भावना हो सकती है।

अधिक ऊँचाई पर वायु के ऊर्ध्वाधर झोकों का परिमाण और इनकी मात्रा का ज्ञान प्राप्त करने में जो कठिनाइयाँ आती हैं, उनके कारण इस विषय पर

अधिक अध्ययन नहीं किया जा सकता। आशा है कि भविष्य में ज्यों-ज्यों हम अधिक ऊँचाई पर उड़ान करना चाहेंगे त्यों-त्यों इस विषय पर भी कुछ प्रकाश पड़ता जायगा, क्योंकि वहाँ के वायुमण्डल के प्रवाह के ज्ञान के बिना, उस क्षेत्र में उड़ान खतरनाक हो सकती है।

प्रक्षुब्ध प्रवाह उत्पन्न करने में, भँवरों के बनने का एक विशेष महत्त्व है। ये भँवर वायु के प्रवाह में बनते हैं तथा उसी में विलुप्त हो जाते हैं। इनका कोई निश्चित गुणधर्म नहीं माना जा सकता है। यही कारण है कि इनके अध्ययन में कठिनाई होती है। भँवर किस प्रकार बनते हैं? इस प्रश्न का यहाँ पर व्याख्यात्मक रूप से उत्तर देने का प्रयत्न किया जा रहा है।

मान लीजिए कि किसी तरल पदार्थ का प्रवाह पटलीय है। प्रश्न यह है कि इसको प्रक्षुब्ध प्रवाह में बदलने के लिए कौन स्थिति आवश्यक होगी? हम कह सकते हैं कि यह प्रवाह की स्थिरता का प्रश्न है। यदि यह पता लग सके कि किन स्थितियों में कोई तन्त्र अस्थिर होगा, तो हम कह सकेंगे कि इन्हीं स्थितियों में यह प्रवाह प्रक्षुब्ध प्रवाह में बदल जायगा। पिछले पचास वर्षों से गणितज्ञों को इस समस्या के सुलझाने में पूरी सफलता नहीं मिली है। इससे हम इस प्रश्न की जटिलता का अनुमान कर सकते हैं। इस समस्या को समझने के पूर्व इससे संबंधित कुछ मूल धारणाओं से परिचय प्राप्त कर लेना, यहाँ सुविधा जनक रहेगा।

३. पिण्ड की गति के दो भाग

शुद्ध गतिविज्ञान के एक प्रसिद्ध प्रमेय के आधार पर, किसी भी पिण्ड की गति को दो मूल भागों में बाँट सकते हैं—

(क) सदिग्वेग गति।

(ख) घूर्णन गति।

सदिग्वेग गति (ट्रांसलेशन मोशन) में, तरल पदार्थ चाहे कोई भी मार्ग अपनाये, उसके अवयव एक निश्चित अक्ष-पुंज से सर्वदा एक ही कोण बनाते हैं। इसके विपरीत घूर्णन[१] गति में तरल पदार्थ के अवयव अक्षपुंज से सर्वदा अपना

कोण बदलते रहते हैं और यह अवयव अपने केन्द्र के चारों ओर घूमते रहते हैं। मेलों में बच्चों की हिंडोला इस प्रकार की गति का अच्छा उदाहरण है। इसको घुमाने पर इसमें लगी कुर्सियाँ ऊपर से नीचे की ओर चक्र में घूमती हैं। यदि कुर्सियों को 'अवयव' रूप मानें तो इसमें बैठे बच्चे का मुँह एक पूर्ण चक्कर में भी एक ही दिशा की ओर रहेगा, बशर्ते वह स्वयं न हिले। अतः स्पष्ट है कि चक्र में घूर्णन गति के होने पर भी, कुर्सियों में सदिग्वेग गति[1] है, क्योंकि कुर्सियों को अपने कोरों पर घूमने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। यदि ये कुर्सियाँ स्थायी रूप से इन कोरों के साथ जोड़ दी जायँ, तो इनमें बैठा बच्चा, चक्र के अनुसार अपने मुँह की दिशा को भी बदलता पायेगा। उस अवस्था में कुर्सियों में सदिग्वेग और घूर्णन दोनों प्रकार की गति होगी।

तरल पदार्थों के सम्बन्ध में एक बात याद रखनी चाहिए कि वे जिन अवयवों से बने हैं उन्हें अपनी इधर-उधर घूमने की गति में मुख्य प्रवाह से स्वतन्त्रता होती है, इसके विपरीत ठोस पदार्थों में ऐसा सम्भव नहीं है। पिछले अध्याय में गोलाकार सिलेण्डर की स्थिर अवस्था में वायु-प्रवाह का जो वर्णन किया गया था वह अघूर्णन गति का उदाहरण था। अर्थात् उसमें तरल पदार्थ के किसी भी छोटे से छोटे अवयव में किसी भी प्रकार की अपनी घूर्णन गति नहीं थी, यद्यपि सम्पूर्ण प्रवाह का एक वक्र मार्ग था। इस प्रकार का प्रवाह तरल पदार्थ की गति का सबसे सरल रूप है। जब किसी पिण्ड पर से प्रक्षुब्ध रहित वायु-प्रवाह होता है तो अघूर्णन प्रवाह सीमान्त-स्तर से बाहर पाया जाता है। इस प्रकार के प्रवाह में तरल पदार्थ के अवयवों की गति सम्पूर्ण रूप से सदिग्वेग होती है, ऐसा न होने पर कहा जाता है कि अवयवों में अत्यावर्तिता[2] है। इस प्रकार अघूर्णन प्रवाह वह प्रवाह हुआ जिसमें अत्यावर्तिता न हो। विद्युत्, गुरुत्व इत्यादि से सम्बन्धित सिद्धान्तों से इसका साम्य होने के कारण इसे 'विभव प्रवाह'[3] भी कहते हैं।

कल्पना कीजिए कि हमारा सिलेण्डर एक स्थिर तरल पदार्थ में नियमित रूप से घूम रहा है। तरल पदार्थ इसकी दीवारों के साथ चिपकेगा और यह चिपकनेवाले स्तर सिलेण्डर के साथ-साथ चक्कर लगायेगा। यदि प्रक्षुब्ध को

1. Translation motion 2. Vorticity 3. Potential flow

दूर रखने के लिए कुछ सावधानी से काम लिया जाय तो घूमनेवाले सिलेण्डर के कारण जो प्रवाह बनेगा वह सतत और अघूर्णनीय होगा। यह सिद्ध किया जा सकता है कि इस अवस्था में धारा-रेखा संकेन्द्र चक्रों के रूप में होगी, इनमें से प्रत्येक पर वेग स्थिर होगा, जब कि समूचे रूप में वेग में केन्द्र की दूरी के प्रतिलोम अनुपात में कमी आयेगी।
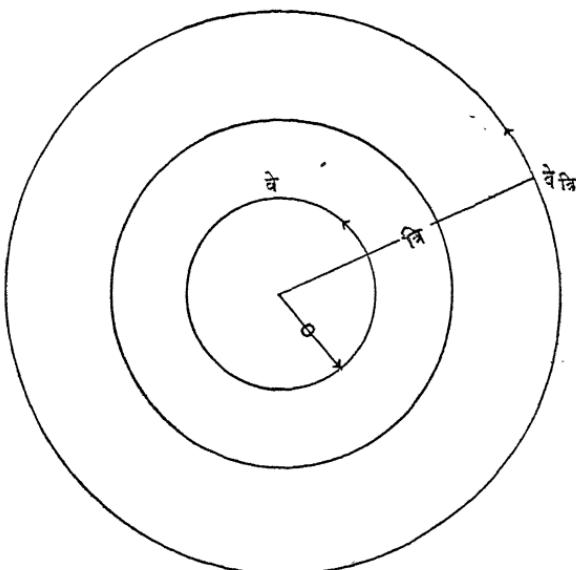
चित्र १९—**सिलेंडर के चारों ओर संचार।**

यदि सिलेण्डर के केन्द्र से दूरी (त्रि) हो और इस दूरी पर वेग की मात्रा (वे) हो तो $वे_{त्रि} = \frac{T}{२ \pi \text{ त्रि}}$

इसमें T समानुपात स्थिरांक है जिसका मूल्य इस समीकरण के अनुसार $वे_{त्रि}$ २ π त्रि होगा। इसे वैमानिकी में 'संचार' भी कहते हैं। इस प्रकार इस सिलेण्डर के गिर्द 'संचार' की मात्रा, इसकी परिधि और वेग के गुणनफल के बराबर है और क्योंकि वेग चक्र की त्रिज्या के प्रतिलोम है इसलिए संचार

का मूल्य सब चक्रों के लिए एक समान होगा। इस समीकरण के ज्ञान से हमें वायु-प्रवाह की गति का परिचय मिलता है।

एक अन्य प्रसिद्ध प्रमेय के आधार पर किसी भी बन्द वक्र मार्ग के गिर्द संचार की मात्रा इसके अन्दर के चक्करों के मान के योग के बराबर होती है। अब यदि एक अत्यणु क्षेत्र को लें और अनुपात मालूम करें तो इस प्रकार अत्यणु क्षेत्र के चारों ओर के 'संचार' को अत्यणु क्षेत्र से भाग देने पर जो अनुपात प्राप्त होगा, वह गति के समतल में इसके कोणीय वेग अर्थात् चक्कर की दर के समानुपात होगा। गणित के अनुसार जैसे ही किसी बिन्दु का क्षेत्रफल शून्य होता है, तो दिये हुए बिन्दु पर गति की अत्यावर्तिता का मूल्य, इस अनुपात के सीमान्त मूल्य के बराबर होगा। इस प्रकार अत्यावर्तिता तरल पदार्थ में घूर्णन की स्थानीय तीव्रता को बताती है और संचार एक परिमित क्षेत्र (विमान-पंख के समीप की वायु) में घूर्णन की कुल मात्रा को व्यक्त करता है।

गोलाकार सिलेण्डर में धारारैखिक प्रवाह, जिसका अध्ययन पिछले अध्याय में हुआ है, अघूर्णन[1] गति का उदाहरण है जिसमें संचार शून्य है। घूर्णन और अघूर्णन गति के योग से एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रभाव उत्पन्न होता है जिसका प्रसंग उद्भार (लिफ्ट) का वर्णन करते समय आ चुका है।

४. अत्यावर्त्तिता

हम जानते हैं कि अत्यावर्तिता[2] की उत्पत्ति श्यानता के कारण हो सकती है। ठोस पिण्ड पर वायु-प्रवाह के समय श्यानता के प्रभाव का क्षेत्र सामान्यतः सीमान्त-स्तर तक ही सीमित रहता है, अतः अत्यावर्तिता भी इसी क्षेत्र या अधिक से अधिक अनुवात[3] के शेष स्तरों तक सीमित रहेगी। अनुवात में जाने से पूर्व ही सीमान्त-स्तर में पहुँची वायु को तीव्र विरूपण[4] के कारण चक्कर खाने पड़ते हैं जिससे इसमें कुछ विकृति भी आ जाती है। अत्यावर्तिता में तरल पदार्थ के छोटे-छोटे क्षेत्रों में, जिनमें विमान की नलियाँ, चादरें इत्यादि सम्मिलित हैं, संकेन्द्रित होने की बहुत अधिक प्रवृत्ति होती है। इसके कारण ही इन छोटे-छोटे अत्यावर्तिता युक्त क्षेत्रों को भँवर का नाम मिलता है। अतः

1. Irrotational motion 2. Vorticity 3. Wake 4. Stress

भँवर बनने के लिए उस क्षेत्र में अत्यावर्तिता का होना आवश्यक है। जब विमान २००० फुट से ऊपर घूर्णनहीन वायुमण्डल में उड़ान करता है तो उसके चलने से जो अत्यावर्तिता पैदा होगी वह उसके अनुवात तथा सीमान्त स्तरवाले क्षेत्र में पायी जायगी। पिण्ड जितना टेढ़ा-मेढ़ा होगा उसमें उतनी ही अधिक मात्रा में अत्यावर्तिता पैदा होगी जिसके फलस्वरूप भँवर भी उतनी ही मात्रा में बनेंगे और वातरोध बढ़ेगा। सामान्य चाल पर विमान में जो आकृति-वातरोध पैदा होता है, उसका भी मुख्य कारण अत्यावर्तिता ही है। श्यानता का इसमें बहुत ही गौण भाग होता है।

चित्र संख्या ५ के अघूर्णन प्रवाह की सहायता से भँवरों के बनने की क्रिया का और स्पष्टीकरण किया जा सकता है। इसमें तरल पदार्थ के अणु (क) से (ख) तक जाते समय चाल पकड़ते हैं। दाब के निरन्तर बढ़ने पर भी (ख) बिन्दु पर, सिलेण्डर के पिछले भाग तक जाने के लिए, किसी आदर्श द्रव को जितने संवेग की आवश्यकता होती है वह इस बिन्दु पर इस द्रव में पाया जाता है। परन्तु वायु आदर्श द्रव नहीं है। अतः इसके अन्दरूनी स्तर सिलेण्डर के साथ चिपक जाते हैं जिससे तरल पदार्थ के प्रवाह के वेग में कमी पड़ती है, जो श्यानता की विसरण प्रतिक्रिया के कारण सब तरल पदार्थ में फैल जाती है। किसी भी कण को, जो सतह से अधिक दूर न हो, सिलेण्डर के पिछले भाग में जाने के लिए, अपने विरुद्ध दाब प्रवणता तथा श्यानता के कारण उत्पन्न बलों के प्रति लड़ना पड़ता है, जब कि इस कण में ऐसा करने के लिए कम ऊर्जा होती है। इस कारण यह पीछे की ओर मुड़ता है, सीमान्त-स्तर को बनानेवाले स्तर, भँवरों का रूप ले लेते हैं जो अन्त में एक दूसरे से अलग होकर, नीचे की ओर प्रवाह करने लगते हैं। सामान्य चाल पर यह सम्भव है कि पूर्णतया नियमित ढंग से इन भँवरों को बनते देखा जा सके। प्रवाह के बीच में यदि कोई ठोस पिण्ड रख दे तो कुछ अवस्थाओं में यह भँवर इसके किनारों से अपने को बारी-बारी से अलग करने लगते हैं। इस प्रकार अनुवात में प्रवाह की विशेष प्रकार की जो रूपरेखा बनती है उसे आस्ट्रियाई गणितज्ञ के नाम पर[1] कारमन अत्या-

1. Karman Vortex street

वर्ती स्ट्रीट कहते हैं। इस अवस्था में गति का ठीक-ठीक अनुमान लगाया जा सकता है, परन्तु अधिक चाल पर यह विलुप्त हो जाती है, अनुवात भिन्न-भिन्न आकार के भँवरों के समूह का अड्डा बनकर रह जाता है और प्रवाह प्रक्षुब्ध हो जाता है जहाँ कोई भी नियम ठीक नहीं बैठता।

प्रक्षुब्ध प्रवाह विमान के अनुवात के अतिरिक्त सीमान्त-स्तर में भी प्रकट होता है। अनुस्रोत की ओर सतह को बढ़ाने से, आरम्भ में, सीमान्त-स्तर में प्रवाह पटलीय होता है, फिर एक विशेष बिन्दु पर, स्तर में घनापन आ जाता है जिससे प्रवाह में तीव्रता आ जाती है। इस बिन्दु को संक्रमण बिन्दु कहते हैं क्योंकि यहाँ पर प्रवाह के रूप में परिवर्तन होता है। इसका निर्णय रेनाल्ड संख्या से होता है, क्योंकि सीमान्त-स्तर में प्रक्षुब्ध प्रवाह उत्पन्न होने के लिए इसका मान एक निश्चित मान से अधिक होना चाहिए। इसके अनुसार सीमान्त-स्तर में प्रक्षुब्ध प्रवाह के लिए वेग अथवा अनुस्रोत[1] की सतह की दूरी में से किसी एक का अधिक होना आवश्यक है। ऐसा होने पर, प्रक्षुब्ध प्रवाह के कारण तरल में भिन्न-भिन्न चाल से चलनेवाले भागों की आपस में मिश्रित होने की प्रवृत्ति आ जाती है। अतः सीमान्त स्तर के अधिक भाग में प्रवाह का वेग एक समान हो जाता है, परन्तु सतह के सम्पर्कवाले स्तर में एक बहुत पतला पटलीय उपस्तर[2] बन जाता है जिसमें वेग-प्रवणता बहुत अधिक होती है। इसी उपस्तर से यह पता लगता है कि वैमानिकी दृष्टिकोण से कोई भी सतह समतल अथवा असमतल होती है। यदि विमान के तल में लगे रिवटों इत्यादि के सिरे इतने छोटे हैं कि वह इस उपस्तर के भीतर ही रह जाते हैं, तो वैमानिकी में इस प्रकार की सतह को समतल कहेंगे, क्योंकि उनके कारण वातरोध पर कोई मुख्य प्रभाव नहीं पड़ेगा। यदि इस प्रकार के भाग इस उपस्तर के बाहर निकल जाते हैं तो इनके कारण तल-घर्षण वातरोध बढ़ेगा। अतः वैमानिकी में इस प्रकार की सतह को 'असमतल' कहेंगे। इस प्रकार स्पष्ट है कि असमतल सतह के कारण तलघर्षण वातरोध की मात्रा बढ़ जाती है, परन्तु सिलेण्डर और गोलाकार-जैसे पिंडों में ऐसा नहीं होता। इनमें आकृति

1. Down stream 2. Laminar sublayer

वातरोध की मात्रा अधिक होने का कारण, उनके प्रवाह का विभाजन होना है जिसके फलस्वरूप उनके पीछे अनुवात बन जाता है। यदि किसी प्रकार इस विभाजन क्रिया को स्थगित करने का साधन मालूम हो जाय तो अनुवात कम हो सकता है, अतः वातरोध में भी कमी हो सकती है। ऐसे पिण्ड की सतह के समीप की वायु की गति उस प्रतिक्रिया का परिणाम है जो सीमान्त स्तर की ऊपरी सीमा के स्वतन्त्र प्रवाह में सामने की ओर खिंचाव के प्रति होती है। दाब-प्रवणता और सीमा मुख्यतः इस खिंचाव का कारण है।

यदि गति पूर्ण रूप से पटलीय हो तो सीमान्त-स्तर की वायु में स्वतन्त्र प्रवाह पीछे की ओर होता है। इसका कारण वह संवेग है जो इसके श्यानता गुणधर्म और विसरण क्रिया के कारण उत्पन्न होता है। इसका प्रभाव यह होता है कि सीमान्त-स्तर विभाजन से पूर्व विमान की सतह के साथ-साथ विस्तृत हो जाता है, जिसके फलस्वरूप पीछे की ओर दाब में कमी पड़नेवाले क्षेत्र में भी कमी पड़ जाती है और आकृति वातरोध कम हो जाता है। इससे ऐसे पिण्डों के प्रति वातरोध नियम की व्याख्या इस प्रकार होती है कि २००,००० से ५००,००० रेनाल्ड संख्या के बीच, इससे पूर्व कि इसमें सामान्य रूप में वृद्धि आरम्भ हो, एक ऐसा बिन्दु आता है जिस पर वातरोध में अचानक कमी हो जाती है और वेग बढ़ जाता है। ऐसा उस समय होता है जब मुख्य प्रवाह का वेग इतना अधिक हो जाता है कि प्रवाह के विभाजन से पहले सीमान्त-स्तर में प्रवाह को प्रक्षुब्ध कर सके। प्राटल ने प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया कि उन्होंने बहुत कम रेनाल्ड संख्या पर भी वातरोध की बहुत कम मात्रा प्राप्त की। कम वातरोध के आकार बनाने में इस प्रक्रिया से सहायता मिलती है।

यहाँ पर लार्ड रेले द्वारा प्रतिपादित एक समीकरण का वर्णन कर देना उचित होगा। पिण्ड पर वायु-प्रवाह के कारण जो बल लगता है उसको इन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया है—

वायुगतिकी बल $= \frac{१}{२}$ घ वे^{२} ल^{२} फ़ (रेस)

वे—पिण्ड के प्रति वायु की आपेक्षिक चाल।

ल—पिण्ड का आकार (आकार को मापने के लिए लम्बाई अथवा त्रिज्या)।

घ —वायु का घनत्व ।

राशि फ (रेस)•एक शुद्ध संख्या को व्यक्त करती है जो किसी भी पिण्ड की एक निश्चित आकृति के लिए रेनाल्ड संख्या पर निर्भर है । ($\frac{1}{2}$घ वे^{2} बर्नोली-सिद्धान्तवाले गतिज दाब को व्यक्त करती है) इस प्रकार असंपीडनीय गति अर्थात् ध्वनि की चाल से कम चाल पर इस परिणाम को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं—

"किसी भी पिण्ड का वायुगतिकी बल एक आयाम-रहित राशि से व्यक्त किया जा सकता है जो स्वयं रेनाल्ड संख्या पर निर्भर होती है ।" इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि "उड़ान करते समय, पिण्ड के चारों ओर प्रवाह की रूपरेखा उसकी गति की रेनाल्ड संख्या पर निर्भर है ।"

यदि हम समीकरण में बल को वातरोध कहें तो फ (रेस) राशि वातरोध गुणांक कहलायेगी । इसे (वातरोध गुणांक) से व्यक्त करते हैं, क्योंकि यह रेनाल्ड संख्या पर निर्भर है, इसलिए वातरोध गुणांक का रेनाल्ड संख्या के प्रति लेखाचित्र बनाने पर हमें किसी भी पिण्ड में वातरोध की मात्रा का पता लग सकता है ।

वातरोध गुणांक मालूम करने के लिए वातसुरंगों का सहारा लेना पड़ता है । इनमें छोटे-छोटे विमान के माडलों पर प्रयोग करते हैं ।

५. स्केलत्रुटि

इन माडलों से जो परिणाम प्राप्त होते हैं उनके ही आधार पर पूर्ण विमानों का निर्माण होता है । पूर्ण विमान और माडल के परिणामों में निम्न कारणों से कुछ अन्तर होने की सम्भावना रहती है—

(क) माडल का आकार ।

(ख) वात-सुरंगों में वायु का सीमित विस्तार ।

(ग) स्केल (अनुमाप) प्रभाव ।

इसमें स्केल-प्रभाव मुख्य रूप से बहुत महत्त्व रखता है । इसके कारण जो त्रुटि आती है उसको कम करने के लिए रेनाल्ड सिद्धान्त के आधार पर निम्न ढंग से प्रयास किये गये हैं ।

इस सिद्धान्त को साधारण शब्दों में इस प्रकार कहेंगे—"यदि किसी वात-सुरंग में, वेग का मान उसके व्यास के प्रतिलोम हो, तो धारारैखिक प्रवाह, प्रक्षुब्ध प्रवाह में बदल जाता है।" इसका अर्थ हुआ कि जितनी अधिक बड़ी नली होगी उतने ही कम वेग पर प्रक्षुब्ध प्रवाह पैदा होगा। मान लीजिए कि एक इंच व्यास की नली में परम वेग २० फुट प्रति सेकण्ड है, तो दो इंच व्यास की नली में यह वेग १० फुट प्रति सेकण्ड होगा। इससे हम इस परिणाम पर पहुँचे कि यदि वात-सुरंग में वेग (वे) और उसके व्यास (ल) का गुणनफल दो वात-सुरंगों के लिए बराबर हो, तो उनमें प्रवाह की रूपरेखा भी एक समान होगी। रेनाल्ड के इस सिद्धान्त की पुष्टि हो चुकी है। यदि वास्तविक विमान और उसके माडल के प्रवाह की रूपरेखा एक समान है, तो कह सकते हैं कि हमारे वैमानिकी नियम ठीक हैं और हम विश्वास के साथ विमान पर लगे बलों का भी अनुमाप कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में अनुमाप के कारण कोई त्रुटि नहीं होगी। यहाँ पर अनुमाप का अर्थ व्यापक है। इसमें वैमानिकी नियम, वेग के वर्ग का नियम, घनत्व और क्षेत्रफल से सम्बन्धित सब नियम सम्मिलित हैं। यही कारण है कि माडल और पूर्ण विमान के परिणामों में अन्तर पाया जाता है। वे. ल. नियम के अनुसार इसके समाधान का प्रयत्न किया गया है।

मान लीजिए कि हम $\frac{१}{१०}$ अनुमाप के माडल पर प्रयोग कर रहे हैं। इसकी सहायता से यदि हम यह जानना चाहते हैं कि पूर्ण विमान में २०० मील प्रति घण्टे की चाल पर क्या दशा होगी, तो इस नियम के अनुसार, इस माडल पर २००० मील प्रति घण्टे की चाल पर परीक्षण करने होंगे। इतनी अधिक चाल को प्राप्त करने के लिए बहुत बड़ी वात-सुरंग चाहिए, जो असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। इसके अतिरिक्त अन्य समस्याएँ भी उत्पन्न हो जाती हैं। माडल का अनुमाप $\frac{१}{१०}$ है तो क्षेत्रफल का अनुमाप $\frac{१}{१००}$ होगा। अतः पूर्ण विमान के बलों से इसके बलों की तुलना करते समय माडल के अनुमाप के अनुसार १०० से भाग देना होगा। दूसरी ओर माडल की चाल १० गुनी है अतः इससे उत्पन्न बलों की तुलना करते समय बलों को १०० से गुणा करना होगा। इस प्रकार बलों का जो परिमाण प्राप्त होगा वह पूर्ण विमान के बलों के

बराबर होगा। माडल का लघु रूप इतने बलों को सह सकेगा, यह कहना कठिन है। इससे इस परिणाम पर पहुँच सकते हैं कि परीक्षण करते समय यदि माडल का (वे. ल.) पूर्ण विमान के (वे. ल.) से अधिक से अधिक समीप हो तो अनुमाप के कारण जो परिणामों में अन्तर आता है उससे सम्बन्धित शायद कोई नियम निर्धारित किया जा सके, परन्तु वास्तव में ऐसा संभव नहीं है।

कल्पना कीजिए कि एक बड़े विमान की २०० मील पर वातरोध की मात्रा मालूम करनी है। ऐसा करनेके लिए इसके $\frac{१}{१०}$ अनुमाप के माडल से वात-सुरंग में ५०, १००, १५० और २०० मील प्रति घण्टे की चाल पर वातरोध गुणांक मालूम करते हैं, और मान लीजिए यह गुणांक क्रम से लगभग ०·०५०, ०·०५१, ०·०५२ और ०·०५३ हैं। अनुमाप-त्रुटि के अभाव में इन सबको बराबर होना चाहिए था। परन्तु इसके अनुसार यह माडल की चाल के साथ बढ़ता है। इससे पता चलता है कि प्रत्येक ५० मील के बाद ०·००१ मात्रा में यह बढ़ता है और इसके अनुसार २००० मील पर इसका मान ०·०८९ होगा। (वे. ल.) नियम के अनुसार पूर्ण विमानं का २०० मील प्रति घण्टे की चाल पर यही गुणांक होना चाहिए, जब कि वास्तव में यह ०·०५० से भी कम होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इससे यह समस्या हल नहीं होती।

यह नियम उसी समय तक ठीक है जब तक माडल और वास्तविक विमान का माध्यम वायु एक ही तरल पदार्थ अर्थात् वायु है। सामान्यतः वात-सुरंग में ऐसा ही होता है। भिन्न प्रकार का तरल पदार्थ प्रयोग करने पर रेनाल्ड के अनुसार तरल के अन्य गुणधर्मों का रेनाल्ड संख्या पर प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि $\text{रे}_{\text{स.}} = \frac{\text{घनत्व}}{\text{श्यानता}}$ वे. ल. जैसा कि पहले हम कह चुके हैं, इसके कारण प्रवाह पर भी असर पड़ेगा। मान लीजिए, वायु के स्थान पर माडल के परीक्षण के लिए पानी का प्रयोग किया जाय। पानी वायु की अपेक्षा घनत्व में ८१५ तथा श्यानता में ६४ गुना अधिक है। अतः वायु में $\frac{१}{१०}$ अनुमाप के माडल के साथ २००० मील प्रति घण्टे की चाल से परीक्षण करने पर जो रेनाल्ड संख्या प्राप्त होती है, वही संख्या पानी के $\frac{२०००}{१२८} = १५६$

मील प्रति घण्टे के प्रवाह में परीक्षण करने पर प्राप्त होगी। परन्तु पानी की ऐसी सुरंग बनाना जिसमें १५६ मील प्रति घण्टे का प्रवाह उत्पन्न किया जा सके, २००० मील प्रति घण्टे वाली वात-सुरंग के निर्माण से अधिक कठिन है। इसके अतिरिक्त कुछ और कठिनाइयाँ ऐसी आ जाती हैं जिनसे इसको अनुमाप-प्रभाव को कम करने का अच्छा साधन नहीं माना जा सकता।

एक और ढंग से इस समस्या को हल करने का प्रयत्न किया जाता रहा है। हम जानते हैं कि संपीडन से श्यानता पर कोई प्रभाव विशेष नहीं पड़ता। मान लीजिए कि वायु को २५ वायुदाब का संपीडन दिया गया है। (ऐसा अमेरिका और इंग्लैंड में सफलतापूर्वक किया जा चुका है।) ऐसा करने से जहाँ तक घनत्व का सम्बन्ध है, हमें २५ का अंश प्राप्त हो गया। इसका अर्थ यह हुआ कि $\frac{१}{१०}$ अनुमाप के माडल को २००० मील प्रति घण्टे की चाल के स्थान पर वही परिणाम प्राप्त करने के लिए $\frac{२०००}{२५} = ८०$ मील प्रति घण्टे की चाल पर परीक्षण किया जा सकता है।

६. संपीडन वात-सुरंगें

इससे जो परिणाम प्राप्त होते हैं वे काफी सीमा तक अनुमाप के प्रभाव से बचे होते हैं। ऐसी वात-सुरंगों को संपीडन-वातसुरंगों का नाम दिया जाता है। यह बहुत महँगी होती हैं। विश्व में लगभग इस प्रकार की कुल १२ सुरंगें हैं जिनमें अधिकतम २५ वायुदाब का संपीडन दिया जाता है और इस दाब के अन्तर्गत अधिकतम १०० मील प्रति घण्टे की चाल प्राप्त की जा सकती है। संपीडन क्रिया में ताप का बढ़ना आवश्यक है, अतः इन सुरंगों में ताप को कम करने के लिए आवश्यक साधनों का प्रयोग किया जाता है।

साधारण वात-सुरंगों में रेनाल्ड संख्या १००,००० से १५०,००० तक प्राप्त होती है। सामान्य विमान की उड़ान के समय रेनाल्ड संख्या की मात्रा २,०००,००० से २०,०००,००० के बीच होती है, जब कि इसकी मात्रा संपीडन वातसुरंगों में ७,०००,००० से १२,०००,००० तक होती है।

इससे संपीडन वात-सुरंगों की उपयोगिता का स्पष्ट पता लगता है। इनके आविष्कार का श्रेय रेनाल्ड के सिद्धान्त को है। संक्षेप में रेनाल्ड ने जिस

सिद्धान्त द्वारा पटलीय प्रवाह और प्रक्षुब्ध प्रवाह के सम्बन्ध का वर्णन किया, उसी सिद्धान्त के आधार पर वैमानिकी को एक ऐसी राशि मिली जिसकी सहायता से अनुमाप के कारण जो त्रुटियाँ आती थीं उनको कम करने में हम संपीडन-वातसुरंग के आविष्कार तक पहुँच सके हैं।

आठवाँ अध्याय

पंखकाट

१. पंखकाट

अब तक हम वायुमण्डल और वातरोध के विषय में चर्चा कर रहे थे। यह चर्चा इसलिए आवश्यक थी कि इसका हमारे विमान की उड़ान से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वायु में उससे भारी मशीन के उड़ने के लिए कोई ऐसा आधार या साधन होना चाहिए, जिससे नीचे से वायु का जोर दिया जा सके, ताकि बराबर तथा विपरीत प्रतिक्रिया उत्पन्न हो और जो मशीन के भार को ऊपर सन्तुलित कर सके। सामान्यतः विमान में यह काम पंखकाट (aerofoil) से लिया जाता है जो गति की दिशा से कुछ कोण बनाते हुए झुके हुए होते हैं। ये पंखकाट थोड़े वक्र होते हैं। इनसे पहले चपटी पत्तीवाले पंखकाट भी उड़ान के पूर्व काम में लाये गये थे। यदि वायुप्रवाह वायुगति की दिशा से कुछ कोण पर झुकी हुई चपटी पत्ती पर से हो तो इस पत्ती के ऊपरी तल का वायुदाब कम और इसके नीचेवाले तल का वायुदाब अधिक होगा, फलतः पत्ती पर जो दाबान्तर उत्पन्न होगा उसके कारण इसमें पीछे की ओर ऊपरी भाग में जोर लगेगा। कल्पना कीजिए कि इस पत्ती का क्षेत्रफल ५० वर्ग इंच है और इसके ऊपरी भाग का औसत वायुदाब सामान्य वायुदाब की अपेक्षा (जो १५ पौंड प्रति वर्ग इंच होता है) १२ पौंड प्रति वर्गइंच है और इसके नीचे के भाग का दाब १५ पौंड प्रति वर्गइंच से १६ पौंड वर्गइंच है, तो इस पत्ती पर कुल दाब ४ पौंड प्रति वर्गइंच रहेगा, अर्थात् पत्ती पर लगे बल की मात्रा (५०×४) अर्थात् २०० पौंड होगी। इस बल को कुल प्रतिक्रिया कहते हैं और यह सर्वदा पत्ती के लगभग समकोण कार्य करती है। यह देखा गया है कि झुकाव का कोण कम होने पर ऊपरी अवयव प्रत्यग्र अवयव की अपेक्षा अधिक होगा। दूसरी ओर ऐसा करने पर कुल प्रतिक्रिया में भी कमी होगी। यदि कोण
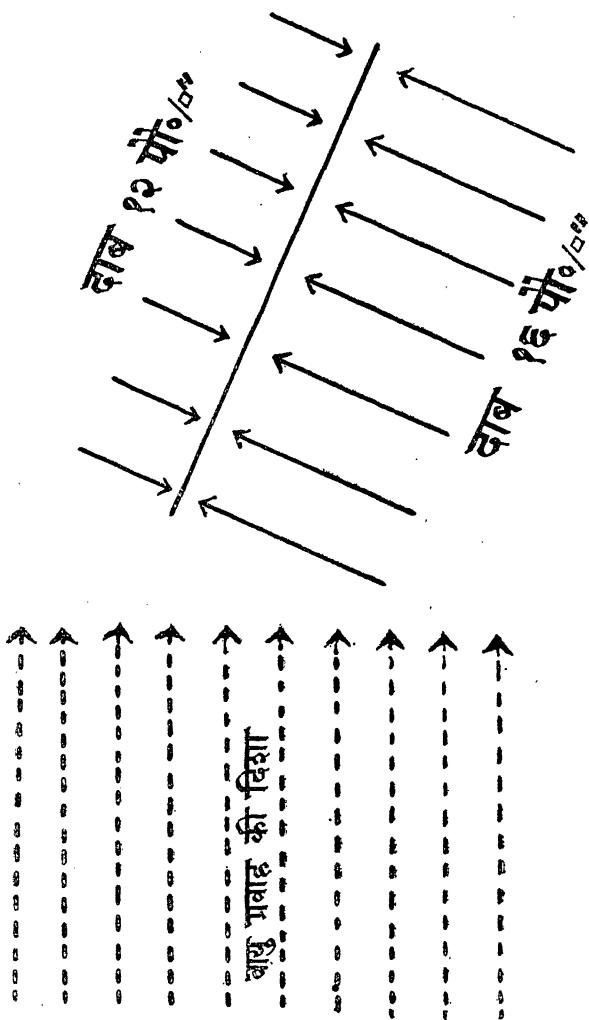
चित्र २०—वायु में चपटी पत्ती की गति।

शून्य हो तो इसकी मात्रा भी शून्य होगी। अतः प्रत्यग्र अवयव को कम करने की चेष्टा में हम ऊपरी अवयव को स्वतः कम कर देते हैं जिसके परिणामस्वरूप

हमें एक ऐसे कोण की तलाश करनी होगी जो सबसे अच्छा परिणाम दे। कुल प्रतिक्रिया को दो अवयवों में बाँटते समय यह मान लिया गया था कि वायु का प्रवाह क्षैतिज है अथवा स्थिर वायु में पत्ती की गति क्षैतिज है।

चित्र २१—कुल प्रतिक्रिया।
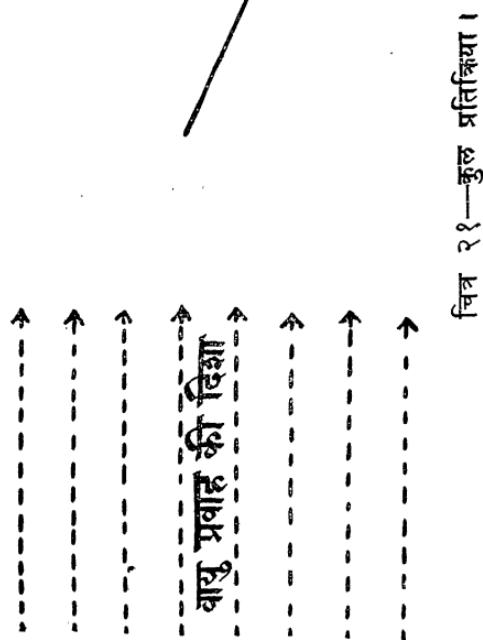
विमान की गति की दिशा पूर्ण रूप से कभी भी क्षैतिज नहीं होती।

विमान पर लगे हुए कुल बल को वायुप्रवाह के सापेक्षिक दो अवयवों में इस प्रकार बाँटा जा सकता है—

एक तो वह जो वायु-प्रवाह की गति के समकोण होता है; इसे 'उद्भार' कहते हैं।

दूसरा वह जो वायुप्रवाह की गति के समानान्तर होता है; इसे 'वातरोध' कहते हैं।

२, उद्भार बल

उद्भार शब्द की इस व्याख्या से कुछ भ्रम होने की सम्भावना है क्योंकि उड़ान की कुछ अवस्थाओं में यह अवयव क्षैतिजिक भी हो सकता है और नीचे की ओर ऊर्ध्वाधर भी। उद्भार बल के संबंध में अनुसंधान करते समय विमान में वक्रतल की आकृति के प्रयोग पर भी विचार हुआ। इस प्रकार की आकृति को पंखकाट कहते हैं। यह वायु में संचार की बहुत अधिक मात्रा पैदा करती है और इस प्रक्रिया में वातरोध की जो मात्रा उत्पन्न होती है वह संचार की अपेक्षा कम होती है। पंखकाट के केवल इसी गुणधर्म के कारण स्थिर-पक्ष लगे विमान की उड़ान संभव है। दाबान्तर के कारण पंखकाट के ऊपरी और निचले तल में विमान के पक्ष में ऊपर की ओर जोर लगता है।

पंखकाट के चारों ओर दाब के क्षेत्रों की माप इंग्लैंड में १९११ ई० में पहली बार हुई। इसके पश्चात् अन्य देशों में भी इस प्रकार का कार्य हुआ। निम्नांकित चित्र २२ में इस प्रकार प्राप्त परिणामों को दिखाया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि अधिकांश उद्भार बल पंखकाट के अगले भाग से प्राप्त होता है और वास्तव में इसके ऊपरी तल पर कम दाब को, इस अधिकांश उद्भार बल की उत्पत्ति का कारण कहा जाता है। उद्भार बल और विमान का भार एक दूसरे के विपरीत कार्य करते हैं। जब उद्भार बल की मात्रा भार से बढ़ जाती है तो विमान ऊपर की ओर उठता है। यह मात्रा विमान के भार से कम हो जाती है तो विमान नीचे की ओर आ जाता है। जब यह दोनों मात्रा में बराबर होते हैं तो विमान स्थिर अवस्था में होता है। ज्यों ही विमान अपनी उड़ान आरम्भ करता है, उद्भार बल उत्पन्न होना आरम्भ हो जाता है, परन्तु प्रत्येक

विमान के लिए अपनी एक निश्चित चाल है जिस पर वह अपने पंखकाट की सहायता से उद्‌भार बल की इतनी मात्रा उत्पन्न कर सके, जो इसके भार को
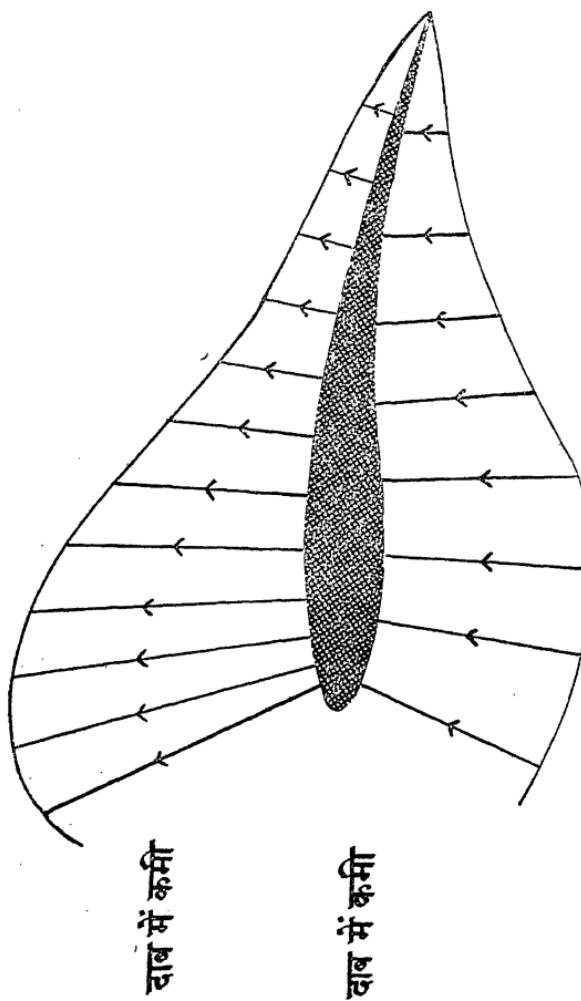
चित्र २२—पंखकाट के चारों ओर दाब वितरण।

आकाश में उड़ाने में समर्थ हो। इस चाल को 'इष्ट उड़ान चाल' कहते हैं। कुछ विमान ४० मील और कुछ १०० मील प्रति घण्टे की चाल पर हवा में
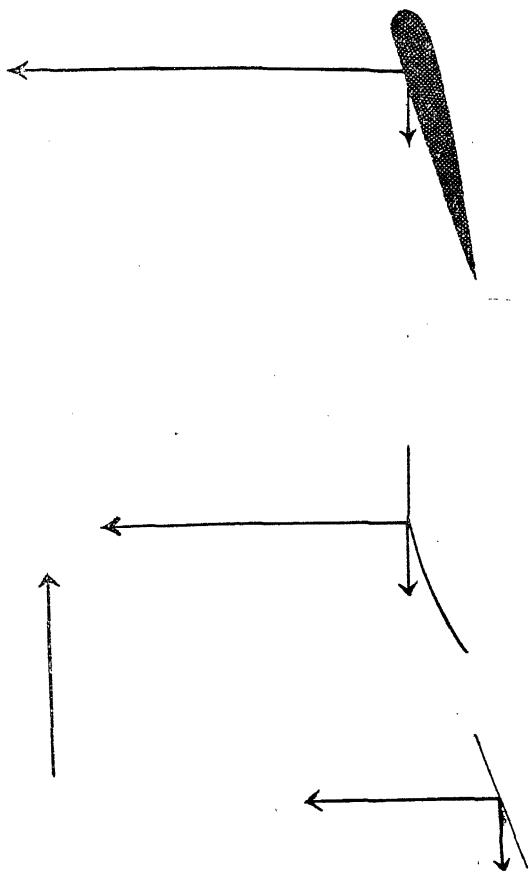
चित्र २३—चपटे तल, वक्र तल और पंखकाट पर उद्भार और वातरोध बल।

ठहरने योग्य हो जाते हैं। इस अवस्था को विज्ञान की भाषा में 'वायु वाहित' कहा जाता है। यही कारण है कि आधुनिक पंखकाट के दोनों तल उत्तल होते हैं अतः आकृति में ये पक्षियों के पंखों से मिलते जुलते हैं। पंखकाट की दक्षता उसके उद्भार बल और वातरोध बल के अवयवों के अनुपात पर निर्भर है। इस अनुपात की मात्रा जितनी अधिक होगी उतनी ही अधिक दक्षता इन पंखकाटों में होगी। पंखकाट के थोड़े से ही झुकाव से इस अनुपात को दुगना किया जा सकता है। आदर्श पंखकाट में इस अनुपात की मात्रा अधिकतम होती है। चित्र संख्या २३ में कुछ ऐसे आकारों में इस अनुपात की मात्रा को व्यक्त किया गया है। वक्र तल का एक और लाभ यह है कि ऐसे तल होने से थोड़ी बहुत मोटाई अपने आप आ जाती है जो इनकी मजबूती के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

३. प्रामाणिक परिभाषाएँ

इससे पूर्व कि हम इस सम्बन्ध में कुछ कहें, पाठकों की सुविधा के लिए कुछ ऐसी प्रामाणिक परिभाषाओं का उल्लेख कर देना आवश्यक है जो इस क्षेत्र में प्रायः प्रयोग में आती हैं। चित्र संख्या २४ द्वारा इनको समझाने का प्रयत्न किया गया है।

इस चित्र में दो मुख्य आयाम दिखाये गये हैं। पक्ष की दोनों कोरों के बीच की दूरी को पाट कहते हैं। पक्ष के अगले और पिछले सिरों के वक्र भागों के मध्य बिन्दुओं को जोड़नेवाली रेखा की लंबाई को ज्या कहते हैं। पाट और ज्या के गुणनफल को पंखकाट का समतल क्षेत्रफल कहते हैं। ज्या के साथ पाट के अनुपात को दर्शानुपात (aspact ratio) कहते हैं। अधिक दर्शानुपात वाला पंखकाट साधारणतः लंबा और तंग होता है। वायु की गति पंखकाट के अगले सिरे के सर्वदा लम्ब होती है। पंखकाट का झुकाव गति की दिशा से जो कोण बनाता है उसे आक्रमण कोण कहते हैं और सामान्यतः इसे ग्रीक अक्षर (एलफ़ा) से व्यक्त किया जाता है। यह पंखकाट की ज्या और वायु-प्रवाह की दिशा के बीच का कोण है। इसे अकसर आपतन कोण भी कहते हैं। परन्तु इस रूप से इसका प्रयोग न करना ही अच्छा है ताकि रिगर के आपतन कोण से धोखा न हो। विमान की ज्या और किसी निश्चित क्षैतिज न्यासरेखाओं के बीच के कोण
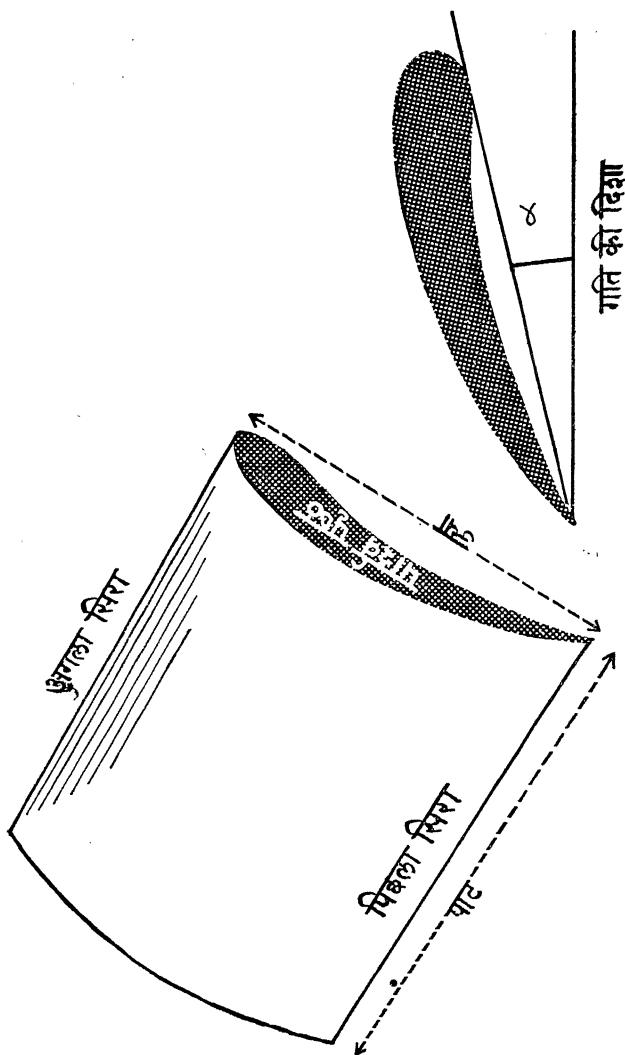
चित्र २४—पंखकाट से संबन्धित शब्दावली ।

को रिंगर का आपतन कोण कहते हैं। किसी भी विमान के लिए यह कोण निश्चित होता है, परन्तु आक्रमणकोण उड़ान के दौरान में बदल सकता है। पंख-

चित्र २५—थोड़े कोण पर झुके पंखकाट पर वायु-प्रवाह।
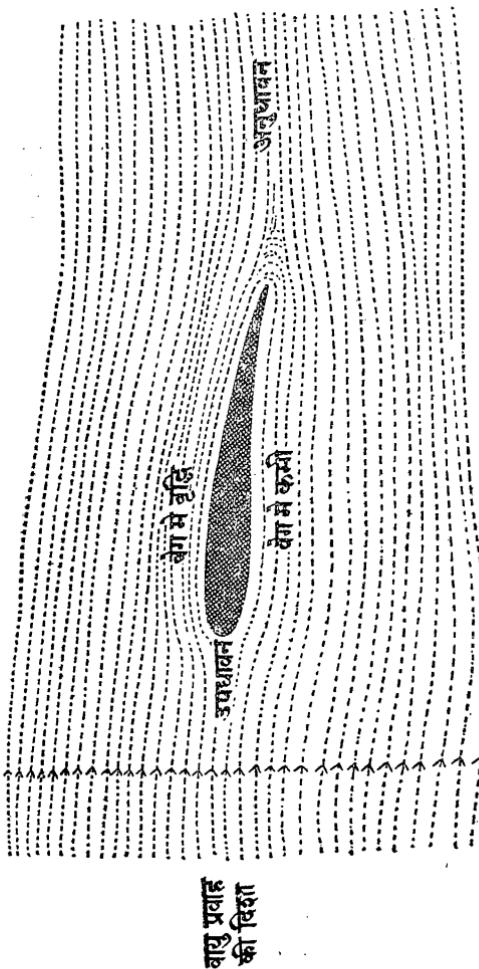
काट की ज्या के साथ-साथ इसके अनुप्रस्थ काटवाले भाग को 'पार्श्वपृष्ठ' कहते हैं।
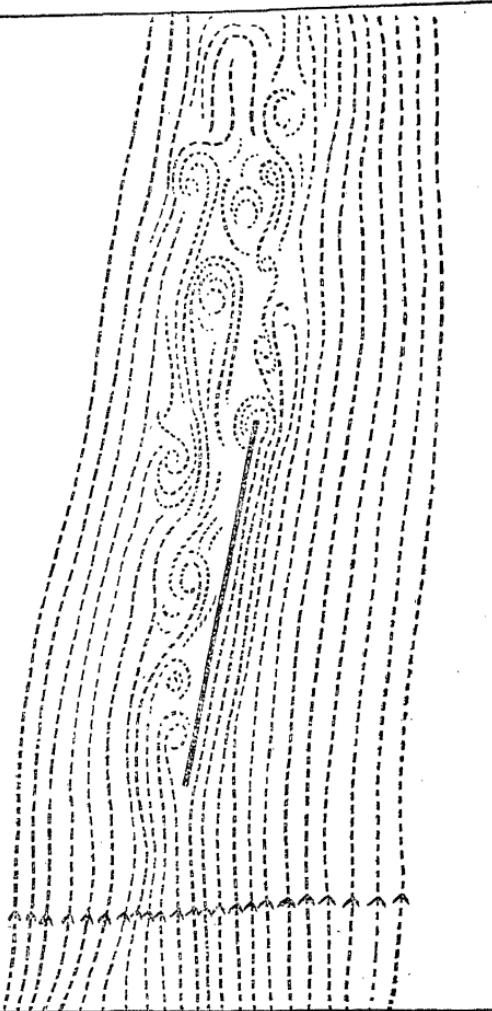
चित्र २६—चपटी पत्ती पर वायु-प्रवा

पंखकाट पर वायुप्रवाह का अध्ययन करते समय प्रयोग द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि वक्र पंखकाट (चित्र संख्या २५) पर एक चपटी पत्ती (चित्र संख्या २६) की अपेक्षा वायु-प्रवाह अधिक आसानी से हो सकता है। इसकी ऐसी आकृति होने के कारण वायु में भँवर कम मात्रा में उत्पन्न होते हैं, विशेषकर पंखकाट के ऊपरी तल पर। इसके कारण इसके ऊपरी तल पर दाब कम हो जाता है, अतः उद्भार बल बढ़ जाता है। जब आक्रमण कोण कम होता है तो एक सामान्य पंखकाट के हवा में चलने से, प्रयोगों द्वारा निम्नलिखित परिणाम मिलते हैं।

(क) पंखकाट के समीप पहुँचने से पूर्व ऊपरी दिशा में कुछ थोड़ा-सा विक्षेप वायु-प्रवाह में होता है। इसे उपधावन[1] कहते हैं।

(ख) पंखकाट पर वायुप्रवाह के कारण, वायु में नीचे की ओर काफी अधिक विक्षेप होता है। यह अनुधावन[2] कहलाता है। यह पंखकाट के पिछले भाग की ओर उत्पन्न होता है। यह विमान के पिछले हिस्सों में किसी अन्य भाग में टकराती हुई वायु की दिशा पर प्रभाव डालता है। यही इसकी महत्ता का कारण है।

(ग) पंखकाट के शीर्ष और पेंदी के तलों के ऊपर वायुप्रवाह सरल धारारैखिक होता है।

(घ) वायुप्रवाह होते समय पेंदीवाली तली की अपेक्षा शीर्षवाले तल पर धारारेखाएँ पास-पास होती हैं।

(ङ) शीर्षवाली सतह के ऊपर वायु का प्रवाह बढ़ जाता है। इसके विपरीत पेंदीवाली सतह पर वह घट जाता है।

(च) वायु-प्रवाह की चाल बढ़ जाने से, पंखकाट के ऊपर वायु-दाब, सामान्य वायु-दाब से कम होता है।

(छ) कम चाल होने से पंखकाट के नीचे दाब बढ़ जाता है।

(च) तथा (छ) में दिये परिणाम एक पहेली से प्रतीत होते हैं। वेन्टूरी नलीवाले प्रयोग में जो शंका उत्पन्न हुई थी वह यहाँ भी हो सकती है। हम कह

1. Upwash　　2. Downwash

सकते हैं कि पंखकाट के ऊपरी तल की वायु का संपीडन हुआ है, अतः दाब बढ़ना चाहिए, जब कि (चे) के अनुसार इसमें कमी पड़ती है। बात यह है कि पंखकाट की ऊपरी सतह आकार में बहुत कुछ वेन्टूरी नली के निचले आधे हिस्से से मिलती है और पंखकाट के वक्र के उच्चतम भाग के ऊपर पास-पास धारा-रेखाएँ वेन्टूरी नली की गर्दन में से जाती हुई धारारेखाओं से मिलती-जुलती हैं। अतः यहाँ पर प्रवाह का वेग बढ़ जाता है। इस उच्चतम भाग पर, प्रवाह के वेग के बढ़ने के कारण, गतिज ऊर्जा भी बढ़ जाती है और बर्नोली सिद्धान्त के अनुसार इस अवस्था में यहाँ के स्थैतिक दाब में इसके अनुरूप कमी आना अनिवार्य है।

इसी समस्या पर एक दूसरे ढंग से भी विचार किया जा सकता है। धारारेखाओं के वक्र पर विचार कीजिए। इस वक्र मार्ग पर वायु के किसी भी कण के विक्षेप के लिए उस कण पर वक्र के केन्द्र की ओर एक बल का लगना आवश्यक है। अतः इसके अनुसार अणु के बाह्य भाग पर इसके अन्तः भाग की अपेक्षा दाब की मात्रा अधिक होगी। दूसरे शब्दों में ज्यों-ज्यों हम भीतरी धारारेखाओं (पंखकाट के ऊपरी तल के समीपवाली धारारेखाओं) के समीप पहुँचेंगे, दाब की मात्रा में कमी होगी। यही कारण है कि धारारेखाओं के वक्र को नीचे की ओर ढाल देने पर अधिक महत्त्व दिया जाता है। यही इस समस्या का सार है।

आक्रमण-कोण बदलने से विमान के उद्भार बल और वातरोध बल में भी परिवर्तन होता है। प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि पंखकाट पर दाब के वितरण में परिवर्तन आने पर ऐसा होता है। इन प्रयोगों को करने के लिए जिस विधिका प्रयोग होता है उसे 'दाब-अंकन'[1] कहते हैं। पंखकाट[2] की सतह के छोटे-छोटे सूराखों को दाबमापी की नलियों से जिसमें पानी या अन्य द्रव भरा होता जोड़ दिया जाता है। जहाँ कहीं भी पंखकाट पर चूषण क्रिया[3] होती है, उसके अनुरूप द्रवयुक्त नली में द्रव का चूषण होगा, लेकिन जहाँ कहीं दाब बढ़ा हुआ होगा, द्रव का अवनमन[4] होगा। इस

1. Pressure plotting 2. Aerofoil 3. Suction action 4. Depression

प्रकार प्राप्त परिणामों के आधार पर पंखकाट के दाब के वितरण का चित्र बनाते हैं। इस क्रिया को ही 'दाब अंकन' कहते हैं।

४. दाब वितरण

पंखकाट की सतह के ऊपर दाब वितरण के अध्ययन को बड़ा महत्त्व दिया जाता है। 'दाब अंकन' में काँच की कई नलियों को पंखकाट की ऊपरी और निचली सतहों के ऊपर की गति की दिशा के समानान्तर रखा जाता है। ये दाबमापी (चित्र संख्या २७) से जुड़ी होती हैं, इससे इनके द्वारा भिन्न-भिन्न दाब मालूम कर सकते हैं। ४° आक्रमण कोण पर पंखकाट के ऊपर जो दाबवितरण प्रयोग द्वारा प्राप्त होता है उसे (चित्र संख्या २२ में) दिखाया गया है। इससे निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।
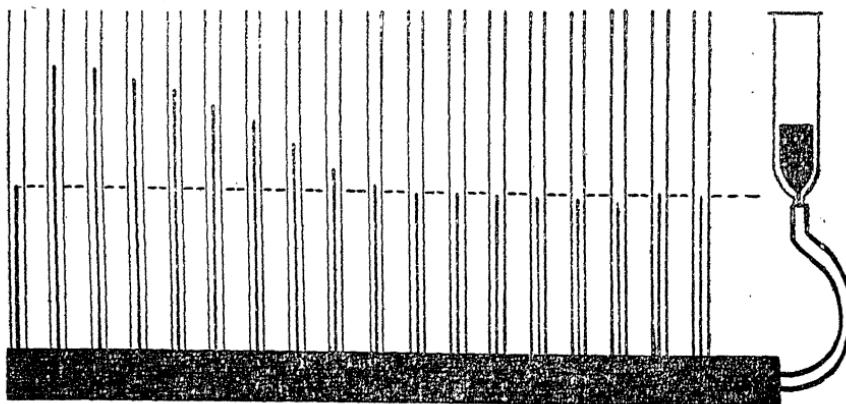
चित्र २७—दाब-मापी।

(क) दाब का वितरण एक-सा नहीं होता। शीर्षवाली सतह पर दाब की मात्रा में कमी और निचली सतह पर दाब की मात्रा में अधिकता पंखकाट के अगले भाग पर अधिक स्पष्ट दीख पड़ती है।

(ख) शीर्षवाली सतह पर दाब में कमी, निचली सतह पर दाब की वृद्धि से, कहीं अधिक होती है।

(ग) पंखकाट के शीर्षवाली सतह के अगले सिरे तथा वक्र के सर्वोच्चतम भाग के ऊपर दाब में अधिकाधिक कमी (अतः सबसे अधिक बल) हो जाती है।

उड़ान के वैज्ञानिक पक्ष को समझने में हमें इन तथ्यों से बहुत सहायता मिलती है। इनसे यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि पंखकाट की दोनों सतहें उड़ान में सहायक होती हैं, परन्तु इसकी ऊपरी सतह, अपने कम दाब के कारण अधिकतर उद्भार बल उत्पन्न करती है। किसी आक्रमण-कोण पर तो शीर्षवाली सतह पर दाब की यह कमी कुल उद्भार बल का $\frac{3}{4}$ भाग होती है।

दूसरा परिणाम यह निकलता है कि पंखकाट के अगले सिरे के समीप ही दाब में अधिकाधिक कमी और वृद्धि पायी जाती है। यदि हम कुल दाबवितरण को एक संयुक्त बल से व्यक्त करना चाहें तो यह संयुक्त बल, पंखकाट की ज्या के साथ-साथ जिस स्थान पर यह कार्य करेगा, उस स्थान की दूरी ज्या की कुल लम्बाई के आधे के लगभग होगी। पंखकाट की ज्या के इस बिन्दु को, जहाँ पर यह संयुक्त बल कार्य करता है, पंखकाट का दाब-केन्द्र कहते हैं। उसकी कोई निश्चित स्थिति नहीं बल्कि वह चाल और आक्रमण कोण के अनुसार बदलता है। दाब-केन्द्र और किसी भी पिंड के (जिसमें भार का वितरण एक समान न हो) गुरुत्व-केन्द्र में सादृश्य पाया जाता है। अतः इसको समझना सरल ही है। दाबवितरण के क्षेत्रफल का गुरुत्व-केन्द्र मालूम करने पर ही पंखकाट के दाब-केन्द्र का ज्ञान होता है।

संक्षेप में हम अब तक के प्राप्त परिणामों के आधार पर कह सकते हैं कि पंखकाट के शीर्ष भाग पर कम दाब, निचले भाग पर अधिक दाब, ऊपरी भाग में दाब की कमी निचले भाग के दाब की वृद्धि से अधिक और दोनों अवस्थाओं में अगले सिरे पर प्रभाव अधिकतम होता है।

विमान के पक्षों को बनाते समय इन परिणामों को ध्यान में रखा जाता है। उदाहरण के रूप में इसका ऊपरी आवरण इसकी पसली के साथ-साथ

नीचे की ओर ढलवाँ रखा जाता है जब कि नीचे का आवरण इसकी पसली के साथ ऊपर की ओर दबा दिया जाता है। पसलियों का अग्र भाग इसके पिछले सिरे से कहीं अधिक मज़बूत बनाया जाता है।

यदि पंखकाट पर हुए दाब के वितरण का योग किया जाय और इस योग को दाब-केन्द्र पर लगे संयुक्त बल से व्यक्त करें तो मालूम होगा कि एक विशेष आक्रमण कोण पर, एक चपटी पत्ती के समान, यह संयुक्त बल ज्या के समकोण कार्य नहीं करता। इसके विपरीत इसकी कार्यरेखा ज्या पर वायु-प्रवाह के लम्ब के साथ एक छोटा कोण बनाती है। इस कारण एक चपटी पत्ती की अपेक्षा इसमें उद्भार बल और वातरोध बल का अनुपात बढ़ जाता है।

प्रयोगों से पता चला है कि पंखकाट पर दाब वितरण आक्रमण कोण के बदलने पर काफी बदल जाता है जिसके कारण दाब-केन्द्र में गति पैदा हो जाती है। अगले सिरे के पीछे ज्या के एक विशेष अनुपात से अकसर दाब-केन्द्र की स्थिति व्यक्त की जाती है। प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है कि (−४°) ऋण कोण और शून्य कोण पर किसी भी पंखकाट के अगले सिरे के समीप, ऊपरी तल पर दाब, सामान्य दाब की अपेक्षा बढ़ता है और निचले तल पर कम होता है। इसके अनुसार पंखकाट के अगले भाग को आगे की ओर धक्का लगेगा जब कि इसके पिछले भाग पर ऊपर की ओर जोर लगेगा, अर्थात् पूर्ण पंखकाट अपनी नासा के आधार पर घूमने की चेष्टा करेगा। दूसरे शब्दों में हम कहेंगे कि दाब-केन्द्र अगले सिरे के पीछे के भाग की ओर बहुत दूरी पर होगा। जब आक्रमण कोण १६° हो जाता है तो दाब-केन्द्र आगे की ओर बढ़ता है और इस प्रकार अगले सिरे से ज्या की लम्बाई के एक तिहाई से भी कम दूरी पर रह जाता है। इस कोण पर पहुँचने के बाद यह फिर पीछे की ओर जाने लगता है। दाब-केन्द्र की गति पंखकाट का एक असुविधाजनक गुण-धर्म है क्योंकि जब तक गुरुत्व-केन्द्र और दाब-केन्द्र एक दूसरे से मिल न जायँ वह अपने गुरुत्व-केन्द्र पर घूमने की चेष्टा करेगा। इसे समझने के लिए मान लीजिए कि एक विशेष आक्रमण कोण पर यह एक दूसरे से मिल जाते हैं। अब अगर

आक्रमण कोण बढ़ जाय तो दाब-केन्द्र में आगे की ओर गति पैदा होगी। इसलिए गुरुत्व-केन्द्र पर जो घूर्णनबल* पैदा होगा उसकी मात्रा वायु के कुल नोद और दाबाकेन्द्र तथा गुरुत्व-केन्द्र के बीच की दूरी के गुणनफल के बराबर होगी। यह घूर्णनबल पंखकाट को घुमायेगा और आक्रमण कोण को और भी बढ़ा देगा। इस प्रकार साम्य भंग हो जायगा।
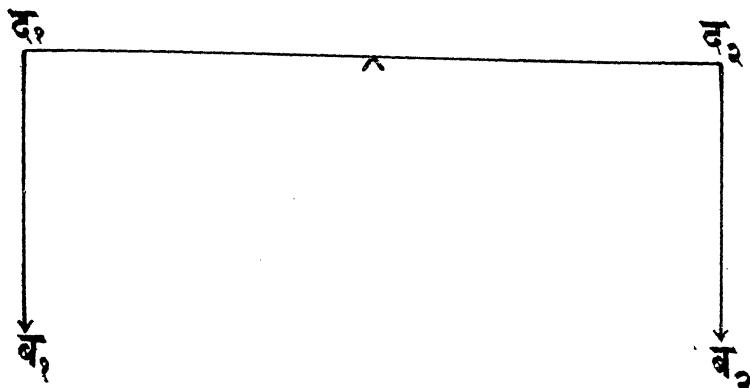
चित्र २८—घूर्णनसिद्धान्त

इस चित्र में एक मीट स्केल को एक नोकीले आधार के सहारे उसके गुरुत्व- केन्द्र पर संतुलित किया गया है। इसकी एक भुजा पर कोई भार रखने से इसकी समानता जाती रहती है और वह आधार-बिन्दु पर घूमता हुआ उसी भुजा की ओर दब जाता है। दूसरी ओर उतना ही भार उतनी दूरी पर लटकाने से यह दोबारा संतुलित हो जाता है। इस प्रकार प्रत्येक बल स्केल को घुमाने

*यदि किसी वस्तु के भिन्न-भिन्न बिन्दुओं पर दो या अधिक बल लगते हों तो ये बल अपणे-अपने बिन्दु पर पिण्ड को अपने अपने मान तथा दिशा के अनुसार स्थानान्तरित करेंगे और वह पिण्ड संयुक्त बल की प्रेरणा से संयुक्त बल की ही दिशा में चलने लगेगा। इस तरह की गति को 'स्थानान्तरीय' गति कहते हैं। किन्तु यदि पिण्ड किसी एक बिन्दु पर घूम सकता है तो बल के लगने से इसमें घुमाव आ जायगा और इस तरह की गति को 'परिभ्रमण-गति' कहते हैं।

की चेष्टा करता है। जिस आधार-बिन्दु पर स्केल घूमता है उसे घूर्ण-बिन्दु कहते हैं। बल तथा घूर्ण-बिन्दु से बल लगनेवाले स्थान की दूरी के गुणनफल को घूर्ण कहते हैं। यदि स्केल संतुलित सीधा रहे और दो बल आधार के इधर उधर लगे हों तो $ब_१ \times द_१ = ब_२ \times द_२$ पाया जाता है। बल ($ब_१$) स्केल को वामावर्त और ($ब_२$) दक्षिणावर्त, घुमाता है। वामावर्त घूर्ण को धनात्मक (+) और दक्षिणावर्त को ऋणात्मक (−) माना जाता है। यदि वस्तु के बलों के लगाव बिन्दु इस प्रकार हों कि वह संतुलित हो तो सभी धनात्मक तथा ऋणात्मक घूर्णों का योगफल शून्य के बराबर पाया जाता है। यही घूर्ण सिद्धान्त है जो अब तक सर्वमान्य रहा है।

यदि एक ही मान के दो समानान्तर बल किसी पिण्ड के दो भिन्न बिन्दुओं पर विपरीत दिशा में लगते हों तो उन्हें बल-युग्म कहते हैं। दोनों बल पिण्ड को किसी घूर्ण-बिन्दु पर एक ही दिशा में घुमाते हैं। दोनों बलों की दिशा बदलने में पिण्ड बल-युग्म द्वारा विपरीत दिशा में घूमेगा। इस प्रकार जो घुमाव पैदा होता है उसे बल-युग्म का घूर्ण कहते हैं जिसका मान दोनों में से एक बल के मान और दोनों बलों के बीच की दूरी के गुणनफल के बराबर होता है। दोनों के बीच की निकटतम दूरी को 'बल-युग्म की भुजा' कहते हैं।

इस अवस्था को 'अस्थायित्व की अवस्था' कहते हैं और उड़ान में सफलता प्राप्त करने में यह एक बहुत बड़ी समस्या उत्पन्न करती है। यदि किसी माडल विमान के पक्ष को वायु में उड़ाने का प्रयास करें तो यह अपनी नासा अथवा कमर के बल पर घूमेगा। इस प्रकार इसके घूमने का कारण इसका अस्थायित्व है। यदि हम इसके भार की व्यवस्था इस प्रकार कर दें कि यह ठीक प्रकार से हवा में तैर सके तो भी थोड़ी देर के पश्चात् वायु में किसी प्रकार के प्रक्षोभ के कारण, इसकी नासा ऊपर की ओर हो जायगी, आक्रमण कोण बढ़ जायगा, दाब-केन्द्र और उद्भार बल आगे की ओर बढ़ेगा, जिससे इसकी नासा अधिक ऊपर की ओर उठेगी, इस प्रकार यह चक्र चलता रहेगा। यदि प्रारंभिक वायु प्रक्षोभ, इसकी नासा को नीचे की ओर कर देता है तो चक्र इसके विपरीत चलता है, दोनों अवस्थाओं में पंखकाट हवा में तैर नहीं सकते।

इसके विपरीत एक चपटी पत्ती की दशा में इन्हीं कोणों पर आक्रमण कोण के बढ़ने से दाबकेन्द्र आगे के बजाय पीछे की ओर बढ़ता है, जिससे पत्ती की नासा में अपनी मौलिक अवस्था को पुनः प्राप्त करने की प्रवृत्ति आ जाती है। इस तरह इस पत्ती में स्थायित्व का गुण आ जाता है, इस कारण चपटी पत्ती ठीक प्रकार से भार पाने पर ही वायु में तैर सकती है। वायु के प्रक्षोभ से इसकी नासा ऊपर की ओर उठेगी, परन्तु दाब-केन्द्र पीछे की ओर चला जायगा जिससे आक्रमण कोण में अपने आप कमी आयेगी और इस प्रकार चपटी पत्ती हवा में फिर तैरने लगेगी।

सामान्य उड़ानों में आक्रमण कोण २° और ८° के बीच होता है। यह शून्य के नीचे और १६° के ऊपर यदा-कदा ही होता है। अतः हम कह सकते हैं कि उड़ान के सामान्य कोण पर, पंखकाट के आक्रमण कोण के बढ़ने के साथ, दाब-केन्द्र की गति में आगे जाने की प्रवृत्ति आ जाती है।

दाब-केन्द्र की इस प्रकार की अस्थिर गति, सामान्य वक्र पंखकाट का एक ऐसा गुण-धर्म है जो असुविधाजनक होता है। ऐसे पंखकाट बनाने के प्रयास किये गये हैं जिनमें यह दोष न हो और जिनमें दाब-केन्द्र, उड़ान के सामान्य आक्रमण कोणों पर व्यावहारिक रूप से स्थिर रहे। अच्छे विमानों में दाब-केन्द्र की गति सीमित कर दी जाती है। इसमें जो पंखकाट प्रयोग किये जाते हैं उनकी निचली सतह की आकृति अवतल न होकर उत्तल होती है और पंखकाट शुण्डाकार बनाया जाता है।

पंखकाट का मुख्य उद्देश्य, वायु में विमान को उड़ने के लिए आवश्यक मात्रा में उद्भार बल देना है। ऐसा करने के लिए इसे वायुप्रवाह के साथ एक विशेष आक्रमण कोण पर रखना पड़ता है। इसके साथ ही वायु में इसको एक विशेष वेग पर चलाना आवश्यक है। व्यवहार में विमान की गति की दिशा सर्वदा क्षैतिज नहीं होती अतः पंखकाट पर उदग्र बल[1] प्राप्त करना लगभग असंभव है। वायु-प्रवाह की सापेक्षिक प्रतिक्रिया के लम्बरूप अवयव को 'उद्भार' तथा उसके समानान्तर अवयव को 'वातरोध' कहते हैं जो सर्वदा वायु-प्रवाह की दिशा के

1. Vertical force

विपरीत होता है। उद्भार विमान के भार को संतुलित रखने के कारण इसे निश्चित धरातल में उड़ान में रखता है। वातरोध से उड़ान की दुश्मनी है और इसे कम करने की पूरी कोशिश की जाती है। उद्भार बल प्राप्त करते समय वातरोध की कुछ-न-कुछ मात्रा पैदा होती है। इसे कम करने के लिए भिन्न-भिन्न आकार के पंखकाटों पर भिन्न-भिन्न आक्रमण कोणों तथा भिन्न-भिन्न वेगों पर उनमें उत्पन्न वातरोध तथा उद्भार बल की मात्रा मालूम की जाती है। इसके लिए वातसुरंगों का प्रयोग किया जाता है। उनमें कुल प्रतिक्रिया को मालूम कर उसको दो अवयवों में बाँट देने की पद्धति का प्रयोग प्रायः नहीं होता। इसके विपरीत उद्भार और वातरोध बल की मात्रा अलग-अलग मालूम की जाती है। वातसुरंग में वायु-प्रवाह की दिशा को वातसुरंग के अक्ष के समानान्तर माना जाता है। पंखकाट को इस वायु-प्रवाह के भिन्न-भिन्न आक्रमण कोणों पर रखकर, वातसुरंग तुला की साहयता से इसके उद्भार और वातरोध बल की मात्रा मालूम की जाती है। इसके अतिरिक्त पंखकाट में उसके टेक पर घूमने की गति की माप भी मालूम हो जाती है। इससे दाब-केन्द्र का अनुमान किया जा सकता है। अतः पंखकाट का वातरोध और उद्भार बल इन तथ्यों पर निर्भर है——

(क) पंखकाट की आकृति।
(ख) पंखकाट का समतल क्षेत्र।
(ग) वायुप्रवाह के वेग का वर्ग।
(घ) वायु का घनत्व।

ये परिणाम किसी पिण्ड के वातरोध के मापने से मिले परिणामों से मिलते-जुलते हैं। वहाँ वातरोध की मात्रा मालूम करने के लिए पिण्ड के अग्रभाग का क्षेत्रफल काम में आता है, और पंखकाट में तल-क्षेत्रफल दोनों के लिए एक ही चिह्न 'त' का प्रयोग करते हैं। इसके अनुसार——

$\text{उद्भार} = \text{गु}_{\text{उ}} \frac{१}{२} \text{वे}^{२} \text{त}$

$\text{वातरोध} = \text{गु}_{\text{व}} \frac{१}{२} \text{वे}^{२} \text{त}$

चि (गु उ) और (गु व) को पंखकाट के उद्भार गुणांक तथा

वातरोध गुणांक कहते हैं । दोनों पंखकाट के आकार पर निर्भर हैं और आक्रमण कोण के बदलने के साथ ही यह भी बदलते हैं । इनका मान प्रयोग द्वारा मालूम किया जाता है । P वायु के घनत्व को स्लग प्रति घनफुट, (एक स्लग ३२·२ पौंड द्रव्यमान के बराबर है) पंख के तल क्षेत्रफल (त) को वर्गफुट तथा वेग (वे) को फुट प्रति सैकंड में व्यक्त किया जाता है ।

सामान्य रूप से प्रयत्न किया जाता है कि पक्ष में उद्भार गुणांक अधिकाधिक हो । इससे हमें विमान में, एक निश्चित और उसकी कम से कम चाल पर भार उठाने की क्षमता का पता लगता है । विशेषतः इससे विमान की सुरक्षित अवतारण चाल[1] जानी जाती है । इसी तथ्य को हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि $\frac{\text{उद्भार}}{\text{वातरोध}}$ अनुपात अधिक से अधिक रखना चाहिए, क्योंकि सामान्य उड़ानों में पक्षों का उद्भार बल उसके सारे भार को सहारा देता है । उस विमान को सबसे अच्छा माना जाता है, जिसे उद्भार-बल की उपलब्धि तथा वातरोध कम करने के लिए नोद की कम से कम आवश्यकता हो ।

सामान्य पंखकाट में आक्रमण कोण के साथ उद्भार गुणांक तथा वातरोध गुणांक में जो परिवर्तन आता है उसे चित्र संख्या २९ में दिखाया गया है । ऋण आक्रमण कोण पर उद्भार गुणांक शून्य है और इसके पश्चात् जब यह कोण शून्य के बराबर होता है तो इस गुणांक की एक निश्चित मात्रा होती है जिसके कारण उद्भार की भी एक निश्चित मात्रा इस कोण पर होती है । उभरे पंखकाटों का यह एक विशेष गुण है । एक चपटी पत्ती और एक आदर्श सम्मित पंखकाट में शून्य आक्रमण कोण पर कोई उद्भार बल न होगा । ०° और १२° तक के आक्रमण कोण पर लेखाचित्र एक सरल रेखा का रूप ले लेता है । इसका अर्थ यह हुआ कि आक्रमण कोण के बढ़ने के साथ-साथ उद्भार बल में भी वृद्धि होती है । उद्भार गुणांक की इस सरल रेखा के भाग को पंखकाट का कार्यशील परास कहते हैं । यह पंखकाट के अनुसार बदलता रहता है । सामान्यतः यह परास $\alpha = -$ ३° से $\alpha = +$ १२° तक होती है । कुछ अंशों

1. Landing speed

तक इसमें थोड़ी-सी बढ़ोतरी होती है और लेखाचित्र में वक्र आने लगता है। लगभग १५° के आसपास अधिकतम उद्भार-बल निश्चित होता है और इसके
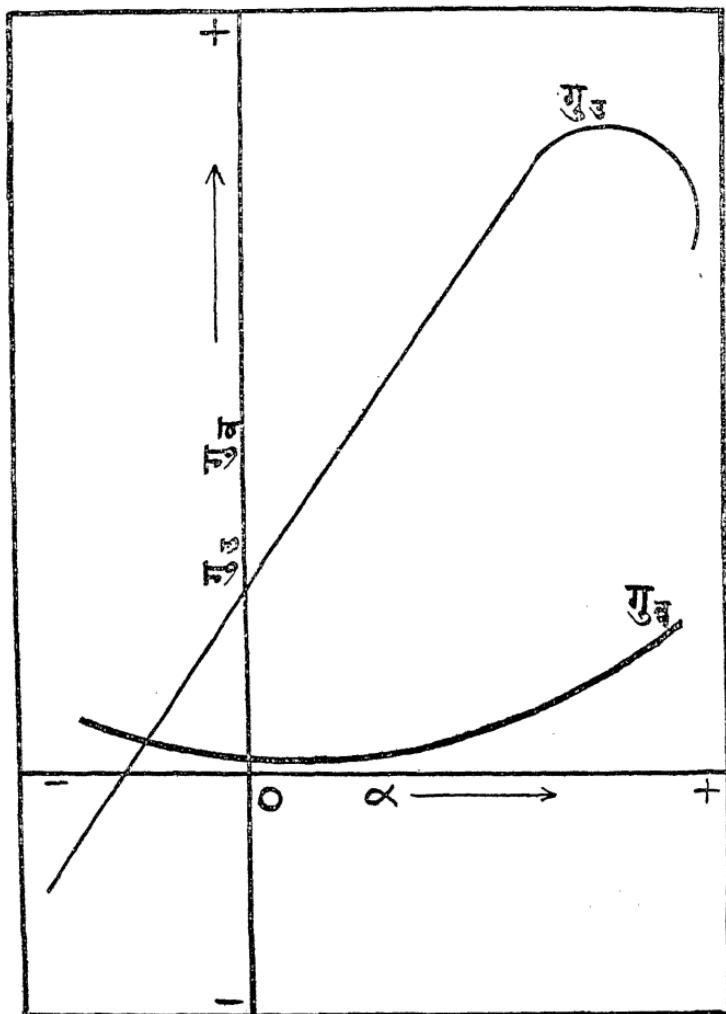
चित्र २९—गुणांक (उद्भार) और गुणांक (वातरोध) के लेखा चित्र।

पश्चात् उद्भार-बल में कमी आने लगती है। इस आक्रमण कोण को क्रांतिक आक्रमण कोण कहते हैं। इसका एक विशेष महत्त्व है।

५. अवपात कोण

आक्रमण कोण के कोण में थोड़ी भी वृद्धि होने पर, उद्भार की मात्रा बढ़ती है और क्रांतिक बिन्दु तक इस कोण में वृद्धि होने पर उद्भार बल की मात्रा में कमी होने लगती है। इसे 'पंखकाट का अवपात कोण' कहते हैं। पंखकाट की आकृति का इस कोण पर तो लगभग नहीं, किन्तु उद्भार की मात्रा पर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है।

पंखकाट का वातरोध गुणांक इस कार्यशील परास के भीतर उद्भार गुणांक की अपेक्षा बहुत कम होता है और आक्रमण कोण के साथ इसमें परिवर्तन भी भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है, क्योंकि इसका लेखाचित्र एक सरल रेखा का रूप धारण नहीं करता। ०° और $\frac{१}{२}$° कोण पर इसकी मात्रा न्यूनतम होती है तथा इसके पहले और इसके बाद इसमें वृद्धि होती है। ८° तक यह वृद्धि अधिक तीव्रता से नहीं होती परन्तु क्रांतिक आक्रमण कोण पर इसमें बड़ी तेजी से वृद्धि होती है।

हम पहले कह चुके हैं कि पंखकाट बनाते समय उससे अधिकाधिक उद्भार बल तथा न्यूनतम वातरोध बल प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। ऊपर दिये लेखा-चित्रों से पता लगता है कि अधिकतम उद्भार बल १५° के आक्रमण कोण पर तथा न्यूनतम वातरोध बल ०° के आक्रमण कोण पर प्राप्त होता है। दोनों में से किसी भी कोण पर उड़ान के लिए वातरोध की तुलना में अधिकाधिक उद्भार बल प्राप्त नहीं होता। यदि हम $\frac{\text{गुउ}}{\text{गुव}}$ अनुपात का आक्रमण कोण के परिवर्तन के अनुसार लेखाचित्र बनायें तो पता लगेगा कि ३° या ४° तक इस अनुपात में वृद्धि होती है। इन कोणोंपर उद्भार बल, वातरोध बल से लगभग १२ गुना अधिक होता है। (कुछ पंखकाटों में यह १६ से २० गुना तक भी होता है।) इसके पश्चात् धीरे-धीरे इस अनुपात में कमी-होती है; हालाँ कि उद्भार बल में वृद्धि होती है, परन्तु इस कोण पर वातरोध में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि होती है। अवपात कोण पर उद्भार बल, वातरोध

बल से ५ या ६ गुना रह जाता है और उसके पश्चात् यह कम होते-होते ९० पर शून्य हो जाता है ।

६. रिगर आयतन कोण

इससे स्पष्ट है कि ३° या ४° का आक्रमण कोण पर पंखकाट पूर्णरूप से दक्ष होता है । जब किसी विमान के पक्ष क्षैतिज के साथ ३° या ४° का कोण बनाते हों तो इस कोण को रिगर अवपात कोण कहते हैं और कहा जाता है कि विमान को रिगर अवस्था में रखा गया है । इस अवस्था में विमान अपनी सामान्य उड़ान के लिए तैयार होता है । जब पिछला पहिया जमीन पर टिका होता है तो पक्षों का झुकाव १५° या १६° होता है । आक्रमण कोण के परिवर्तन के साथ दाब-केन्द्र का लेखाचित्र बनाने पर इसकी गति से सम्बन्धित परिमाणों की पुष्टि होती है । ०° पर दाबकेन्द्र पीछे की ओर ज्या की लम्बाई की आधी दूरी से भी अधिक स्थान पर होता है । ४° पर यह पिछले सिरे की ओर ज्या के लगभग ०·४ और १२° पर यह बिन्दु ज्या के लगभग ०·२८ दूरी पर होता है । दूसरे शब्दों में दाब-केन्द्र, सामान्य उड़ानों के कोणों के आक्रमण कोण के बढ़ने के साथ साथ आगे की ओर गति करता है । १२° के पश्चात् दाब-केन्द्र की गति पीछे की ओर हो जाती है । उड़ानों में अकसर इस कोण का प्रयोग नहीं किया जाता ।

पंखकाट के दाब-केन्द्र की गति में अचानक एक निश्चित आक्रमण कोण के बाद वृद्धि होने पर कमी होना अवपात कहलाता है । सभी पंखकाटों में यह विशेषता पायी जाती है । इसके कारण ही विमान नीचे उतरने लगता है । ऐसी दशा में इसके पक्ष पूर्ण दक्षता से अपना कार्य नहीं कर पाते और विमान की पूँछ में चक्कर आने लगते हैं । जमीन के समीप होने पर तो विमान के लिए यह क्रिया बहुत खतरनाक होती है ।

पंखकाट में उद्भार बल उसके ऊपरी और निचले तल पर सर्वदा वायु-दाबान्तर के कारण उत्पन्न होता है । भार को सँभालने के लिए नीचे के तल पर अधिक दाब रहता है । इस दाबान्तर को बनाये रखने के लिए पक्ष के चारों ओर एक विशेष प्रकार का वायु-प्रवाह होना चाहिए और यदि किसी कारण से

इस प्रवाह में कुछ विघ्न पड़ता है तो इसके अनुरूप ही दाबान्तर में भी विघ्न पड़ेगा। सामान्यत: जिस कोण पर पंखकाट वायुप्रवाह से टकराता है वह बहुत छोटा होता है, वायु पंखकाट के इस टकराव से विक्षिप्त हो जाती है। इस प्रकार के प्रवाह को धारारैखिक प्रवाह कहते हैं। इस अवस्था में अनुपात बहुत कम होता है जिससे आकृति-वातरोध की मात्रा बहुत न्यून रहती है। जब आक्रमण कोण १५° के समीप पहुँचता है तो अचानक प्रवाह की दशा प्रक्षुब्ध हो जाती है। वायु-प्रवाह में पंखकाट की ऊपरी सतह पर से अलग होकर भँवर बनने लगते हैं। पिछले सिरे से अनुधावन भी नहीं हो पाता, अत: नीचे की ओर विक्षेप[1] के कारण तरल पदार्थ में उद्भार बल की मात्रा बहुत ही न्यून रहती है। इस क्रिया से वातरोध में काफी वृद्धि होती है। उड़ान करते समय सीमान्त-स्तर के प्रवाह में प्रक्षुब्धता आने पर अवपात कुछ देर से होता है। पंखकाट के ऊपरी तल से प्रवाह के अलग होने को 'बर्बलिंग'[2] कहते हैं और उस आक्रमण कोण को जिस पर यह क्रिया प्रथम बार होती है 'बर्बलिंग' कोण कहते हैं।

चित्र ३०—अवपात कोण के पूर्व और बाद में पंखकाट के चारों ओर प्रवाह।

1. Deflection
2. Burbling

७. खाँचे और पल्ले

अवपात के भय को कम करने के लिए बहुत-सी युक्तियों का प्रयोग होता है। इन युक्तियों में खाँचों और पल्लों का निम्नलिखित ढंग से प्रयोग करते हैं।

(क) स्थिर खाँचे।

(ख) नियंत्रित खाँचे।

(ग) स्वत: कार्यशील खाँचे।

इस उद्देश्य के लिए जिन पल्लों का प्रयोग किया जाता है वे इस प्रकार के होते हैं—

(क) उत्तल पल्ले।

(ख) चिरे पल्ले।

(ग) खाँचेदार पल्ले।

(घ) उद्भार पल्ले।

(ङ) रोध पल्ले।

पंखकाट पर इनके प्रयोग से जो प्रभाव पड़ते हैं वे इस प्रकार हैं–

(अ) उद्भार में वृद्धि।

(आ) वातरोध में वृद्धि।

(इ) अवपात कोण में परिवर्तन।

खाँचा बहुत कुछ पंखकाट के आकार का होता है, इसे 'सहायक पंखकाट' भी कहते हैं। यदि इसे प्रमुख पंखकाट के सम्मुख इस प्रकार रखें कि दोनों के बीच में कुछ स्थान रिक्त रहे तो पंखकाट के उद्भार गुणांक में ६० से १०० प्रतिशत तक वृद्धि हो सकती है। इस व्यवस्था के कारण अवपात कोण १५° से २५° या इससे भी अधिक हो सकता है। (चित्र संख्या ३१ में) इसका कारण स्पष्ट है। धारारैखिक वायु-प्रवाह में प्रक्षोभ पैदा होने पर अवपात होता है। खाँचेदार पक्ष[1] में, रिक्त स्थान में से वायु-प्रवाह इस प्रकार होता है

1. Slot-wing

जिससे धारारैखिक प्रवाह को प्रक्षुब्ध प्रवाह होने के लिए अपेक्षाकृत अधिक कोण की आवश्यकता पड़ती है।
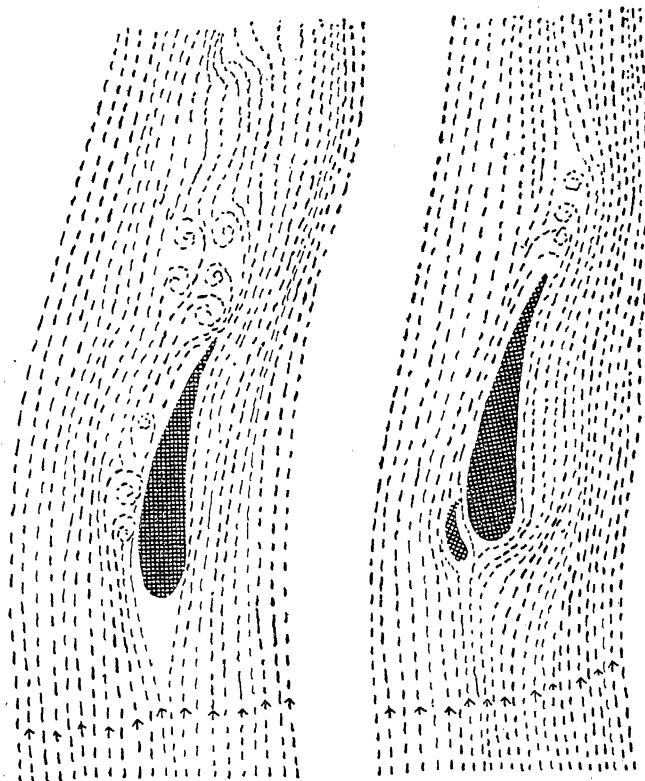
चित्र ३९—अधिक आक्रमण कोण पर एक पंखकाट के वायुप्रवाह पर खाँचे का प्रभाव।

खाँचेदार पक्ष के कारण जो अतिरिक्त उद्भार-बल प्राप्त होता है उससे विमान हलकी चाल से उतर सकता है। यह सोचा गया था कि यदि खाँचे स्थायी रूप से खुले रहें तो अधिक चाल पर अतिरिक्ति वातरोध कम चाल पर प्राप्त उद्भार बल की अपेक्षा अधिक असुविधाजनक होगा। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए पहले खाँचे अधिकतर नियंत्रित होते थे अर्थात् विमान

के चालकगृह में रखे एक नियंत्रक यन्त्र की सहायता से खाँचे की गति को आगे-पीछे किया जा सकता था। इस प्रकार अधिक चाल की उड़ानों पर इस खाँचे को बन्द कर दिया जाता था और कम चाल की उड़ानों पर इसे खोल दिया जाता था। इसके पश्चात् अपने आप काम करनेवाले खाँचों का आविष्कार हुआ। इनमें 'अतिरिक्त पंखकाट' में गति, वायुदाब के कारण होती है। अर्थात् इनमें पंखकाट के अगले सिरे के समीप आगे और पीछे की ओर होनेवाली चूषण क्रिया का हाथ रहता है।

आजकल कुछ देशों में पुनः स्थायी खाँचों को अपनाने की प्रवृत्ति पायी जाती है। यदि इन्हें पंखकाट के अग्र भाग के पीछे सावधानी से छिपा दिया जाय तो विमान की अधिक चाल पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। आज के विमानों पर इनका प्रयोग अवतारण चाल को हलकी करने के उद्देश्य से न होकर विमान में नियन्त्रण तथा स्थायित्व स्थापित करने के लिए किया जाता है।

खाँचों की भाँति पल्लों की भी अपनी एक कहानी है। साधारण उत्तल पल्ले ठीक उसी सिद्धान्त पर कार्य करते हैं जिस पर विमान के पंखकाट कार्य करते हैं। इनका प्रयोग प्रथम युद्ध में विशेष तौर पर किया गया था। विमान में इस प्रकार के पल्ले को नीचे करने से उसकी उतरने की चाल में कमी पड़ती है और ऊपर की ओर करने पर विमान अधिकतम चाल पर उड़ान कर सकता है। प्रथम विश्वयुद्ध के कुछ वर्ष बाद जब खाँचों का आविष्कार हुआ तो ऐसा प्रतीत होता था कि इनका प्रयोग समाप्त हो जायगा। इसके विपरीत आज इनका खाँचों की अपेक्षा अधिक प्रचलन है, क्योंकि पल्ले भी खाँचों के समान उद्भार बल की मात्रा को बढ़ा सकते हैं। इनसे वातरोध बल को कम चाल पर भी इच्छानुसार बढ़ाया जा सकता है जब कि यह गुण खाँचों में नहीं होता। इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न प्रकार के पल्लों का भिन्न-भिन्न कोणों पर प्रयोग करने से विमानचालक अपनी इच्छानुसार उद्भार अथवा वातरोध या दोनों बलों की मात्रा को बढ़ा सकता है। खाँचे और पल्ले दोनों अवपात कोण में वृद्धि कर सकते हैं, परन्तु पल्लों से ऐसा करते समय पंखकाट के मुख्य भाग के कोण में कोई वृद्धि नहीं होती।

इस प्रकार पल्लेवाला विमान धीरे-धीरे उड़ान कर सकता है और धीरे-धीरे उतर सकता है, जब कि खाँचेदार विमान को अपने खाँचों से पूर्ण लाभ उठाने के लिए, उड़ान करने या उतरने के लिए भी अपनी नासा को वायु में ऊपर की ओर रखना पड़ता है। प्रयोग में जो भी पल्ले लाये जाते हैं वे निम्नलिखित होते हैं—

१—उत्तल पल्लों को ५०° पर झुकाने से उद्भार बल और वातरोध बल दोनों में वृद्धि होती है। ५०° से ९०° तक उद्भार बल स्थिर रहता है तथा वातरोध बल में तीव्रता से वृद्धि होती है।

२—खाँचेदार पल्लों[1] में भी लगभग इसी प्रकार के लक्षण होते हैं, परन्तु इनमें आगे की ओर ख़ाँचे की व्यवस्था होने के कारण उद्भार बल में अधिक वृद्धि होती है।

३—चिरे पल्ले उत्तल पल्ले से मिलते-जुलते हैं, किन्तु इनसे उद्भार और वातरोध बल अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में प्राप्त किया जाता है।

४—उद्भार-पल्लों[2] का मुख्य उद्देश्य उद्भार बल की मात्रा को बढ़ाना होता है।

५—रोध-पल्लों का अपना एक विशेष वर्ग है। पंखकाट के साथ इनका जोड़ना आवश्यक नहीं है। विभिन्न प्रकार के विमानों पर विभिन्न उद्देश्यों से इनका प्रयोग किया जाता है। यह अधिक दक्ष विमानों में उद्भार बल के रोध तथा वातरोध की वृद्धि के लिए, सामान्य चाल के विमानों में उनके मोड़ने, सुचालन से पूर्व तथा उतार चाल की जाँच के लिए, द्रुतगामी विमानों में एक निश्चित क्रातिक मेश संख्या की चाल पर उड़ान करने से उन्हें रोकने के काम में आते हैं। इनमें एक चपटी प्लेट होती है जिसे पक्षों के ऊपर-नीचे, अगल-बगल दोनों तरफ रखा जाता है। यह वायु-प्रवाह के समकोण घुमाये जा सकते हैं।

८. आदर्श पंखकाट

ऊपर वर्णन किये गये तथ्यों के आधार पर आदर्श पंखकाट में ये बातें होनी चाहिए—

1. Slot flaps 2. Lift flaps

(क) उच्चतम अधिकांश उद्भार गुणांक, जिससे ज़मीन पर उतरने के लिए विमान की चाल इतनी कम हो जाय कि विमान सुरक्षित रहे। विमान का उद्भार गुणांक जितना अधिक होगा जमीन पर उतरने की चाल उतनी ही कम होगी और विमान उतना ही अधिक सुरक्षित रहेगा।

(ख) निम्न न्यूनतम वातरोध गुणांक—जहाँ तक विमान के पक्षों का सम्बन्ध है, ऐसा होने पर विमान में वातरोध की मात्रा कम होगी जिसके कारण वह अधिक चाल पर उड़ान कर सकेगा। यह गुणांक न केवल एक विशेष आक्रमण कोण पर बल्कि कोणों के एक विस्तृत परास पर कम होना चाहिए।

(ग) उद्भार-वातरोध अनुपात का अच्छा होना—इसका सामान्य उड़ान के आक्रमण कोणों तथा चाल से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब इस अनुपात की मात्रा अधिक होती है तो विमान में दक्षता आती है, जैसे उसमें अधिक भार उठाने की सामर्थ्य, अधिक दूरी को तय करने में ईंधन का कम खर्च होना।

(घ) विमान के स्थायित्व को बढ़ाने के लिए इसमें पंखकाट के दाब-केन्द्र की गति को एक निश्चित परास में सीमित रखना। सामान्य उड़ानों के लिए ज्या के ०°२८ से ०°५२ के बीच पंखकाट का दाब-केन्द्र क्रियाशील रहता है।

(ङ) विमान में अच्छी पट्टियों[1] के प्रयोग के लिए पंखकाट में पर्याप्त गहराई का होना—पंखकाट के भीतर पट्टियाँ लगी होती हैं जिनसे इस के ढाँचे को शक्ति मिलती है। जितनी अधिक गहराई इन पट्टियों में होगी एक निश्चित शक्ति के लिए इनका भार भी उतना ही कम होगा। अतः ऐसे पंखकाट आदर्श होते हैं जिनमें अधिक गहराई होती है।

यथार्थ में व्यवहार में आनेवाला कोई भी पंखकाट इन सब आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता। किसी भी पंखकाट में एक गुण को लाने के प्रयास में हमें उसके दूसरे गुणों से हाथ धोना पड़ता है। अतः हम मध्य मार्ग अपनाने पर बाध्य होते हैं। हमें कोई विमान ऐसा नहीं मिल सकता जो इन सब भिन्न-भिन्न गुणों को पूरा कर सके। अच्छे परिणाम प्राप्त करने के प्रयास में पंखकाट के ऊपरी और निचले उभारों में परिवर्तन किये जाते हैं।

1. Spars

ऊपरी तल में और उभार देने से उद्भार तथा वातरोध बल दोनों बढ़ जाते हैं जिससे चाल कम हो जाती है। अधिक उभार से पट्टियों के लिए पंखकाट अधिक गहरे भी हो जाते हैं। एकपंखी विमानों पर सामान्य प्रयोग के लिए
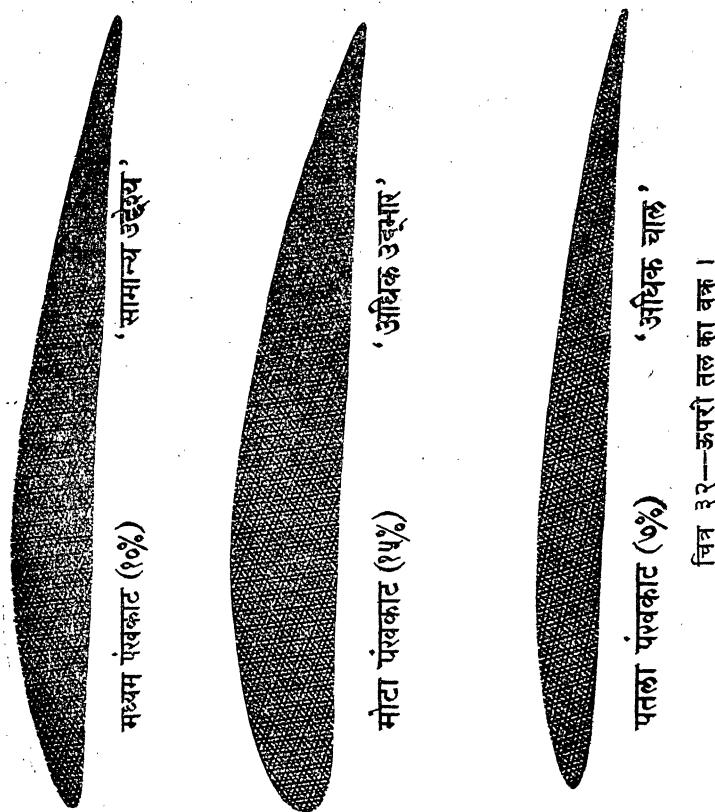
चित्र ३२—ऊपरी तल का वक्र।

ऊपरी सतह का सबसे अच्छा उत्तल-तल ज्या का लगभग ११ प्रतिशत होता है, परन्तु केवल भार लादने के लिए बने विमानों में यह अधिक होता है। इसकी मात्रा अधिक चाल पर ज्या के ७ या ८ प्रतिशत से कम होनी चाहिए।

सामान्य चाल के सभी विमानों के लिए पंखकाट में अधिकतम उभार का स्थान अगले सिरे के पीछे की ओर से ज्या के एक तिहाई की दूरी पर होना चाहिए।

अच्छा उद्भार बल प्राप्त करने के लिए पंखकाट के नीचे के तल को अवतल बनाना अच्छा रहता है। इसके विपरीत उत्तलता के कारण दाब-केन्द्र की गति सीमित रहती है तथा पट्टियों के लिए अधिक गहराई की व्यवस्था भी रहती है।

अब तक जिन पंखकाटों का वर्णन किया गया है, वे सामान्य रूप से २०० से ३०० मील प्रति घण्टे की उड़ानवाले विमानों के लिए उपयुक्त होते हैं। ध्वनि के वेग से चलनेवाले विमानों ने पंखकाटों के निर्माण में नयी समस्याएँ उत्पन्न कर दी हैं। एक बात तो स्पष्ट है कि प्रत्येक विमान को इस २००-३०० मील प्रति घण्टे की चालवाले क्षेत्र से गुजरना पड़ता है। ध्वनि के वेग से चलनेवाले विमानों की चाल के परास का आरम्भ ५०० मील प्रति घण्टे से होता है। ३०० से ५०० मील प्रति घण्टे की गति से उड़ान करनेवाले विमान की भी अपनी समस्याएँ हैं। इस क्षेत्र में 'पटलीय प्रवाह पंखकाटों' का प्रयोग किया जाता है।

इनका आविष्कार सीमान्त-स्तर के क्षेत्र में अनुसन्धान-कार्य के फलस्वरूप हुआ था। इनकी बनावट इस प्रकार होती है कि यह अधिक से अधिक तल पर पटलीय प्रवाह बनाये रखें। प्रयोग द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि संक्रमण बिन्दु सतह के उस स्थान पर पाया जाता है जहाँ वायु-प्रवाह मन्द पड़ने लगता है। दूसरे शब्दों में यह स्थान अधिकतम 'चूषण क्रिया' के बिन्दु पर या उसके समीप होता है। जब तक पंखकाट की सतह पर वायु-प्रवाह का वेग बढ़ता रहता है, सीमान्त-स्तर में प्रवाह पटलीय रहता है, अतः आवश्यक है कि वेग की इस वृद्धि को अधिकतम सतह पर रहने दिया जाय। इन परिणामों के आधार पर जो पंखकाट बनाया गया है वह पतला होता है, उसका अगला सिरा सामान्य पंखकाट के अगले सिरे की अपेक्षा अधिक नोकीला होता है और उसकी काट अधिक संमितिक होती है। इसकी सबसे मुख्य बात यह होती है कि इसमें अधिक-

तम उत्तलता का बिन्दु सामान्य स्थान से बहुत अधिक पीछे होता है। इन पंखकाटों में दाब-वितरण अधिक सम होता है। अगले सिरे से अधिकतम उत्तलता के बिन्दु तक वायु-प्रवाह के वेग में धीरे-धीरे वृद्धि होती है। इस प्रकार के कुछ ऐसे पंखकाट बनाने में सफलता प्राप्त हो चुकी है जिनमें कोणों के विस्तृत परास में कम वातरोध को बनाये रखा जा सकता है। किन्तु इनके प्रयोग में कुछ असुविधाएँ भी होती हैं जो निम्नलिखित हैं—

(क) इनकी अवपात-चाल अधिक होती है क्योंकि सामान्य पंखकाट की अपेक्षा इनमें उद्भार गुणांक कम होता है।

(ख) पक्षों का पतला होना आदर्श पंखकाट के गुणों के विपरीत है।

(ग) इस प्रकार के पक्ष में सुग्राह्यता बहुत अधिक होती है। पंखकाट की सतह पर, वर्षा की थोड़ी बूँदों या थोड़ी-सी भी धूल (विशेषतः अगले सिरे के समीप) आ जाने से इनके संक्रमण बिन्दु की गति उस स्थान तक हो सकती है जहाँ पर पहुँचने के पश्चात् सीमान्त-स्तर के वायु-प्रवाह में प्रक्षोभ पैदा होने की संभावना रहती है। इस प्रक्रिया के कारण इनमें तलीय घर्षण वातरोध की मात्रा सामान्य पंखकाट की अपेक्षा अधिक हो जाती है। इस कमी को दूर करने के लिए उड़ान आरम्भ करते समय कुछ देर के लिए पक्ष को आवरण पहना देने के सुझाव पेश किये गये हैं। सीमान्त-स्तर पर नियन्त्रण रखने के लिए पिछले सिरे के समीप 'चूषण क्रिया के उद्गम' की व्यवस्था का भी सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। इसके कारण अधिक मोटाई के पंख-काट का प्रयोग हो सकता है। इसमें आवश्यक 'चूषण उद्गम' को प्राप्त करने के लिए जितनी शक्ति तथा भार चाहिए उसको प्राप्त करने में कुछ प्रायोगिक कठिनाइयाँ आती हैं। इसी क्षेत्र में एक और उपाय अपनाया गया है। यह सरल है। पंखकाट के पिछले सिरे से वायु को पीछे की ओर फेंकने पर हम इसके सीमान्त-स्तर को नियन्त्रण में रख सकते हैं।

अब तक हमने पंखकाटों को उनके काट के दृष्टिकोण से देखा था। उनके समतल रूप में परिवर्तन करने पर क्या अन्तर आता है? मान लीजिए कि एक पक्ष का तलक्षेत्र १०० वर्गफुट है (यह २०फुट पाट, ५ फुट ज्या अथवा २५

फुट ज्या और ४ फुट पाट का भी हो सकता है) प्रत्येक अवस्था में काट बराबर मान ली जाय तो इनमें उद्भार और वातरोध की मात्रा बराबर होनी चाहिए, क्योंकि अब तक के परिणामों के अनुसार ये दोनों बल पक्ष के समतल क्षेत्र के समानुपात होते हैं। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता। बड़े पाट के पक्षों को इसमें उद्भार और उद्भार-वातरोध अनुपात, दोनों के दृष्टिकोण से लाभ रहता है।

पाट-ज्या अनुपात को 'दर्शानुपात' कहते हैं और ऊपर वर्णन किये गये पक्षों का दर्शानुपात क्रम से ४, ६·२५ है। अधिक दर्शानुपात से अधिक अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं।

प्रयोग द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि वायु-प्रवाह में पक्ष की ऊपरी सतह पर से वायु में पक्ष के अन्दर की ओर प्रवाह करने की प्रवृत्ति होती है। क्योंकि ऊपरी सतह पर पक्षकोर की अपेक्षा दाब कम होता है। इसी प्रकार नीचेके तल पर, दाब अधिक होने के कारण, वायु बाहर की ओर प्रवाह करना चाहती है। अतः पक्षकोर के चारों ओर निचले तल से ऊपरी तल तक वायु का फैलाव होता रहता है। अधिक दर्शानुपात को अच्छा मानने का कारण वायु का यही फैलाव है। इस प्रकार फैली हुई वायु उद्भार बल उत्पन्न करने में असमर्थ होती है। इसे 'कोर-प्रभाव' कहते हैं। और जितना अधिक दर्शानुपात होगा उतनी ही कम मात्रा में इस प्रकार का फैलाव होगा।

उद्भार बल की उत्पत्ति का कारण पंखकाट के अतिरिक्त वायु का आन्तरिक घर्षण और श्यानता भी है। वायु अनेक अणुओं का समूह है और इसके आन्तरिक घर्षण का गुण भी इन्हीं के कारण है। चित्र संख्या ३३ में पंखकाट पर इसके प्रवाह की प्रतिक्रिया दिखायी गयी है। उड़ान आरम्भ करते समय यह वायु में धीरे-धीरे गति करना आरम्भ करता है। इस प्रवाह में दो ऐसे क्षेत्र पैदा हो जाते हैं जहाँ वायु पिण्ड की अपेक्षा स्थिर अवस्था में आ जाती है। ऐसा एक स्थान विमान की नासा पर ($क_1$) तथा दूसरा पिछले सिरे के समीप ऊपरी सतह पर ($क_2$) होता है। वायु की अघूर्णन गति अधिक समय तक नहीं रह सकती क्योंकि पिछले सिरे पर प्रवाह वायुदाब-प्रवणता के विरुद्ध कार्य करता

है। बर्नोली-सिद्धान्त के अनुसार 'वृद्धिरोध' बिन्दु पर वायु-प्रवाह के पहुँचने पर उसके दाब में वृद्धि होती है और श्यानता के कारण कुछ वातरोध बल भी प्राप्त होता है। इसके फलस्वरूप वायु ($क_2$) तक नहीं पहुँच पाती, पीछे की ओर मुड़ती है। ऊपरी और निचली सतह के दोनों वायुप्रवाहों के पिछले सिरे पर मिलने से परस्पर एक कोण बनता हैं जिससे यह प्रवाह पिछले सिरे के साथ-

चित्र ३३—**पंखकाट के चारों ओर संचार का आरम्भ।**
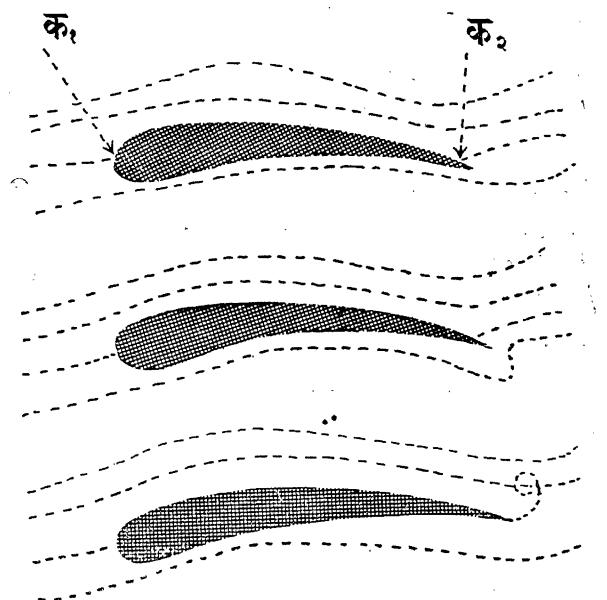
साथ अत्यावर्त में बदल जाता है जो बाँयें पक्ष के दक्षिणावर्त और दाहिने पक्ष के वामावर्त घूमते हैं। इस प्रकार एक तरफ के तमाम भँवर आपस में मिलकर एक बृहत् भँवर का रूप धारण कर लेते हैं जिसे 'पक्षकोर भँवर' कहते हैं।

वायु-प्रवाह के आर-पार होने के कारण ये भँवर पंखकाट से दूर फेंक दिये जाते हैं, इससे जो गति प्राप्त होती है उसके प्रतिक्रियारूप पंखकाट के चारों ओर

एक विपरीत प्रकार का संचार पैदा हो जाता है। उद्भार बल की उत्पत्ति इसी संचार के कारण होती है। जब-जब आक्रमण कोण बदलता है, इस प्रकार के अत्यावर्त बनते हैं और इसके अनुरूप संचार का मूल्य बढ़ता है। यह काल्पनिक धारणा नहीं है, इसका अपना अस्तित्व है। इसके चित्र उतारे जा सकते हैं। यदि इस गति में धुएँ का प्रवेश करायें तो विमान की उड़ान के साथ-साथ यह प्रतिक्रिया होती दिखाई देगी, परन्तु चालक को यह प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं पड़ती। इन भँवरों के केन्द्र में दाब कम होने के कारण वायु इस केन्द्र की ओर खिंच जाती है, वायु का फैलाव होता है और फिर यह एकदम ठंडी हो जाती है जिससे इसके जलवाष्प का संघनन हो जाता है और हमें कुछ सफेद धुंध-सा दिखाई देने लगता है। पक्ष के कोरों से उत्पन्न ये धुंध की रेखाएँ अधिक ऊँचाई पर विमान की निकासगैसों में संघनन प्रतिक्रिया के फलस्वरूप वायुमण्डल में जो वाष्प-रेखाएँ दिखाई देती हैं उनसे भिन्न होती हैं।

९. प्रेरित वातरोध

भँवरों की गति पर विचार करने से पता चलता है कि पक्ष के पाट[1] के बाहर वायु का प्रवाह ऊपर की ओर, और पक्ष के पिछले सिरे के पीछे यह नीचे की ओर होता है। यह अनुधावन से भिन्न प्रक्रिया है। अनुधावन प्रक्रिया के साथ ही पक्ष के सामनेवाले भाग में उपधावन की प्रक्रिया का होना आवश्यक है, इससे वायु-प्रवाह की दिशा नहीं बदलती। इसके विपरीत कोर-भँवरों में इसके अनुरूप ऊपर की ओर प्रवाह पक्ष के पाट से भी बाहर होता है और इसके अगले भाग में भी नहीं होता। इस प्रकार पक्ष के ऊपर वायु-प्रवाह की विपरीत दिशा कुछ नीचे की ओर हो जाती है। हम कह सकते हैं कि इस अवस्था में पक्ष कुछ कम-आक्रमण कोण पर गति कर रहा होता है। जिससे वायु-प्रवाह के सदा समकोण रहे उद्भार बल का, कुछ पीछे की ओर विक्षेप हो जाता है। गति की दिशा के सम्मुख वातरोध के कारण उद्भार बल में जो विक्षेप आता है यह उससे कुछ मिलता जुलता है। इस विक्षेप गति को अपनी पूर्व अवस्था

1. Span

में लाने के लिए जिस ऊर्जा की आवश्यकता होती है वह 'प्रेरित-वातरोध' होती है। (चित्र संख्या ३४) यह उद्भार-बल का एक अंश है। अतः इसे उससे
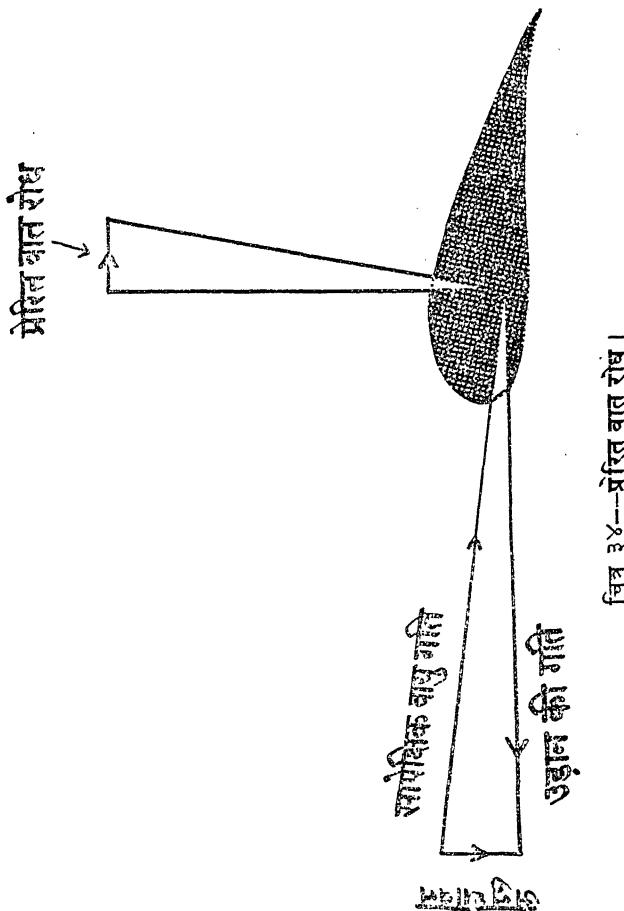
चित्र ३४—प्रेरित वात रोध।

पृथक् नहीं किया जा सकता, इसे केवल कम किया जा सकता है। दर्शानुपात जितना अधिक होगा, कोर-भँवर उतने ही कम होंगे और उसके अनुरूप ही

प्रेरित वातरोध की मात्रा कम होगी। विमान की बनावट के दृष्टिकोण से दर्शानुपात को घटाने बढ़ाने की एक निश्चित सीमा है। जितना बड़ा पाट होगा पक्ष उतने ही मजबूत और भारी होंगे। इससे विमान के कुल भार में अन्तर पड़ेगा। इस भार के कारण और भी असुविधाएँ हो सकती हैं, अतः इसमें भी मध्य मार्ग को अपनाया जाता है। व्यावहारिक रूप से सामान्य विमानों के लिए साधारणतः दर्शानुपात ६:१ से १०:१ के बीच में होता है।

तकनीकी दृष्टिकोण से इसका इतना अधिक महत्त्व है कि इसे अन्य प्रकार के वातरोध से भिन्न समझना आवश्यक है। सामान्य रूप से पक्ष में जो वात-रोध, पंखकाट के ठोस पिण्ड होने के कारण, उत्पन्न होता है, अपूर्ण धारारैखिक होता है और जब यह वायु में गति करता है तो श्यानता के प्रभाव से मुक्त नहीं रहता। इसे 'पार्श्व-पृष्ठ-वातरोध' कहते हैं। ये दोनों प्रकार के वातरोध विमान की चाल के साथ भिन्न-भिन्न रीतियों से बदलते रहते हैं। एक निश्चित आकार के पक्ष में सामान्य उड़ान के दौरान, पार्श्व-पृष्ठ-वातरोध वेग के वर्ग के समानुपात बढ़ता है, परन्तु प्रेरित वातरोध उन्हीं अवस्थाओं में वेग के वर्ग के समानुपात कम होता है।

इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं—

(क) दर्शानुपात अधिक होने पर प्रेरित वातरोध भी कम होता है।

(ख) इन दोनों में अनुपात प्रतिलोम होता है। दर्शानुपात को दूर करने पर प्रेरित-वातरोध रह जाता है।

यहाँ $\frac{\text{उद्भार}}{\text{पाट}}$ अनुपात को पाट-दाब कहते हैं। चूँकि प्रेरित वातरोध वेग के वर्ग के प्रतिलोम और पार्श्व पृष्ठ-वातरोध वेग के वर्ग के समानुपात होता है, इसलिए किसी भी विमान में कुल वातरोध की मात्रा विमान के बहुत ही कम वेग पर भी कम से कम हो सकती है। आजकल के विमान अपने समर्थ इंजनों की सहायता से, इसके होते भी बहुत ही अधिक वेग से चलाये जा सकते हैं।

विमानों के पक्षों को बनाते समय प्रेरित वातरोध को सीमित रखने के लिए विभिन्न अभिकल्पों (प्रोजेक्ट) का प्रयोग किया जाता है। किसी भी

पंखकाट पर की उद्भार मात्रा और पाट का विसरण किस प्रकार किया जाय जिससे प्रेरित वातरोध कम-से-कम हो, पंखकाट के निर्माण में यह एक बहुत बड़ी समस्या समझी जाती है।

१०. गावदुम पंख

इसको हल करने में पक्ष के समतल क्षेत्र को केन्द्र से कोर तक तथा इसके गहरे भाग को गावदुम आकार देने से बहुत सहायता मिलती है। पंखकोर की ओर आक्रमण कोण को कम करना भी अच्छा होता है।

वायुगतिकी तथा संरचना के दृष्टिकोण से गावदुम पंख के अपने अनेक फ़ायदे हैं। यही कारण है कि आज के विमानों में इनका अधिकाधिक प्रयोग होता है। पक्षियों के पंख भी अक्सर गावदुम होते हैं।

सामान्य शब्दों में गावदुम का अर्थ होता है पंखकाट के अगले सिरे या पिछले सिरे या दोनों को कुछ पीछे की ओर मोड़ना। कभी-कभी तमाम पंख को कुछ पीछे की ओर मोड़ देते हैं। परन्तु ऐसा विमान को स्थायी अथवा उसे द्रुतगामी बनाने के लिए किया जाता है। कभी-कभी पंखकाट एक-दूसरे के ऊपर रखकर भी प्रयोग में लाये जाते हैं। दुपंखी विमानों में ऐसी ही व्यवस्था रहती है। इसमें, जैसा कि चित्र संख्या ३५ से स्पष्ट है, ऊपरवाले पंखकाट के निचले भाग का अधिक दाबवाला क्षेत्र, नीचे के पंखकाट के ऊपरी भाग के कम दाबवाले क्षेत्र के समीप होता है। इस प्रकार ये दोनों क्षेत्र एक-दूसरे के दाब के अन्तर को खत्म-सा कर देते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त पंखकाट के ऊपरी तल पर वायु के कम दाबवाला क्षेत्र ज्यों का त्यों रहता है, जब कि उसके निचले भाग (अधिक दाबवाले क्षेत्र) में नीचे के पंखकाट के कारण कुछ तबदीली आती है। इसके विपरीत निचले पंखकाट के ऊपरी भाग के कम दाबवाले क्षेत्र में, ऊपरी पंखकाट के कारण तबदीली आती है, जब कि उसके निचले भाग का अधिक दाबवाला क्षेत्र उसी प्रकार रहता है। इस प्रकार दोनों पंखकाटों में उद्भार बल का कुछ मात्रा में ह्रास होता है क्योंकि ऊपरी तल में ही उद्भार बल सर्वदा अधिक अंश में उत्पन्न होता है। इसे 'दो-पंखी प्रभाव' कहते हैं।
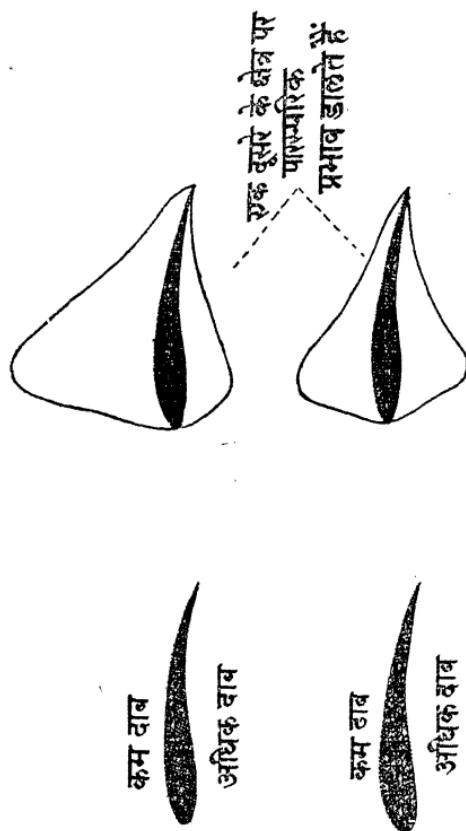
चित्र ३५—द्विपंखी प्रभाव।
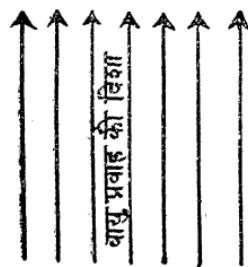
दुपंखी विमान बनानेवालों ने इस प्रभाव को कम करने के लिए दोनों पंखकाटों के बीच के अन्तर को बढ़ाकर प्रयोग द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि यदि इस अन्तर को ज्या से चार गुना कर दिया जाय तो यह प्रभाव लगभग शून्य हो जाता है। परन्तु ऐसा करने से हमें विमान में तारों इत्यादि की जो व्यवस्था करनी पड़ती है उससे वातप्रतिरोध की मात्रा बढ़ जाती है। इसलिए एक और व्यवस्था पर प्रयोग किया जाता रहा है।

इस व्यवस्था के अन्तर्गत एक पंखकाट को दूसरे पंखकाट से कुछ आगे रखा जाता है। इस व्यवस्था को 'स्टैगर' कहते हैं। यदि ऊपरवाला पंखकाट आगे हो तो इस व्यवस्था को 'प्रत्यग्र स्टैगर' और यदि पीछे हो तो 'पश्च स्टैगर' कहते हैं। पहली व्यवस्था अपेक्षाकृत अधिक लाभप्रद होती है। किन्तु इसकी भी अपनी समस्याएँ हैं। संक्षेप में इस प्रकार की व्यवस्थाओं के कारण दुपंखी विमानों को कुछ अंशों में एकपंखी विमान की क्षमता देना है।

नवाँ अध्याय

पंखे

विमान के उड़ान करते समय उसका रुख उसके उद्भार बल (लिफ्ट) और भार, नोद तथा वातरोध के परस्पर सम्बन्ध पर निर्भर है। विमान का उद्भार बल और भार एक दूसरे के विपरीत कार्य करते हैं, यह हम जानते ही हैं। ठीक यही दशा नोद और वातरोध की है। वातरोध के भिन्न-भिन्न रूपों का वर्णन पहले हम कर चुके हैं। यह बल विमान की उड़ान के विरुद्ध कार्य करता है। यहाँ हम इसके विपरीत कार्य करनेवाले बल नोद का वर्णन कर रहे हैं। समतल उड़ान में वातरोध बल और नोद की मात्रा बराबर होती है। विमान की गति में अधिक वेग उत्पन्न करने के लिए और वायुमण्डल में ऊपर की ओर बढ़ने के लिए नोद का वातरोध से अधिक होना आवश्यक है। विमान की कार्य-क्षमता इस बात पर निर्भर है कि इसे नोद किस मात्रा में प्राप्त होता है।

नोद एक चल राशि है। यह इंजन-शक्ति और गुरुत्व या केवल गुरुत्व या केवल इंजन-शक्ति से ही प्राप्त की जा सकती है। नोद प्राप्त करने का कोई भी साधन अपनाया जाय, लेकिन इस प्रकार के प्रत्येक साधन को ऊर्जा अवश्य मिलनी चाहिए। यह ईंधन के रूप में दी जाती है। इंजन की सहायता से इस ईंधन को जलाकर इसकी रासायनिक ऊर्जा को ऊष्मा-ऊर्जा में बदल लिया जाता है। यही ऊष्मा-ऊर्जा बाद में वातरोध के प्रति विमान के चालन में किये गये यांत्रिक कार्य में बदल जाती है। विमान के लिए नोद प्राप्त करने के लिए वायु या अन्य गैस में संवेग की आवश्यक मात्रा उत्पन्न करनी पड़ती है। नोद की मात्रा प्रायः वायु को दिये गये संवेग की मात्रा के बराबर होती है। यदि (द्र) स्लग को वायु के उस भाग का द्रव्यमान मान लें जिसे चालन-व्यवस्था से (वे) प्रति सेकण्ड का अतिरिक्त वेग दिया गया है, तो वायु को

प्राप्त संवेग की मात्रा इन दोनों के गुणनफल के बराबर होगी। किसी भी पदार्थ में द्रव्यमान (द्र) और अतिरिक्त वेग (वे) में से एक को बढ़ाकर और दूसरे को उसके अनुसार कम करने पर भी संवेग की मात्रा यही रह सकती है, क्योंकि संवेग द्रव्यमान और वेग के अनुपात के बराबर होता है। हम वायु को संवेग देने के लिए उसे ऊर्जा भी देते हैं, लेकिन इसका अधिकांश इसके पास की वायु में फैलकर नष्ट हो जाता है। (द्र) स्लग द्रव्यमान के पिण्ड में वेग (वे) प्रति सेकण्ड पर गतिज ऊर्जा ($\frac{१}{२}$ द्र. वे^{२}) फुट पौंड होगी।

कार्य करने की क्षमता को यांत्रिकी की परिभाषा के अनुसार 'ऊर्जा' कहते हैं। यही कारण है कि ऊर्जा और कार्य का एक ही मान है। ऊर्जा भिन्न-भिन्न रूपों में पायी जाती है, जैसे ऊष्मा, प्रकाश, ध्वनि, रासायनिक, चुम्बकीय और यांत्रिकी। यांत्रिकी ऊर्जा का हमसे अधिक सम्बन्ध है। इसके दो भेद हैं; स्थितिज और गतिज।

स्थितिज ऊर्जा वह ऊर्जा है जो अपनी स्थिति के कारण किसी पदार्थ में पायी जाती है। अपनी वर्तमान स्थिति से किसी दूसरी प्रमाणभूत स्थिति तक आने में किया गया कार्य, इसकी मात्रा को बतलाता है। धरातल को पदार्थों के लिए शून्य-स्थिति माना गया है। धरातल से कुछ ऊपर उठाने पर अपनी बदली हुई स्थिति के कारण, किसी भी पदार्थ की स्थितिज ऊर्जा बढ़ जाती है।

इसी प्रकार अपनी गति के कारण पदार्थों में जो ऊर्जा उत्पन्न होती है उसे 'गतिज ऊर्जा' कहते हैं। स्थिर स्थिति में आने से पहले, पदार्थ पर लगे बाह्य बल के विपरीत जो कार्य किया जाता है उससे इस ऊर्जा की मात्रा का पता लगता है। पदार्थ में गतिज ऊर्जा किसी भी समय पदार्थ के द्रव्यमान और उसके वेग के वर्ग के गुणनफल के आधे के बराबर होती है।

एक स्लग द्रव्यमान के पिण्ड में १० फुट प्रति सेकण्ड वेग पर और १० स्लग द्रव्यमान के पिण्ड में १ फुट प्रति सेकण्ड वेग पर, संवेग की मात्रा बराबर होगी, परन्तु गतिज ऊर्जा भिन्न होगी। पहली अवस्था में इसकी मात्रा $\frac{१}{२}\times १\times १०^{२}=५०$ फुट पौंड तथा दूसरी अवस्था में $\frac{१}{२}\times १०\times १^{२}=५$ फुट पौंड होगी। स्पष्ट है कि दूसरी अवस्था में कम ऊर्जा नष्ट होगी तथा कार्य

भी कम करना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में यह पहली अवस्था की अपेक्षा, नोद उत्पन्न करने का अच्छा साधन होगा। इसके आधार पर विमान में नोद प्राप्त करने के साधनों में से विमान के पंखों का पहला (क्योंकि दूसरे साधनों की अपेक्षा यह कम वेग पर वायु को पीछे की ओर फेंकता है), जेट इंजन का दूसरा तथा राकेट चालन का तीसरा स्थान है।

जब एक विमान वायु में (वे) × फुट प्रति सेकण्ड से चल रहा होता है तो चालनव्यवस्था को इस वेग में, वायु को अतिरिक्त संवेग देने तथा इस प्रकार नोद बल प्राप्त करने के लिए ($वे_1$) फुट प्रति सेकण्ड की वृद्धि करनी पड़ती है। यह $\frac{वे}{वे_1}$ अनुपात जितना कम होगा, पीछे की ओर प्रवाह के वेग और विमान के वेग में उतना ही कम अन्तर होगा और इसकी दक्षता उतनी ही अधिक होगी। इस पद्धति की सफलता तो इस बात पर निर्भर है कि पीछे की ओर वायु-प्रवाह विमान के वेग से अधिक हो। स्पष्ट है कि विमान के वेग का इससे घनिष्ठ सम्बन्ध है। उड़ान दौड़ के समय और कम वेग पर यदि विमान उड़ान करें तो जेट पद्धति को अधिक उपयुक्त नहीं समझा जाता, परन्तु विमान के वेग के बढ़ने के साथ-साथ इस पद्धति की दक्षता भी बढ़ती है। राकेट चालन, इससे भी अधिक चाल पर दक्ष होता है। जेट व्यवस्था ३०० मील प्रति घंटे पर और पंखों की व्यवस्था ६०० मील प्रति घण्टे की चाल पर उपयुक्त नहीं है। इसके अतिरिक्त आदर्श चालन व्यवस्था में पीछे की ओर वायुप्रवाह घूर्णनरहित सरल रेखा में होना चाहिए। इस लक्षण के आधार पर राकेट चालन को पहला स्थान, जेट को दूसरा स्थान तथा पंखे से चालन को तीसरा स्थान मिलता है। जेट चालन से प्राप्त नोद, विमान की चाल से लगभग स्वतन्त्र होता है, जब कि पंखे से उत्पन्न नोद में विमान की एक निश्चित चाल से कम या अधिक होने पर तीव्रता से कमी आती है। नोद के कारण ही विमान की उड़ान सम्भव है और इसे प्राप्त करने के लिए कभी- कभी अधिक मूल्य भी देना पड़ता है।

नोद प्राप्त करने के अनेक साधनों में पंखों अर्थात् वायुपेंच का आज भी बहुत महत्त्व है। यह आकृति में बहुत कुछ बिजली के पंखे के समान होता है,

परन्तु विजली का पंखा पीछे से वायु को खींचकर आगे की ओर फेंकता है, जब कि यह वायु को आगे से खींचकर पीछे की ओर फेंकता है। इस प्रतिक्रिया से बिजली का पंखा जहाँ पीछे की ओर हटने की चेष्टा करता है, वायुपेंच आगे की ओर ठेला जाता है। इस प्रकार वह अपने साथ विमान को भी खींचता है। वायु-पेंच का नोद वह बल है जिसके कारण वह हवा को पीछे की ओर फेंकता है और विमान को आगे की ओर ठेलता है। वायुपेंच वह साधन है जिससे इंजन की शक्ति से प्राप्त घुमाव (विमोटन प्रभाव)[1] को स्थानान्तरीय वेग में बदल दिया जाता है। इस प्रकार वायुपेंच के उदग्र तल में घूमने से, विमान हवा को चीरता हुआ आगे बढ़ता है। कहा जा सकता है कि वायुपेंच हवा में पेंच कसता हुआ, उस विमान को हवा में से खींचता या ढकेलता है जिसमें वह लगा होता है। जब वायुपेंच विमान के मुख्य भाग के सामने होता है तब वह वायुपेंच-धुरा-दण्ड पर तनाव डालने के कारण, विमान को आगे की ओर खींचता है। इस दशा में वायुपेंच को कर्षक वायुपेंच कहते हैं। जब वायुपेंच विमान के मुख्य भाग के पीछे होता है तो यह विमान को आगे की ओर ठेलता है। इस दशा में वायुपेंच को 'ठेलनेवाला वायुपेंच' अथवा 'पंखा' कहते हैं।

यद्यपि इस ठेलनेवाले वायुपेंच के लिए पंखा ही उपयुक्त पारिभाषिक शब्द है,परन्तु आजकल प्रत्येक प्रकार के वायुपेंच के लिए इस संज्ञा का प्रयोग होता है।

विमान के इन पंखों की पँखड़ियों की अनुप्रस्थ काट पंख काट के समान होती है। कभी-कभी तो एक ही प्रकार की काट दोनों के लिए प्रयोग की जाती है। पँखड़ी के प्रत्येक भाग की ज्या गति की दिशा के साथ पंखकाट के आक्रमण-कोण के समान एक छोटे कोण पर झुकी होती है। इसी कोण के कारण पंखे से नोद उत्पन्न होता है। पंखे घूमने के साथ आगे की ओर भी बढ़े हुए होते हैं। जिस प्रकार पंखकाट में वायु-प्रवाह के कारण उद्भार बल और वातरोध उत्पन्न होते हैं, ठीक उसी के समान, इस क्रिया से पँखड़ी में भी ऐसे ही बल उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार पंखड़ी से प्राप्त उद्भार बल से पंखे के नोद बल और इससे

1. Torque force or turning effect

प्राप्त वातरोध से विमोटन बल की प्राप्ति होती है। वह बल जो विमान के अक्ष के समानान्तर कार्य करता है 'नोद बल' कहलाता है तथा वह बल जो घूर्णन के समकोण कार्य करता है 'विमोटन बल' कहलाता है। इसकी पँखड़ियों का कुल विमोटन बल, इंजन से उत्पन्न विमोटन के प्रति घुमाव अर्थात् विमोटन उत्पन्न करता है और जिस दिशा में पंखा घूमता है यह बल विमान को इसकी विपरीत दिशा में घुमाने का प्रयत्न करता है। जब पंखे प्रति मिनट एक निश्चित संख्या में घूमते हों तो पंखे और इंजन का विमोटन बल एक दूसरे के विपरीत तथा बराबर होता है।

वायुपेंच पंखकाटों की तरह ही होता है, परन्तु सीधी रेखा में चलने और विमान को सँभालने के बजाय यह सर्पिल पथ में चलता है और नोद उत्पन्न करता है जो विमान के वातरोध का दमन करता है। इन दोनों की प्रतिक्रियाओं की भिन्नता के कारण साधारणतः वायुपेंच की पँखड़ी पंखकाट से भिन्न होती है। इसकी पंखड़ी इस तरह ऐंठी हुई होती है कि पंखे के धुरादण्ड से बनाया हुआ कोण नोक की अपेक्षा आधार पर अधिक हो, परन्तु पंखकाट का कोण करीब-करीब सर्वदा एक ही रहता है। पंख का प्रत्येक भाग भिन्न-भिन्न कोण पर कार्य करता है। वायु-प्रवाह की दिशा और घूर्णन समतल के कोण को 'अग्रसरण कोण' कहते हैं। पँखड़ी के प्रत्येक खण्ड के लिए यह कोण भिन्न होता है। नोक के पासवाले खण्ड के हिस्से आधारवाले हिस्सों की अपेक्षा अधिक वेग से चलते हैं, इसलिए उद्भार बल का अधिकांश भाग नोक के पासवाले हिस्से ही उत्पन्न करते हैं। यही कारण है कि तमाम वायुपेंच की पँखड़ियों पर चूड़ी का कोण जिसे दोलन कोण भी कहते हैं, एक नहीं होता, जिससे कि हर एक चक्कर में वायुपेंच के सब भाग समान दूरी पर चलें। अन्य बातें बराबर होने पर भी बड़ा पंखा तुलना में धीरे चलकर भी तेज चलते हुए छोटे पंखे की अपेक्षा अधिक उद्भार बल उत्पन्न करता है। जब वायुपेंच को अपनी धुरी उदग्र रखकर क्षैतिज तल में सपाट रखा जाता है तो किसी भी दिये हुए पंखड़ी-खण्ड की ज्या द्वारा क्षैतिज तल से बनाया हुआ कोण 'चूड़ी का कोण' या 'पंखड़ी-कोण' कहलाता है। (चित्र संख्या ३६) पंखे के खंड की निचली सतह अकसर सपाट
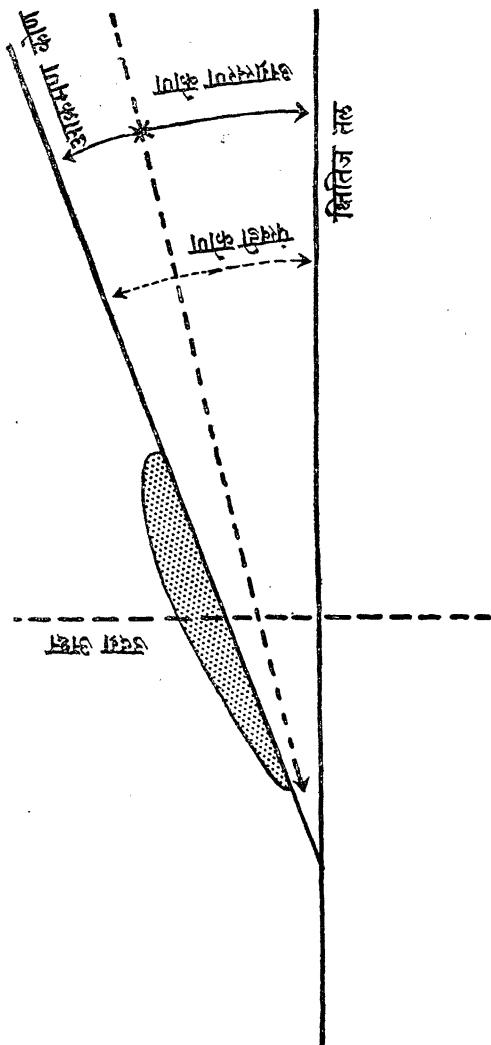
चित्र ३६—पंखड़ी कोण

होती है जिसके फलस्वरूप इसे ज्या के साथ क्षैतिज अवस्था में रखने में सुविधा रहती है। यहाँ यह स्पष्ट है कि पँखड़ी-कोण 'अग्रसरण कोण' तथा 'आक्रमण कोण' के योग से बना है। इस प्रकार पंख की प्रत्येक पँखड़ी का 'चूड़ी कोण', 'अग्रसरण कोण' से अधिक होगा। एक चक्र से जितनी दूरी यह तय करेगा अर्थात् जो अग्रगति होगी वह कोई स्थिर राशि न होगी क्योंकि यह दूरी विमान की चाल पर निर्भर है।

मान लीजिए कि एक विमान १०० फुट प्रति सेकण्ड से उड़ान कर रहा है और इसका पंखा प्रति सेकण्ड २० चक्कर ले रहा है, तो इस प्रकार अग्रगति $\frac{१००}{२०}$=५ फुट प्रति चक्र होगी। यह विमान ६० फुट प्रति सेकण्ड से भी उड़ान कर सकता है और पंखे की गति २० चक्र फुट प्रति सेकण्ड रह सकती है। इस अवस्था में अग्रगति $\frac{६०}{२०}$=३ फुट प्रति चक्र होगी। यही अग्रगति प्रति चक्र, जमीन पर रखे विमान में शून्य भी हो सकती है क्योंकि उस अवस्था में विमान की चाल कुछ न होगी। अतः स्पष्ट है कि अग्रगति प्रति चक्र एक चल राशि है और यह किसी एक विशेष पंखे के लक्षणों को व्यक्त नहीं करती। आजकल के पंखों में परिवर्तित चूड़ी-कोणों का प्रयोग होने के कारण, चूड़ी ने भी परिवर्तित रूप धारण कर लिया है। इसका वर्णन आगे किया गया है। यहाँ पर निश्चित चूड़ीवाले पंखे का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

मान लीजिए कि इस प्रकार के एक पंखे की पँखड़ी के एक खण्ड का त्रिज्या (त्रि) पर पँखड़ीकोण (दोलन कोण) θ° है और यदि अनुलम्ब पँखड़ीखण्ड को अपनी ज्या के समानान्तर चलने दिया जाय (जिससे इसका आक्रमण कोण ०° हो जिससे इसका अग्रसरण कोण तथा पँखड़ी कोण θ° हो जाय) और इतने ही समय में यह एक चक्र पूरा कर ले, तो अग्रगति की दूरी (क) फुट एक निश्चित राशि होगी और सामान्य पेंच की चूड़ी के समान क = २π स्पि Φ वाला सूत्र यहाँ ठीक रहेगा। चित्र संख्या ३७ में पंखे के अक्ष के साथ भिन्न दूरी पर पँखड़ी कोण Φ और दूरी २π त्रि. का लेखाचित्र दिखाया गया है। इसमें (क) उदग्र दूरी को बतलाता है। इससे स्पष्ट है कि दूरी (क) पँखड़ी के सब खण्डों के लिए बराबर है, क्योंकि त्रिज्या (त्रि) के बढ़ने के साथ उसके
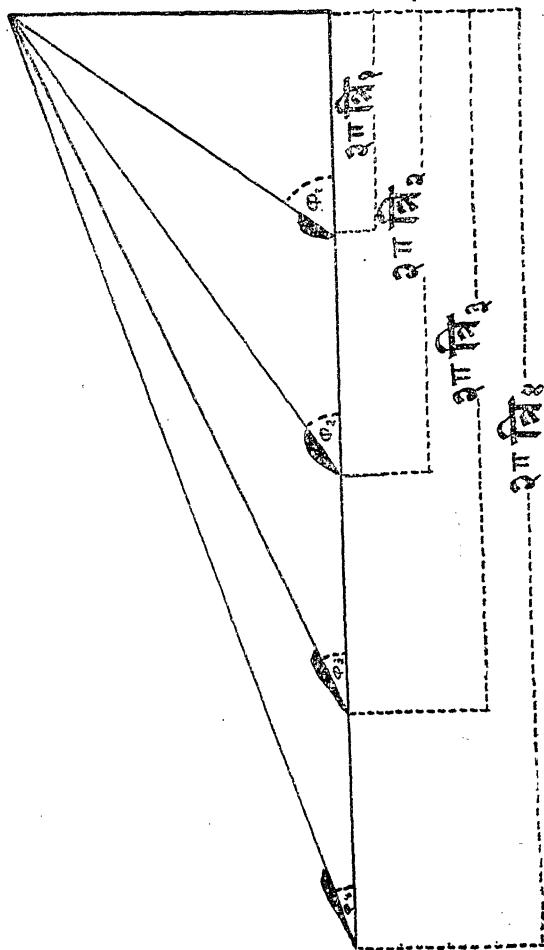
चित्र ३७—ज्यामिति दोलन।

अनुरूप पंखड़ी कोण Φ में कमी होती जाती है जिससे राशि २πस्पि. Φ एक समान रहती है। (क) दूरी इस प्रकार पँखड़ी की ज्यामिति आयाम पर निर्भर है, न कि इसके वास्तविक कार्य पर, अतः इसको 'ज्यामिति-दोलन चूड़ी' भी

कहते हैं। ऐसे भी पंखे बनाये गये हैं जिनमें ज्यामिति दोलन पँखड़ी सब खण्डों के लिए बराबर नहीं होती। ऐसी दशा में आधार से कोने तक की दूरी के $\frac{2}{3}$ या $\frac{3}{4}$ दूरी उस पँखड़ी का 'दोलन' होती है, इसे 'मध्यमान ज्यामिति दोलन' कहते हैं। एक निश्चित चूड़ीवाले पंख की ज्यामिति दोलन का मूल्य धीमे चलनेवाले विमानों के लिए लगभग ३ फुट तथा द्रुतगामी विमानों के लिए १६ या २० फुट के लगभग होता है।

इस पर एक और रीति से भी विचार किया जाता है। जब अग्रगति प्रति चक्र एक निश्चित मान को प्राप्त करती है तो नोद शून्य हो जाता है, क्योंकि इस अवस्था में पँखड़ी के प्रत्येक भाग का आक्रमण कोण इतना छोटा बन जाता है कि वह किसी मात्रा में भी नोदबल नहीं दे सकता। (ऋण कोण पर पंखकाट भी उद्भार बल उत्पन्न नहीं करता)। इस प्रकार प्रायोगिक मध्यमान दोलन उस दूरी को कहते हैं जो नोदशून्य होने पर वायुपेंच एक चक्कर में तय करता है। इसलिए जब पंखा एक चक्कर में प्रायोगिक दोलन के बराबर दूरी तय करेगा तो पँखड़ियों का वायु पर आक्रमण कोण कुछ ऋणात्मक होगा और दूसरी ओर जब पंखे की दूरी ज्यामिती दोलन के बराबर होगी तो आक्रमण कोण शून्य होगा। सामान्यतः कह सकते हैं कि प्रायोगिक दोलन, ज्यामिति दोलन से कुछ अधिक होगा यद्यपि दोनों में प्रत्यक्ष रूप से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता।

विमोटन और नोद की मात्रा पँखड़ी के साथ-साथ बदलती है। पंखों के आधार उनके कोरों की अपेक्षा कुछ मोटे होते हैं और इन खण्डों में वायुप्रवाह पर इसके पीछे लगे इंजन के कारण काफी प्रभाव पड़ता है। यदि इंजन आगे की ओर हो, जैसा कि किसी-किसी विमान में होता है, तो यह प्रभाव अधिक बढ़ जाता है। पंखों के कोरों पर, पक्ष के समान भँवरों, प्रेरित वातरोध तथा संपीड्यता के कारण कुछ क्षति होती है। इस प्रकार पंखों के कोरों और उनके नीचेवाले भागों पर कुछ क्षति होने के कारण, पंख का बहुत थोड़ा भाग ही वास्तव में फलदायक होता है और नोद तथा विमोटन दोनों की मात्रा पँखड़ी के साथ-साथ बदलती है। यही कारण है कि पँखड़ियों के त्रिज्या के दो तिहाई तथा तीन चौथाई भाग के बीच के भाग को अधिक महत्त्वपूर्ण समझा जाता है।

वायुपेंच की दक्षता इसके द्वारा किये गये कार्य और इंजन द्वारा उसे दिये

हुए कार्य के अनुपात के बराबर होती है। इसके अतिरिक्त यांत्रिक कार्य, तय की गयी दूरी और उस पर लगे बल के गुणनफल के बराबर होता है, इसलिए यदि इनमें से कोई राशि भी शून्य हो तो लाभदायक कार्य शून्य के बराबर होगा और इस पंख की दक्षता भी शून्य होगी। इस प्रकार जब पंखा एक चक्कर में प्रायोगिक दोलन के बराबर दूरी तय करेगा तो नोद की मात्रा शून्य होने के कारण, इसकी दक्षता भी शून्य होगी। इसी प्रकार विमान की चाल शून्य होने पर दूरी भी शून्य होगी, कार्य की मात्रा भी शून्य होगी, अतः दक्षता भी शून्य होगी। पंखे की सहायता से अधिकाधिक नोद तथा न्यूनतम विमोटन प्राप्त करने का उद्देश्य रहता है, अर्थात् $\frac{\text{नोद}}{\text{विमोटन}}$ अनुपात अधिकाधिक होना चाहिए। इसको प्राप्त करने के लिए दो बातों का होना आवश्यक है—

(क) $\frac{\text{उद्भार}}{\text{वातरोध}}$ अनुपात अधिकाधिक हो।

(ख) अग्रसरण कोण (एंगिल ऑफ एडवांस) न्यूनतम हो।

अग्रसरण कोण को कम करने से पंखे के कोणि की गति अधिक होगी और विमान की आगे जाने की चाल कम हो जायगी। ऐसा करने से अच्छी उड़ान में और बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा, अतः यह सुझाव अपनाना ठीक नहीं है। उड़ान में, वायुपेंच की उसी परिभ्रमण गति में अग्रगति (उपयोगी कार्य) प्राप्त करने के लिए पँखड़ीखंड वायुप्रवाह के लगभग ३° के आक्रमण कोण पर होना चाहिए, क्योंकि अधिकांश उद्भार-वातरोध अनुपात के लिए पंखकाट का यही सबसे दक्ष आक्रमण-कोण हो सकता है। इसलिए इस दशा में वायुपेंच का नोद और विमोटन का अनुपात अधिकतम होगा। इसी चाल पर वायुपेंच की दक्षता भी अधिकतम होती है। ऐसी अवस्था में अग्रगति प्रति चक्कर प्रायोगिक दोलन से काफी कम होती है। कुछ अवस्थाओं में तो यह कहा जा सकता है कि यह आदर्श चूड़ी (दोलन) को व्यक्त करती है जब कि प्रति चक्र जो अग्रगति होती है वह यथार्थ दोलन (चूड़ी) है। इन दोनों में जो अन्तर होता है उसे 'फिसलन' कहते हैं। यह दूरी भी नियत नहीं है क्योंकि यह विमान की चाल के अनुसार बदलती है। इसे सामान्यतः प्रतिशत के रूप

में व्यक्त करते हैं। मान लीजिए कि किसी पंखे की प्रायोगि्क (दोलन) चूड़ी ५ फुट है और प्रति चक्र प्रगति ४ फुट है, तो फिसलन[1] एक फुट अर्थात् २० प्रतिशत हुई। स्पष्ट है कि पंखे में नोद अथवा दक्षता होने के लिए इस फिसलन का होना आवश्यक है। यदि इसकी मात्रा शून्य हो तो प्रति चक्र प्रगति, आदर्श प्रगति प्रायोगिक चूड़ी के बराबर होगी और शून्य नोद तथा शून्य दक्षता के लिए भी इसी प्रकार की अवस्था की आवश्यकता होती है।

कभी-कभी कहा जाता है कि जब फिसलन २० प्रतिशत होती है तो पंखे की दक्षता८० प्रतिशत होंनी चाहिए, परन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि ८० प्रतिशत केवल दूरी का अनुपात है जब कि दक्षता बल और दूरी का अनुपात है। अधिक दक्षता के लिए लगभग ३० प्रतिशत फिसलन की आवश्यकता होती है। कम चाल के विमानों में निश्चित चूड़ी के पंखों का नोद अधिकतम स्थिर अवस्था में होता है अर्थात् जब विमान ज़मीन पर खड़ा हो। इस नोद को 'स्थैतिक नोद' कहते हैं। इसकी अधिक मात्रा के कारण, विमान को स्थिर अवस्था से गति की अवस्था में आने के लिए काफी मात्रा में त्वरण प्राप्त हो जाता है और इस प्रकार उसकी उड़ान के लिए जिस दौड़ की आवश्यकता होती है उसकी दूरी को यह कम कर देती है। आजकल के द्रुतगामी विमानों में अधिकतम चाल के लिए बनाये गये निश्चित 'चूड़ीदार पंख' बहुत बड़े होते हैं। ऐसे विमान जब ज़मीन पर खड़े रहते हैं तो इन पंखों की पँखड़ियों के कुछ भाग और वायु के परस्पर टकराव का कोण ७०° या इससे भी अधिक होता है।

इस प्रकार के पंखों में दक्षता तथा स्थैतिक नोद बहुत कम होता है जिसके कारण 'उड़ान दौड़' में काफी कठिनाई होती है। इसको दूर करने के लिए परिवर्तित चूड़ीदार पंखों का प्रयोग किया जाता है। उड़ान करते समय, अधिक चाल पर एक ऐसी चाल आती है जब नोद की मात्रा शून्य हो जाती है। यह चाल सामान्य उड़ान की चाल से कहीं अधिक होती है। इससे अधिक चाल पर उड़ान करने से इंजन के प्रति मिनट अधिकतम चक्कर लगाने पर भी नोद की अपेक्षा रोध उत्पन्न होता है और पंखों की दक्षता में ह्रास होता है। इन दशाओं में,

1. Slip

विमान की चाल का थोड़ा-सा परास ऐसा है जहाँ पर पंखे यथार्थ में दक्ष होते हैं। यदि पंखा इंजन के धुरादण्ड की अधिकतम चाल से घूमने लगे तो पंखों की पँखड़ियों के कोरों की चाल ध्वनिचाल[1] के बराबर या इससे अधिक हो सकती है और इससे वायु में संपीडन क्रिया होती है, जिसके कारण विमोटन और नोद की मात्रा में कमी आ जाती है। पंखों की दक्षता में ह्रास का यही कारण है। अत: ऐसी दशा में अधिक शक्तिशाली इंजन का प्रयोग लाभदायक नहीं होता। पंखे की पँखड़ियों की चाल को ध्वनि की चाल से कम रखने के लिए इंजन के धुरादण्ड और पंख के बीच न्यूनक गीयर की व्यवस्था की जाती है। कोरों की चाल प्रति मिनट चक्रों के अतिरिक्त विमान की चाल तथा पंखे के व्यास पर भी निर्भर है। द्रुतगामी विमानों में इनकी चाल को ध्वनि की चाल से कम रखना अत्यन्त कठिन काम होता जा रहा है अत: इनकी दक्षता में कुछ मात्रा में ह्रास मालूम होता है। यहाँ तक कि ५०० मील प्रति घण्टे चलनेवाले विमानों में इसके कारण दक्षता में जो ह्रास होता है वह पँखड़ियों के अन्य भागों को भी प्रभावित करता है। अत: इनके स्थान पर जेट चालन का प्रयोग होने लगा है।

इस समस्या को उक्त उपाय के अतिरिक्त दो-चूड़ीवाले पंखे से हल करने का प्रयत्न किया गया है। आवश्यकता एक ऐसे पंखे की थी जो उड़ान-दौड़ के समय और अधिकतम उड़ान पर पूर्ण दक्षता से कार्य कर सके। दो-चूड़ी-दार पंखे में दोनों अवस्थाओं के लिए भिन्न चूड़ियों के प्रयोग की व्यवस्था रहती है। उड़ान-दौड़ में जिस चूड़ी का प्रयोग किया जाता है, वायु में जाने पर विमानचालक योक्त्र की सहायता से इसे दूसरी चूड़ी में बदल देता है जो उस उड़ान के लिए उपयुक्त होती है। इसमें और सुधार हो चुके हैं और स्थिर-चाल के पंखों में चूड़ियाँ स्वत: अपने आपको ठीक कर लेती हैं। इस प्रकार पंखा विमानचालक के निर्णय के अनुसार एक निश्चित दर पर घूमता है और चूड़ियों की स्वत: ठीक होने की प्रवृत्ति के कारण उसी दर पर घूमता रहता है। इस पर विमान के सुचालन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रकार इंजन और पंखे

१ ध्वनि की चाल समुद्रतल पर ११०० फुट प्रति सेकण्ड होती है; ऊँचाई के साथ-साथ यह कम होती जाती है।

उड़ान-दौड़, तुगंता, अधिक चाल और अन्य इसी प्रकार की दशाओं की परवाह न करते अधिकतम दक्षता से कार्य कर सकते हैं। इस प्रकार के परिवर्तित चूड़ीदार पंखे की पँखड़ियाँ यदि एक ऐसी अवस्था को प्राप्त कर लें जिसमें ज्या की रेखा उड़ान की दिशा में हो तो रोध न्यूनतम होगा। अनेक इंजनोंवाले विमान के एक इंजन के काम न करने पर पंखे के रोध को कम करने में, यह उपाय बहुत उपयोगी होता है। इस विधि से पंखे को बन्द करने में भी सुविधा रहती है और अधिक क्षति से हम बच जाते हैं।

यदि इन पँखड़ियों को घुमाकर पँखड़ियों का कोण २° या ३° कर दिया जाय तो पंखा एक अच्छे वायु ब्रेक का काम करता है, क्योंकि इससे अधिकतम रोध उत्पन्न होता है। इस दशा में अग्रसरण कोण, पँखड़ी के कोण से अधिक, आक्रमण कोण ऋणात्मक होता है और वायु-प्रवाह पंखकाट की उलटी ओर टकराकर ऋणात्मक नोदबल उत्पन्न करता है। इस प्रकार के ब्रेक का प्रयोग ज़मीन पर उतर आने पर अकसर किया जाता है।

पंखे का व्यास निर्धारित करते समय इन बातों को ध्यान में रखा जाता है—

(क) पंखे की दक्षता

(ख) पंखे के बिल्कुल पीछे बहुत बड़े आकार के पिण्ड, कबन्ध इत्यादि का होना।

(ग) पँखड़ियों की मज़बूती और अपकेन्द्र बल[१]।

(घ) ज़मीन पर खड़ा होने के पश्चात्, ऐसी अवस्था जिससे उनके कोरों[२] को क्षति न पहुँचे।

छोटे विमानों के पंखों में (घ) वर्ग की बातों को ध्यान में रखा जाता है। (क) और (ख) के अनुसार तो व्यास जितना अधिक होगा उतना ही अच्छा होगा।

१ अवस्थितित्व के कारण प्रत्येक पिण्ड में अपने मार्ग पर सम गति से चलने की प्रवृत्ति से जब पिण्ड किसी बाह्य बल से प्रेरित हो सीधे मार्ग से विचलित होने लगता है, तो उसको रोकने के लिए उसमें जो अवरोध उत्पन्न होता है उसी को 'अपकेन्द्र बल' (Centrifugal force) कहते हैं। इस बल की कार्यरेखा उस वक्र मार्ग की त्रिज्या पर, जिससे वह बल इसे विचलित कर ले जाना चाहता है, बहिर्मुखी होती है।

2. Wing tips

पंखे में इंजन से प्राप्त शक्ति को खींचने की सामर्थ्य होनी चाहिए। इसमें और अधिक सामर्थ्य लाने के लिए प्राय: निम्नलिखित साधनों का प्रयोग किया जाता है।

(क) पँखड़ियों की संख्या बढ़ा दी जाती है।

(ख) पँखड़ियों की ज्या-लम्बाई अधिक कर दी जाती है।

(ग) पँखड़ी-कोण को अधिक करने से और इस प्रकार पँखड़ियों के आक्रमण-कोण में वृद्धि कर दी जाती है।

(घ) पंखड़ियों की लम्बाई और इस प्रकार पंखे के व्यास को बढ़ा दिया जाता है।

(ङ) पंखकाट में और अधिक उत्तलता लायी जाती है।

(च) पंखों के चक्कर में और तेजी लाते हैं।

इतना होने पर भी आदर्श पंख के मिलने में कठिनाई होती है। ऐसा क्यों ? पँखड़ीकोण ऐसा होना चाहिए जिससे आक्रमण कोण की दक्षता ज्यादा हो। इसको बढ़ाने से दक्षता में कमी पड़ती है तो इस कोण को बढ़ाने से कोई लाभ नहीं। व्यास की समस्या का उल्लेख किया जा चुका है। पंखों की चक्रगति को अधिक करने से कोरों की चाल[1] बढ़ती है जिससे दक्षता में कमी पड़ने की संभावना है, अतः इसे अच्छा साधन नहीं माना जा सकता। पंखों की उत्तलता बढ़ाने से, उनके पतलेपन के कारण उनको अधिक चाल पर प्रयोग करना खतरे से खाली न होगा।

इस प्रकार हमारे पास (क) और (ख) केवल दो साधन शेष रहते हैं। दोनों से पंखों की मजबूती बढ़ती है। इस मजबूती को 'सान्द्रता' से व्यक्त करते हैं। 'सान्द्रता' एक अनुपात है। किसी भी त्रिज्या पर पँखड़ियों की ज्या के योग को उस त्रिज्या पर प्राप्त परिधि से भाग देने पर, उस पंख की सान्द्रता[2] प्राप्त होती है। (चित्र संख्या ३८) किसी भी पंख में जितनी अधिक सान्द्रता होगी, उतनी ही अधिक मात्रा में यह इंजन की शक्ति को खींच सकेगा। सान्द्रता को बढ़ाने के दो साधनों में से ज्या की लम्बाई को बढ़ाना सुगम है। परन्तु पँखड़ियों की संख्या को बढ़ाना अधिक अच्छा समझा जाता है।

1. Wing tip Speed 2. Solidity

पहले साधन म एक कमी है। दर्शानुपात में कमो आने पर, पँखड़ियों की दक्षता में कमी आती है। इसके अतिरिक्त पंखड़ियों की चौड़ाई अधिक होने पर पँखड़ियों का चूड़ी-कोण कम हो जाता है। इससे चूड़ी को वदलने की क्रिया में कठिनाई होती है। अपकेन्द्र बल के कारण जो परिभ्रमण-घूर्ण उत्पन्न होता है वही
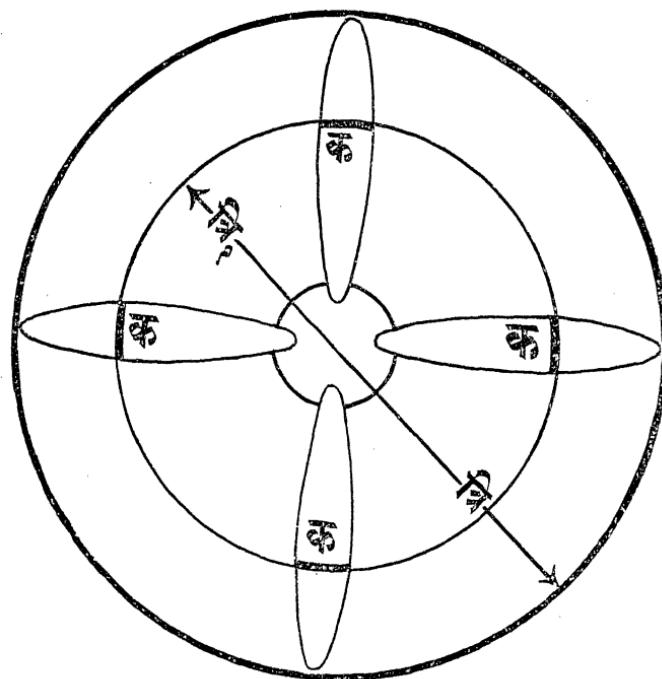
चित्र ३८—पंखे की सांद्रता।

इसका मुख्य कारण है। पंखों की पँखड़ी के अगले सिरे या पिछले सिरे के समीप एक अंश पर लगा यह अपकेन्द्र बल पंख-दण्ड के केन्द्र से इस अंश के साथ जो रेखा बनती है उस रेखा पर बाहर की ओर कार्य करता है। इस बल को दो अवयवों में बाँटा जा सकता है, जिस पर पंखड़ी स्वयं घूमती है। एक अवयव उसके

समानान्तर और दूसरा इसके समकोण होगा। समकोण अवयव, उस समतल में होगा जिसमें पंखा घूमता है। समानान्तर बल की कुल मात्रा पँखड़ी में तनाव पैदा करती है और समकोण वाला अवयव पँखड़ी-कोण को कम करता है। इन दोनों अवयवों को ध्यान में रखना पड़ता है। अपकेन्द्र बल के कारण पँखड़ियों में तनाव की मात्रा ८० से १०० टन तक हो सकती है और अपकेन्द्र बल से उत्पन्न परिभ्रमण घूर्ण अवस्था में १०,००० पौंड हो सकती है। चूड़ी-परिवर्तन अक्ष के आगे दाब-केन्द्र के होने के कारण परिभ्रमण घूर्ण उत्पन्न हो जाता है जिससे अप-केन्द्र बल से उत्पन्न परिभ्रमण घूर्ण में कुछ कमी आती है, परन्तु यह प्रभाव बहुत थोड़ी मात्रा में होता है। (क) के अनुसार पँखड़ियों की संख्या को बढ़ाने से हम पंखे की खींचने की शक्ति को बढ़ा सकते हैं, ठीक है। वायुपेंच में यह संख्या दो से चार तक बदलती है। दो पँखड़ीवाला वायुपेंच बनाना आसान भी है और यह सक्षम भी होता है, परन्तु चार से अधिक पंखड़ियों के पश्चात् इन सब को पहले पंखे के केन्द्र में लगाना बहुत कठिन हो जाता है। अतः प्रत्येक इंजन के लिए दो पंखों की व्यवस्था करना आवश्यक हो जाता है। वास्तव में ऐसा करने से हम इन दोनों पंखों को एक दूसरे के विरुद्ध घुमाने पर दूसरे फायदे भी उठा सकते हैं।

वायुमण्डल में ज्यों-ज्यों अधिक ऊँचाई पर जाते हैं वायु के घनत्व में कमी आती है। यदि इंजन की शक्ति स्थिर रहे, जो उसे अति-आवेश[1] देने से ही प्राप्त हो सकती है, तो इंजन और पंखा परस्पर दौड़ करेंगे। इस कमी को दूर करने के लिए स्थिर चालवाले पंखों की चूड़ी को बढ़ाया जाता है। परन्तु निश्चित पँखड़ी-वाले पंखों में इस प्रकार की बढ़ोतरी से भूतल पर उसके प्रति मिनट के परिभ्रमण में कमी पड़ेगी जिससे उड़ान-दौड़ में कठिनाई होगी। यही कारण है कि सामान्यतः एक अति-आवेश किये गये इंजन से युक्त विमान में परिवर्तित चूड़ीवाला पंखा लगाया जाता है। अन्य विमानों में वायुमण्डल की ऊँचाई के साथ शक्ति में कमी पड़ती है। वायुघनत्व में कमी के कारण पंखे में दौड़ से जो क्षति होती है उसकी पूर्ति यह करता है और इसके फलस्वरूप प्रति मिनट परिभ्रमण की संख्या में कमी पड़ सकती है। कुछ भी हो, नोद बल में कमी अवश्य आती है। इसके अतिरिक्त

1. Super charge

वायुमण्डल से अधिक ऊंचाई पर वायु की संपीडनता के कारण भी दक्षता में कमी पड़ती है। जिस प्रकार पंखकाट वायु में नीचे की ओर विक्षेप करने से उद्भार बल उत्पन्न करता है उसी प्रकार पंखा वायु को पीछे की ओर फेंककर नोद उत्पन्न करता है। पीछे की ओर फेंके जानेवाले वायुप्रवाह का वेग, वायु में विमान के वेग से अधिक होता है। विमान की अवपात चाल (स्टालिंग स्पीड) पर यह वृद्धि १०० प्रतिशत से भी अधिक हो सकती है। अतः जिस भाग के ऊपर से यह प्रवाह होगा वहाँ पर, दूसरे भागों की अपेक्षा वायु-प्रवाह का वेग दुगना, और वातरोध बल चार गुना होगा। जब विमान धीमी चाल से चल रहा होता है, जैसे अवपातचाल, उड़ान-चाल में, तो उसके उत्थापक और सुकान के सफल नियन्त्रण में इस अतिरिक्त वेग से सहायता मिलती है।

इसके अतिरिक्त पंखा अपनी घूर्णन गति भी इस प्रवाह को उसी दिशा में दे देता है जिसके फलस्वरूप यह वायुप्रवाह सिफना[1] के एक ही तरफ टकरायेगा। अतः विमान के पार्श्विक और दैशिक नियन्त्रण[2] में इसका प्रभाव पड़ेगा। सिफना को इस प्रकार कर देने से कि वह विमान के आगे या पिछाड़ी न रहे, यह समस्या हल हो सकती है।

पंखे का विमोटन-बल कुल विमान को अपने घुमाव की विपरीत दिशा में घुमाने का प्रयत्न करता है। जब छोटे विमानों में अधिक शक्तिशाली इंजनों का प्रयोग किया जाता है तो इसका भी अपना एक विपरीत प्रभाव पड़ता है इसको कम करने के लिए बहुत से साधन अपनाये गये हैं। जो पक्ष ऊपर की ओर उठने का प्रयत्न करता है उसके आयतन कोण को कम कर देने से उसका यह दोष समाप्त हो जाता है, क्योंकि आक्रमण कोण और उद्भार बल इससे कम हो जाता है। कभी-कभी दूसरे पक्ष में स्वतः इसके विपरीत क्रिया हो जाती है अर्थात् उसका आयतनकोण बढ़ जाता है। दूसरे साधन में विमान के दोनों पक्षों में भार को कम या अधिक करने से इस प्रभाव को कम किया जाता है। जहाँ पर दो या इससे अधिक इंजनों का प्रयोग किया जाता है वहाँ के पंखों को एक दूसरे के विपरीत घुमाकर इस प्रभाव को खत्म किया जा सकता है।

1. Fin 2. Directional Control

पंखे के घूमनेवाले भाग के कारण कुछ मात्रा में गायरोदर्शी प्रभाव भी पड़ सकता है। एक घूमनेवाला पिण्ड, अपने घुमाव के समतल में किसी भी परिवर्तन का विरोध करता है। यदि ऐसा करने पर भी यह तबदीली आ जाय तो घुमाव-समतल भी इस तबदीली के समकोण की दिशा में बदल जाने का प्रयत्न करेगा। इस प्रकार यदि पंखा दक्षिणावर्त घूमे (जब उसे चालक घर से देखे) तो नासा दायीं और ओर पूँछ बायीं ओर घूमने का प्रयत्न करेगी। इसके अतिरिक्त उड़ान-दौड़ के समय में विमान में एक तरफ से दूसरी तरफ झूलने की प्रवृत्ति होती है। यह विमान में असंमिति के कारण होता है। यह असंमिति पंखे या पंखे के कारण उत्पन्न पीछे की ओर वायुप्रवाह या गायरोदर्शी प्रभाव, किसी भी कारण से हो सकती है। यदि पंखा दक्षिणावर्त घूम रहा हो तो विमोटन प्रतिक्रिया वामवर्ती होगी, बायें हाथवाले पहिये पर जमीन की ओर दाब पड़ेगा जिससे प्राप्त तल-घर्षण के कारण विमान में बायीं ओर को विचलता आयेगी। हो सकता है, विमोटन बल के कारण जो प्रभाव पड़ता हो उसकी कमी किन्हीं कारणों से पूरी हो जाय। ऐसी अवस्था में विमान का रुख इन उपर्युक्त कारणों पर निर्भर होगा। यदि यह मान लें कि पंखा दक्षिणावर्त घूम रहा है तो उससे उत्पन्न पीछे की ओर वायुप्रवाह के वेग के कारण भी विमान में इसी प्रकार की प्रतिक्रिया होने की संभावना हो सकती है जब विमान की पूँछ ऊपर की ओर उठेगी और पंखा दक्षिणावर्त घूम रहा हो तो गायरोदर्शी (गायरोस्कोपिक) प्रभाव के कारण विमान में बायीं ओर विचलता भी आ सकती है।

जब पूँछ ज़मीन पर हो, पंखे का दण्ड ऊपर की ओर उठा हो और विमान क्षैतिज दिशा में दौड़ रहा हो तो पंखे की नीचे जानेवाली पँखड़ी, ऊपर जानेवाली पँखड़ी की अपेक्षा वायु से अधिक कोण पर टकरायेगी, जिससे नीचे जानेवाली पँखड़ी की तरफ नोद की मात्रा अधिक होगी। बायीं ओर विचलता[1] आने का यही कारण है। यह प्रभाव कम करने के लिए उस कारण को ठीक करना होगा जिससे विचलता आती है। प्रति-परिभ्रमण-पंखों[2], जैट-चालन तथा राकेट-चालन के प्रयोग से इस विचलता के दूर किये जाने के प्रयास किये गये हैं। प्रति-

1. Yawing 2. Contra-rotating wings

परिभ्रमण-पंखे में पँखड़ी का क्षेत्रफल अधिक होता है, सान्द्रता[1] भी अधिक होती है और यह विमान की असंमिति[2] को काफी सीमा तक दूर करता है। पंखों की पँखड़ियों में सन्तुलन होना चाहिए अर्थात् दो पंखड़ियों को हर प्रकार से समान होना चाहिए। पंखों की पँखड़ियों में स्थैतिक सन्तुलन ही काफी नहीं है, इससे तो केवल यह पता लगता है कि आधार के दोनों ओर पँखड़ियों के भार का घूर्ण बराबर है, परन्तु जब यह घूमता है तो न केवल घूर्ण बल्कि अवस्थितित्व[3] घूर्ण में भी सन्तुलन होना चाहिए। किसी भी पिण्ड का घूर्ण उस पिण्ड के भार तथा अक्ष से उसकी दूरी पर निर्भर होता है जब कि अवस्थितित्व घूर्ण इस दूरी के वर्ग और द्रव्यमान पर निर्भर है।

कहने का अभिप्राय यह कि पँखड़ियों की स्थैतिक और गतिकी दोनों अवस्थाओं में सन्तुलन का होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त वायु-गत्यात्मक सन्तुलन भी होना चाहिए। पंखों के प्रसंग में इसका अर्थ यह होगा कि उनकी प्रत्येक पँखड़ी का कोण बराबर होना चाहिए, ताकि तमाम पँखड़ियाँ नोद की एक ही मात्रा दें। यदि एक पंखड़ी दूसरी से अधिक नोद दे तो इसके कारण कम्पन उत्पन्न हो सकता है जो विमान के अन्य भागों में भी फैल सकता है।

विमानचालन की अन्य पद्धतियाँ

विमान-चालन की और भी अनेक पद्धतियाँ होती हैं। एक पद्धति के अन्तर्गत एक वेन्टूरी नली या इसी प्रकार की अन्य नली को वायु में विमान की गति से उत्पन्न वायुप्रवाह के सम्मुख रखा जाता है। (चित्र संख्या ३९) वायुप्रवाह की अग्रगति के कारण यह वायु को इकट्ठा कर उसका संपीडन करती है। वायुप्रवाह इसके पश्चात् ऊष्मा के किसी उद्गम पर से गुज़ारा जाता है जहाँ इसे ऊर्जा की कुछ मात्रा प्राप्त होती है, जिसके कारण जिस वेग से यह प्रवाह नली में प्रविष्ट हुआ था उसकी अपेक्षा अधिक वेग से इससे बाहर आ जाता है। इस यन्त्र को* वोगवाह[4] कहा गया है। यह उसी समय कार्य करता है जब यह चल रहा हो और ठीक प्रकार से काम करने के लिए इसका कम से कम १०००

1. Solidity 2. Unsymmetricalness 3. Moment of Inertia
4. Athodyd

* वायु, ऊष्मा और गति की वाहिनी (वा+ऊ+ग=वोग)।
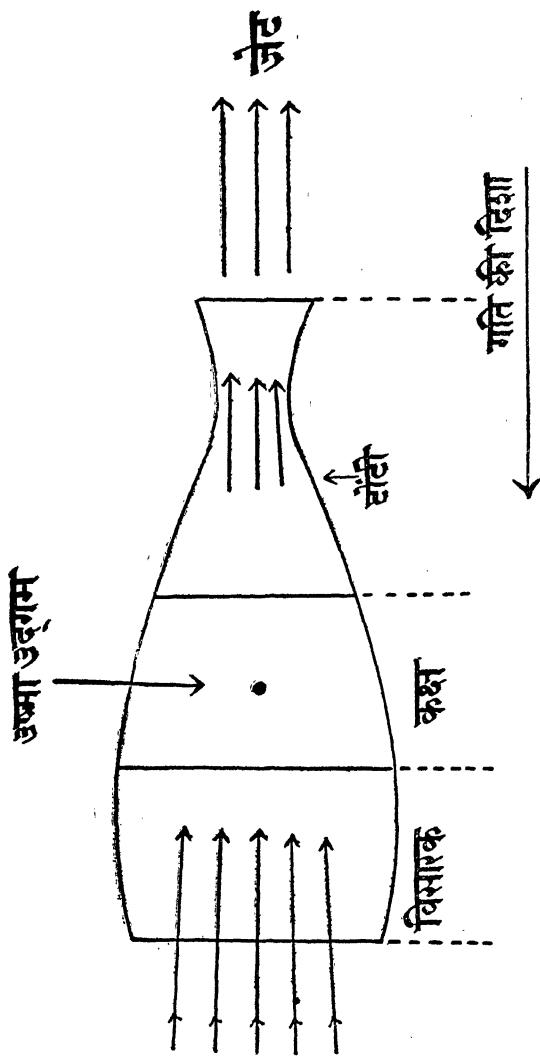
चित्र ३९—वेगवाह का सिद्धान्त।

मील प्रति घण्टे की चाल से चलना आवश्यक है। स्थिर दशा में यह नोद उत्पन्न नहीं कर सकता। अत: हमें उड़ान आरम्भ करने के लिए वोगवाह युक्त विमान में चालन के लिए एक सहायक चालन व्यवस्था की आवश्यकता होती है। इस उद्देश्य से राकेट-चालन का प्रयोग होता है। कम चाल पर इस तरह राकेट-चालन कार्य करता है और अधिक चाल पर वोगवाह कार्य करता है। वोगवाह का प्रयोग सम्भव है। इसका सफल प्रयोग किया गया है, लेकिन अभी यह अधिक प्रचलित नहीं हुआ है।

जिस प्रकार वोगवाह में वायु को इकट्ठा किया जाता है, ठीक उसी प्रकार जेट चालन में वायु को इकट्ठा किया जाता है। यह गैस टरबाइनयुक्त जेट होता है। पिस्टन इंजन की भाँति इसमें एक संपीडन यन्त्र से वायु का संपीडन होता है। इसके पश्चात् ऊष्मा इंजनों की भाँति इसमें वायु को ऊष्मा के रूप में ऊर्जा दी जाती है जिसके कारण इस वायु में संवेग उत्पन्न होता है और यह वायु-प्रवाह प्रवेश करते समयवाले वेग की अपेक्षा कहीं अधिक वेग से बाहर की ओर जाता है, जैसा कि वोगवाह में होता है।

जेट का वेग लगभग १४०० मील प्रति घण्टा होता है। वायु-प्रवाह बाहर जाते समय, अपनी कुछ ऊर्जा और संवेग टरबाइन को चलने के लिए दे देता है। यह टरबाइन, फिर संपीडन यन्त्र को चलाता है। इस प्रकार इस प्रतिक्रिया का चक्र चलता रहता है। इस प्रकार जेट चालन में इंजन वोगवाह के समान है, जिससे कम चाल पर टरबाइन और संपीडन यन्त्र की सहायता से नोदबल उत्पन्न करने की व्यवस्था होती है। सामान्य जेट-इंजन विमान का एक मुख्य भाग होता है।

चालन की इन सब पद्धतियों से राकेट चालन भिन्न है। यह ईंधन के जलने के लिए आक्सीजन गैस या नोद पैदा करने के लिए पीछे की ओर के वायु-प्रवाह पर निर्भर नहीं होता। इसलिए यह वायुमण्डल में बहुत अधिक तुंगता पर, जहाँ वायु का घनत्व और वातरोध बहुत कम होता है या वायुमण्डल से भी बहुत ऊपर, विमान की उड़ान के लिए अधिक उपयुक्त है। ग्रहों तक यातायात के लिए भविष्य में शायद इसका प्रयोग किया जाय।

दसवाँ अध्याय

उड़ान

अब तक विमान के कुछ विशिष्ट अंग, पंखकाट (वायुपेंच) आदि का विशेष तौर पर वर्णन किया जा रहा था। इन अंगों के अतिरिक्त विमान के निम्नलिखित अंग और होते हैं।

(१) **कबन्ध**—विमान का मुख्य अंग उसका कबन्ध होता है। यह इतना बड़ा होता है कि इसमें इंजन, चालक, टैंक, बम, सामान, यात्री इत्यादि सबकी जगह होती है।

(२) **पक्षक**—यह विमान के पक्षों पर किनारे की ओर कब्जे द्वारा लगे हुए पल्ले होते हैं। विमान की दिशा को बदलते समय इनसे सहायता ली जाती है।

(३) **इंजन**—यह विमान के मुख्य भाग में या पक्षकवाले पक्षों के सामने लगा रहता है।

(४) **सुकान**—यह विमान के पिछले सिरे पर धातु की चादर के रूप में लगा होता है। इसको सीधा खड़ा कर लगाया जाता है। इसको ऊर्ध्वतल में लीवरों की सहायता से घुमाया जा सकता है। इस पर वायु-धाराओं से होनेवाली प्रतिक्रिया द्वारा विमान की क्षैतिज तल की गति को नियन्त्रित किया जाता है।

(५) **उत्थापक**—यह एक क्षैतिज तल में लगी हुई चादर के रूप में होता है। इसको ऊपर नीचे करके वायु-धाराओं की प्रतिक्रिया द्वारा विमान को ऊपर-नीचे उतारा जा सकता है।

उपर्युक्त सं० २, ४ और ५ में वर्णन किये गये यन्त्रों को 'नियन्त्रक यन्त्र' कहते हैं।

विमान की उड़ान की निम्नलिखित अवस्थाएँ होती हैं।

(१) **उड़ान-दौड़**—इसी क्रिया से विमान अपनी उड़ान आरम्भ करता है। इस अवस्था में विमान पृथ्वी पर दौड़ लगाता हुआ एक माध्यम को छोड़कर दूसरे माध्यम में जाने के लिए आवश्यक बल प्राप्त करता है।

(२) **आरोहण**—उड़ान-दौड़ द्वारा प्राप्त उद्भार बल की सहायता से इस अवस्था में विमान वायुमंडल में उस ऊँचाई पर पहुँचता है जहाँ पर उसका चालक यह समझता है कि विमान सुरक्षित रूप से उड़ान कर सकेगा।

(३) **समतल उड़ान**—एक निश्चित ऊँचाई पर पहुँचने के पश्चात् विमान इस क्रिया के अन्तर्गत अपनी उड़ान सुचालन इत्यादि क्रियाओं समेत जारी रखता है।

(४) **ग्लाइड करना**—नीचे आने से पूर्व विमान इस क्रिया से ही गुजरता है। इस क्रिया में इंजन कार्य नहीं करता।

(५) **उतरना**—इस क्रिया द्वारा विमान पुनः पृथ्वी पर आ जाता है।

विमान को ऊपर उठाने के लिए आवश्यक मात्रा में उद्भार बल की प्राप्ति करना उड़ान-दौड़ का उद्देश्य रहता है। दौड़ आरम्भ करते समय वातरोध को कम करने के लिए विमान की पूँछ को ऊपर की ओर रखते हैं, जब विमान उड़ान की न्यूनतम चाल को पकड़ लेता है तो पूँछ को नीचे करने पर और पक्षों को १५° के आक्रमण कोण पर रखने से विमान में उड़ान की क्षमता आ जाती है। इस ढंग से विमान बहुत कम दौड़ के बाद ही भूमि से ऊपर उठ जाता है, परन्तु इसके पश्चात् वायुमंडल में जाने के लिए आक्रमण कोण में किंचित् वृद्धि भी उसे अवपात की दशा में ला सकती है जिससे वह पुनः भूमि पर उतर सकता है। इसको रोकने के लिए वायुमण्डल में जाने से पूर्व विमान की चाल को अवपात-चाल से अधिक कर दिया जाता है और कभी-कभी विमान को अपनी पूँछ को ऊपर किये तब तक उड़ान करने दिया जाता है जब तक कि वह अपने आप ऊपर की ओर उठना आरम्भ नहीं कर देता। विमान की उड़ान-दौड़ पर धावनपथ की सतह का काफी प्रभाव पड़ता है। उड़ान-दौड़ में विमान के खाँचों, पल्लों और इसी प्रकार की अन्य व्यवस्थाओं

से, जिनसे वातरोध में वृद्धि हुए बिना उद्भार-बल में वृद्धि हो सके (द्रुतगामी विमानों में परिवर्ती-चूड़ीदार पंखों से), काफी सहायता मिलती है।

उड़ान-दौड़ में पल्लों के प्रयोग पर कोई निश्चित मत नहीं है। एक मत के अनुसार इनका प्रयोग इस बात पर निर्भर है कि इनके कारण $\frac{\text{उद्भार}}{\text{वातरोध}}$ अनुपात में कहाँ तक कमी या वृद्धि होती है, परन्तु यह ठीक नहीं है। यदि इसमें किंचित् भी सत्यता होती तो इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए था, क्योंकि $\frac{\text{उद्भार}}{\text{वातरोध}}$ अनुपात इनके बिना भी अधिकतम होता है।

उड़ान-दौड़ की क्रिया के दौरान में वातरोध को हम कम करना चाहते हैं और इस क्रिया के अन्तिम चरण में अतिरिक्त उद्भार-बल की आवश्यकता पड़ती है, ऐसी अवस्था में पल्ले के प्रयोग से उद्भार-बल प्राप्त किया जा सकता है। यह ढंग सुविधाजनक नहीं माना जाता। इस समस्या का पूर्ण हल अब तक ज्ञात नहीं हो सकता। एक ऐसे पल्ले के आविष्कार की जरूरत है जिससे उद्भार बल तथा वातरोध-बल आवश्यकतानुसार मात्रा में प्राप्त किया जा सके।

उड़ान-दौड़ में विमान के नीचे लगे वहन के कारण भी काफी मात्रा में वातरोध-बल पैदा होता है। इसको कम करने के प्रयास किये जा रहे हैं। विमान के पक्ष-प्रतिदाब के अधिक होने पर आवश्यक मात्रा में उड़ान-चाल प्राप्त करने के लिए जितनी दूर तक विमान को दौड़ना पड़ता है उसमें भी वृद्धि होती है। उड़ान-दौड़ क्रिया में गुफ़िया का प्रयोग भी बहुत पुराना है। इसका सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है, लेकिन इसका अधिक प्रचलन अब नहीं रहा, किन्तु इसकी अपनी कुछ विशिष्टताएँ हैं। विमान-चालन में राकेट व्यवस्था के प्रयोग से भी लगभग इसी प्रकार का कार्य लिया जाता है। इन सब साधनों का एक ही उद्देश्य होता है कि किसी प्रकार विमान को दौड़ाकर इसे आरोहण क्रिया के लिए तैयार किया जाय।

कल्पना कीजिए कि विमान का अपना मार्ग नोद की दिशा में है, तब आरोहण क्रिया में इस पर जो बल लगे होंगे वे चित्र ४०-४३ में दिखाये गये

हैं। आरोहण-कोण यदि α हो तो उड़ान की दिशा के समकोण और समानान्तर बलों की मात्रा इस प्रकार होगी—

(१) उद्भार बल = भार × कोज्या α

(२) नोद बल = वातरोध + भार × ज्या α

इससे पता लगता है कि आरोहण क्रिया में वातरोध बल की अपेक्षा नोदबल की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है और इसकी मात्रा आरोहण की प्रवणता के साथ बढ़ती है। उदग्र उड़ान में इसके ९०° कोण पर होने पर ज्या α, १° के बराबर होती है। इसलिए नोद, वातरोध और भार के योग के बराबर होता है। इसी प्रकार यदि $\alpha = 0°$ हो (अर्थात् यदि कोई आरोहण न हो) तो ज्या का ० मान होगा। इसलिए इस दशा में वातरोध नोद के बराबर होता है।

उक्त पहले समीकरण के अनुसार उद्भार बल विमान के भार से कम होता है। उदग्र आरोहण में उद्भार की मात्रा शून्य होती है, इससे हमें एक और तथ्य मिलता है कि उद्भार बल की कुल मात्रा नोद से प्राप्त होती है और पक्ष इसमें कोई सहायता नहीं देते।

समतल उड़ान करते समय उद्भार भार के बराबर होता है। इस परिणाम को मानने का अर्थ यह है कि आरोहण क्रिया में, आक्रमण-कोण, क्षैतिज उड़ान के कोण के बराबर होगा। परन्तु सब अवस्थाओं में ऐसा नहीं होता। प्रत्येक विमान की एक नियत चाल होती है जिसकी सहायता से आरोहण क्रिया ठीक प्रकार से हो सकती है। इंजन की शक्ति में कमी करने सें उड़ान न्यूनतम चाल से भी होती है, लेकिन फिर इसका उड़ान-परास और लम्बा हो जाता है।

विमान को उड़ान-दौड़ अर्थात् आरोहण क्रिया के लिए तैयार करने के लिए कितनी अश्व-शक्ति की आवश्यकता है, इसका पता वातरोध की मात्रा जानने के बाद लगता है। मान लीजिए कि १८० मील प्रति घण्टे की चाल (२६४ फुट प्रति सेकण्ड) पर कुल वातरोध की मात्रा १,२५० पौंड है, तो इंजन की शक्ति = १,२५० × २६४ फुट पौंड प्रति सेकण्ड अर्थात् $\frac{१२५० \times २६४ \times ६०}{३३,०००}$

=६०० अश्व-शक्ति होनी चाहिए। विमान में ईंधन के रूप में जो पदार्थ (पेट्रोल इत्यादि) प्रयुक्त होता है उससे प्राप्त गैस और वायु के मिश्रण को 'गैस-मिश्रण' कहते हैं। गैस-मिश्रण, चक्र प्रति मिनट तथा थ्रौटल की सहायता से किसी भी इंजन की अश्व-शक्ति को कुछ सीमा तक कम या अधिक किया जा सकता है। इस प्रकार थ्रौटल को पूरा खोलकर न्यूनतम चाल प्राप्त की जा सकती है। परन्तु ऐसी अवस्था में इंजन को ठंडा करने के लिए हवा पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलती। अतः यह ठीक नहीं है। थ्रौटल को अपेक्षाकृत कम खोलने से एक ऐसी चाल प्राप्त की जा सकती है जिस पर इंजन की कम से कम शक्ति का प्रयोग हो तथा उसकी दक्षता अधिकतम हो।

आरोहण-क्रिया में ज्यों-ज्यों विमान वायुमण्डल की ओर जाता है वायु का घनत्व कम होता जाता है, जिससे विमान की चाल में वृद्धि और उसके उद्-भार, वातरोध, पंखों के नोद में कमी होती जाती है। इसके अतिरिक्त इंजन को जानेवाली हवा के भार में कमी आने पर इंजन शक्ति में भी कमी आती है और विमान के चालक को कम मात्रा में आक्सीजन गैस मिलती है। इन सब कारणों का विमान की दक्षता पर प्रभाव पड़ता है। इनमें से कुछ परस्पर इस प्रकार प्रतिक्रिया करते हैं कि कहीं समस्या और गंभीर बन जाती है और कहीं आपस में एक दूसरे की कमी भी पूरी हो जाती है। उदाहरणार्थ, विमान की उड़ान में उसके उद्भार बल को उसके भार के बराबर रखना आवश्यक है। घनत्व की कमी के कारण हुई उद्भार बल की कमी को, आक्रमण कोण के बढ़ाने से या हवाई चाल और तेज करने से या दोनों में वृद्धि करने से पूरा करना पड़ता है। परन्तु इस क्रिया से वातरोध में वृद्धि आना आवश्यक है। इस प्रकार वायु के घनत्व के कारण हुई वातरोध में कमी की पूर्ति हो जाती है। परिवर्ती चूड़ीदार पंखों के प्रयोग से घनत्व में कमी आने पर विमान के पंखों के नोद में जो कमी आती है, उसे पूरा किया जा सकता है। इंजन को अति आवेश में लाकर अधिक वायु दी जाती है और विमान चालक के लिए कृत्रिम आक्सीजन की व्यवस्था रहती है। इस प्रकार अधिक ऊँचाई पर उड़ान करते समय जो कठिनाइयाँ आती हैं उनको दूर करने की व्यवस्था रखी जाती है। सामान्यतः

पंखों से चलनेवाले विमानों में अधिक ऊँचाई पर उनकी न्यूनतम चाल में वृद्धि और अधिकतम चाल में कमी आने के कारण, विमान की आरोहण-दर में भी कमी आती है। जिस अंकित वायु-चाल पर आरोहण अच्छी प्रकार होता है उसमें भी ऊँचाई के साथ कमी आती है। सैनिक दृष्टिकोण से अधिक ऊँचाई पर विमान की दक्षता का अधिक महत्त्व है, यही कारण है कि सैनिक प्रयोग के लिए इंजन, पंखों तथा विमान को इस प्रकार बनाया जाता है कि एक निश्चित ऊँचाई पर (जैसे १६,००० फुट पर) उसमें अधिकतम दक्षता हो। ऐसे विमानों की इस निश्चित ऊँचाई से कम या अधिक ऊँचाई पर दक्षता कम होती है। ऊँचाई के साथ विमान की दक्षता को बढ़ाने की प्रक्रिया एक निश्चित ऊँचाई से आगे नहीं होती अर्थात् उसके पश्चात् विमान की आरोहण चाल शून्य के बराबर हो जाती है। उड़ान की इस अवस्था को 'छत्ती उड़ान' कहते हैं। असैनिक दृष्टिकोण से इसका विशेष महत्त्व नहीं है।

विमान के भार में वृद्धि या कमी आने पर उसकी कार्य-दक्षता पर भी प्रभाव पड़ता है। भार में वृद्धि होने पर उद्भार बल में भी वृद्धि करना आवश्यक है। इसके लिए आक्रमण-कोण में वृद्धि या उसी आक्रमण कोण पर चाल में वृद्धि करनी पड़ती है। विमान के भार की वृद्धि से, विमान की अधिकतम चाल में कुछ कमी आती है, आरोहण चाल में भी इसके कारण काफी कमी आयेगी और अवपात-चाल में वृद्धि होगी। यदि विमान की चालन व्यवस्था को जेट व्यवस्था में बदल दिया जाय तो अधिक चाल पर विमान की चालन-दक्षता में वृद्धि होने के अतिरिक्त इस प्रकार का विमान सामान्य विमान से निम्नलिखित बातों में भिन्न होगा। इस प्रकार के विमान को 'जेट विमान' कहा गया है।

१—जेट विमान का त्वरण बल, कम चाल पर, विशेषतः उड़ान के समय, बहुत कम होता है।

२—जेट विमान अधिक ऊँचाई की अपेक्षा कम ऊँचाई पर आर्थिक दृष्टि से बहुत अच्छा नहीं माना जा सकता। क्योंकि जेट विमान की चाल को दुगना करने से वातरोध, नोद, ईंधन के खर्च में लगभग चार गुना वृद्धि होती है जब कि

पंखे-चालित विमान की चाल को दुगना करने से वातरोध चार गुना, शक्ति आठ गुना और ईंधन का खर्च भी आठ गुना होता है।

३—जेट विमान में उसकी समतल उड़ान में प्राप्त वास्तविक वायुचाल लगभग सब ऊँचाइयों पर एक समान रहती है (अतः अंकित वायुचाल में कमी आती है) जब कि पंखे-चालित विमान में वास्तविक वायु-चाल बदलती है।

आरोहण-क्रिया के बाद, विमान वायुमण्डल में अपनी उड़ान आरम्भ करता है। सामान्यतः विमान अपनी उड़ान के दौरान में बहुत थोड़ी देर के लिए ही एक अपरिवर्तित वेग के साथ सरल रेखा में उड़ान करता है। विमान की ऐसी उड़ान को 'समतल उड़ान' कहते हैं। इसे उड़ान की मानक अवस्था माना जाता है और उड़ान की दूसरी अवस्थाओं की इससे तुलना की जाती है। इस कारण समतल उड़ान का एक विशेष महत्त्व है।
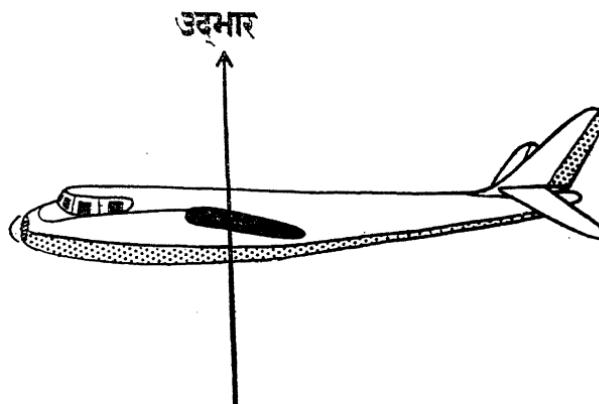
चित्र ४०—**उद्भार।**

उड़ान सम्बन्धी सिद्धान्तों के अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि उड़ान करते समय, विमान पर चार प्रकार के बल लगते हैं—

(क) उद्भार बल (मुख्य समतलों का) यह दाबकेन्द्र से ऊपर की ओर

उदग्र दिशा में कार्य करता है, क्योंकि इस दशा में विमान की गति क्षैतिज होती है।
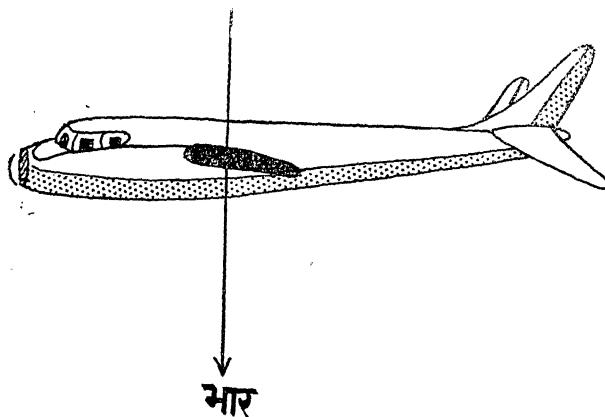
चित्र ४१—भार।

(ख) विमान का भार जो गुरुत्व केन्द्र से नीचे की ओर उदग्र दिशा में कार्य करता है।
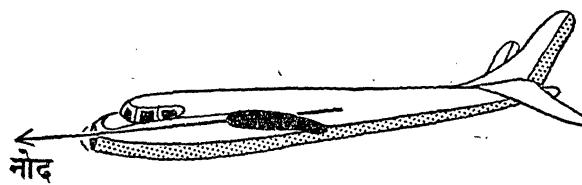
चित्र ४२—नोद।

(ग) विमान के पंखों का नोद जो इसे धुरा-दण्ड के साथ-साथ क्षैतिज दिशा में आगे की ओर खींचता है।

(घ) वातरोध बल जो पीछे की ओर क्षैतिज दिशा में कार्य करता है; इसके दो प्रकार हैं:—

१—पंखकाट का वातरोध बल।

२—विमान के अन्य भागों का वातरोध बल।

यहाँ सुविधा के लिए यह माना जा सकता है कि संयुक्त वातरोध बल की कार्यरेखा, वातरोध-बिन्दु से गुजरती है। इसका वास्तविक स्थान, विमान के भिन्न भागों के आपेक्षिक वातरोध पर निर्भर होगा।

यह चारों बल उड़ान के समय विमान को सन्तुलित रखते हैं। जब हम कहते हैं कि विमान २०० मील प्रतिघंटे की चाल से उड़ान कर रहा है तो यह इस गति की दशा में साम्यावस्था में होता है। इस दशा में इसके चारों बलों में सन्तुलन होता है। विमान की उड़ान की ऊँचाई को स्थिर रखने के लिए उद्भारबल का विमान के भार के बराबर होना आवश्यक है। एक ही वेग पर अर्थात् २०० मील प्रतिघंटे की नियमित चाल से चलने के लिए नोद बल का वातरोध बल के बराबर होना आवश्यक है।

सरल रेखा में समतल उड़ान के लिए, विमान को घूम जाने की प्रवृत्ति से रोकना भी आवश्यक है, इन चारों बलों के परिमाण के अतिरिक्त उन स्थानों पर भी जहाँ यह बल कार्य करते हैं। यदि दाब केन्द्र (जिससे उद्भार बल कार्य करता है), गुरुत्व-केन्द्र के पीछे हो तो विमान की नासा नीचे की ओर और पूंछ ऊपर की ओर उठेगी। इसके विपरीत अवस्था में पूंछ नीचे की ओर और नासा ऊपर की ओर उठेगी। इसी प्रकार यदि नोद की कार्यरेखा, वातरोध की कार्यरेखा से ऊपर हो तो इस व्यवस्था के कारण भी विमान की नासा नीचे की ओर होने लगेगी। इन प्रवृत्तियों को रोकने अथवा साम्यावस्था में रखने के लिए, विमान चालक को अपने नियन्त्रक यन्त्रों की सहायता लेनी पड़ती है। विमान बनानेवाले को इन सब बातों का ध्यान रखना पड़ता है। इसमें कई कठिनाइयाँ आती हैं जो इस प्रकार हैं—

(क) उद्भार बल—इसकी कार्यरेखा दाबकेन्द्र से गुजरती है। दाब केन्द्र पंखकाट की स्थिति पर निर्भर है। विमान बनानेवाले को विमान के कबन्ध के साथ पंखकाट को ठीक स्थान देना पड़ता है; यह न तो अधिक आगे होना चाहिए न अधिक पीछे। आक्रमण कोण में थोड़ी-सी वृद्धि होने पर उद्भार बल में परिवर्तन आता है और इसकी गति की दिशा अस्थायी हो जाती है। इस कारण यह समस्या और भी गंभीर बन जाती है।

(ख) विमान का भार—इसकी कार्य-रेखा गुरुत्व केन्द्र से गुजरती है। गुरुत्व केन्द्र, विमान के प्रत्येक भाग के प्रतिदाब और उसके स्थान पर निर्भर है। उद्भार बल की भाँति इसमें भी तबदीली आने की सम्भावना रहती है, क्योंकि उड़ान करते समय ईंधन कम होता है, बम इत्यादि गिराने में भी भार में कमी पड़ती है।

(ग) नोद बल—यहाँ समस्या कुछ सुगम है। इसकी कार्यरेखा विमान के पंखे के दण्ड पर निर्भर है जिसकी स्थिति, इंजन के स्थान पर निर्भर है। विमान निर्माण करनेवाला इसमें कुछ अधिक परिवर्तन नहीं कर सकता।

(घ) वातरोध बल—यह समस्या सबसे कठिन है। वातरोध विमान के तमाम भागों के वातरोध बल का योग है। प्रत्येक भाग का वातरोध मालूम कर उससे संयुक्त वातरोध की कार्यरेखा को मालूम करना तो कठिन है ही, परन्तु इसमें सफलता पा लेने के बाद भी भिन्न आक्रमण कोणों पर इसमें परिवर्तन आ सकता है।
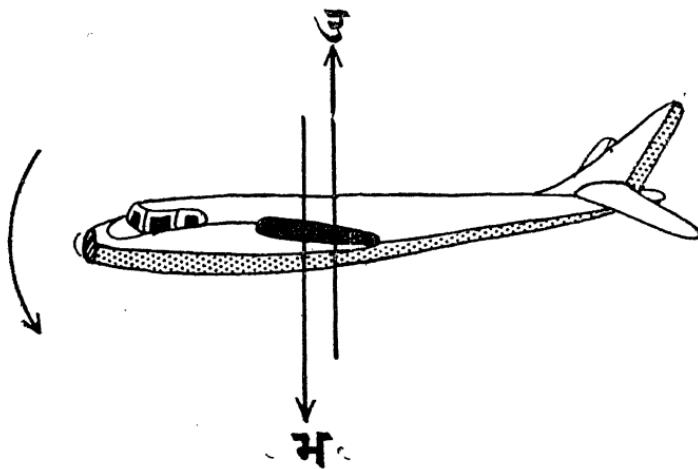
चित्र ४३—**विमान की नासा नीचे की ओर आने लगेगी।**

इन चार बलों को संतुलन में रखने में जो कठिनाइयाँ आती हैं उनका अध्ययन करने से हमें निम्नलिखित निष्कर्ष मिलते हैं—

(क) उद्भार बल यदि भार से कुछ पीछे हो तो इन बलों के कारण विमान की नासा नीचे की ओर आने लगेगी (चित्र ४३), जिसके कारण, इंजन के काम न करने पर, विमान विसर्पण करने की अवस्था में अपने आप आ जावेगा।

(ख) उद्भार बल यदि भार के आगे हो तो विमान में अवपात की प्रवृत्ति आ जावेगी।

अतः यदि पंखकाट को इस प्रकार रखें कि उद्भार बल, भार बल से पीछे रहे तो सामान्य क्षैतिज उड़ान में विमान की नासा की नीचे आने की प्रवृत्ति को रोकने के लिए अथवा सन्तुलन में रखने के लिए वातरोध बल की कार्यरेखा का नोद की कार्यरेखा के ऊपर होना आवश्यक है। ऐसा करने से विमान की पूँछ नीचे की ओर झुकने लगेगी (चित्र ४४), परन्तु इसके लिए नोद बल बहुत कम
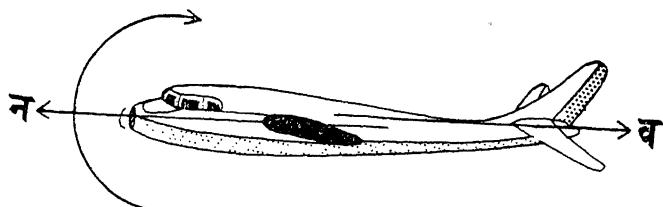
चित्र ४४—**विमान-पुच्छ नीचे की ओर झुकने लगेगी।**

होना चाहिए। नोद बल कम करने के लिए पंखों का व्यास कम करना पड़ता है या उन्हें जमीन के बहुत समीप रखना पड़ता है। ऐसा करना अन्य कारणों से ठीक नहीं है। राकेट और जेट विमानों में नोद की कार्यरेखा को नीचे रखना इतना कठिन नहीं है तो भी वातरोध बल की कार्यरेखा को अधिक ऊपर रखना कठिन है क्योंकि विमान का निचला भाग, काफी मात्रा में वातरोध बल देता है। एक और सुझाव नोद बल की कार्यरेखा को वातरोध बल की कार्यरेखा से ऊपर रखने का भी हो सकता है। ऐसी अवस्था में विमान नासा की ओर झुकने लगेगा। सामान्य उड़ान में इसको सन्तुलन में करने के लिए उद्भार बल को भार बल से आगे रखना पड़ता है। इस अवस्था में यदि इंजन रुक जाय तो नोद बल कार्य करना बन्द कर देगा, अतः विमान अवपात की दशा में आने लगेगा। नौसिखुए विमान चालक के लिए वह दशा भयानक सिद्ध होती है।

इन सब समस्याओं को सुलझाने के लिए इन बलों को जो आदर्श स्थान मिलना चाहिए वह चित्र ४५ में दिखाया गया है । जहाँ पर यह संभव नहीं है, विशेष तौर पर उड़न-नौका में, वहाँ पर इस व्यवस्था में अधिक सुधार लाने के लिए एक नयी व्यवस्था का प्रयोग किया जाता है जिसे 'पुच्छक-विमान' कहते हैं ।
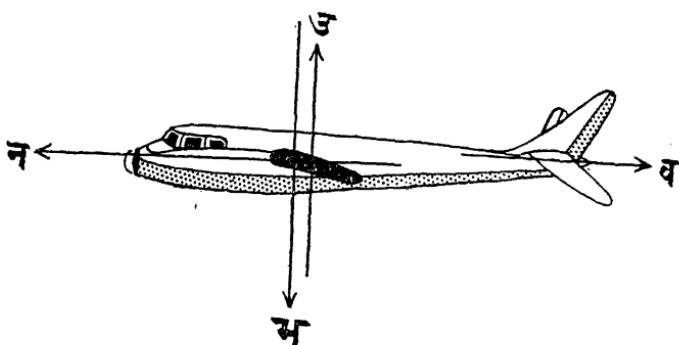
चित्र ४५—सामान्य उड़ान में विमान पर लगे बल ।

विमान के मुख्य समतलों (जिन्हें मुख्य उद्भार पंखकाट भी कहते हैं) के पीछे कुछ दूर पर एक छोटा-सा विमान लगा देते हैं । इसे ही 'पुच्छक-विमान' कहते हैं । यह इन चारों बलों को सन्तुलन में रखने के लिए ऊपर या नीचे की ओर आवश्यक मात्रा में बल देता है । मुख्य विमान पर लगे चारों बलों को सन्तुलन में रखने के लिए आवश्यक मात्रा में घूर्ण बल की आवश्यकता पड़ती है । पुच्छक-विमान पर थोड़ा-सा बल लगाकर यह प्राप्त हो सकता है । विमानों में पुच्छक-विमान अत्यन्त आवश्यक समझा जाता है । यदि किसी प्रकार किसी विशेष अवस्था में मुख्य विमान पर लगे चारों बलों को सन्तुलन में भी कर दिया जाय तो भी उड़ान करते समय यह विमान इस सन्तुलन की अवस्था को अधिक देर तक नहीं रख सकता । कुछ विमानों में यह पुच्छक-विमान इस प्रकार छिपाया गया होता है कि हम इसको कभी-कभी पुच्छकहीन मशीनों की संज्ञा देते हैं । इसके साथ ही इस प्रकार के विमानों में, उनके पंखों के

कोनों में पुच्छक-विमान के समान ही व्यवस्था रहती है। इस प्रकार यह कोनोंवाला भाग पुच्छक-विमान का कार्य करता है। वास्तव में हम कह सकते हैं कि पुच्छक रहित विमान में एक की अपेक्षा दो पुच्छक विमान होते हैं।

राइट-विमान में यह कार्य विमान के मुख्य भाग के आगे लगी एक पूंछ की आकृति वाली मशीन से होता था। वास्तव में इसे पूछ कहते कुछ हिचकिचाहट होती है, हालां कि इसका कार्य सामान्य पुच्छक-विमान के समान होता है। भिन्न-भिन्न अवसरों पर इस तरह के विमानों के काफी लाभ बताये गये हैं, परन्तु इन विमानों को अधिक सफलता नहीं मिली है।
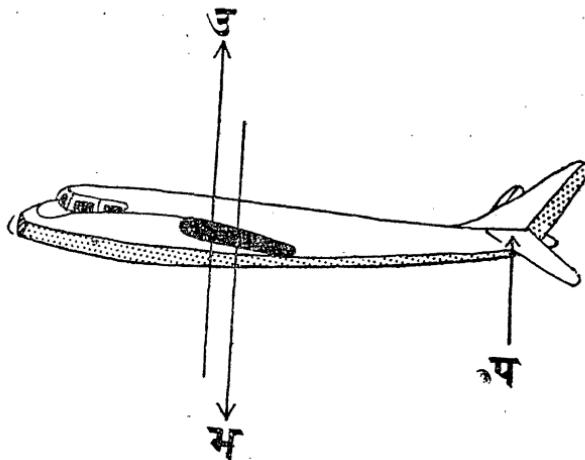
चित्र ४६—**कम चाल पर पूछ का ऊपर की ओर प्रतिदाब।**

ऐसे विमान में जिसमें चारों बल अपने आप सन्तुलन में रखे जा सकते हैं, पुच्छक-विमान केवल आवश्यकता पड़ने पर काम में आता है। इसलिए इसको ऐसे आक्रमण कोण पर रखते हैं कि सामान्य उड़ान में इसमें कोई प्रतिदाब न हो और अधिक चाल पर इसमें प्रतिदाब नीचे की ओर हो क्योंकि इस चाल पर मुख्य पंखकाट का आक्रमण कोण कम होता है, दाब-केन्द्र पीछे की ओर गति करेगा, नासा में नीचे की ओर झुकाव आ सकता है, इस प्रवृत्ति से बचने के लिए, पूंछ में भी नीचे झुकने की प्रवृत्ति लाना आवश्यक है, तदनुरूप कम

चाल पर अर्थात् पंखकाट के अधिक आक्रमण कोण पर, पुच्छक-विमान में प्रतिदाब की कार्यरेखा ऊपर की ओर होनी चाहिए।

इस प्रकार पुच्छक-विमान में प्रतिदाब नीचे या ऊपर की ओर हो सकता है। सामान्यतः इसकी उत्तलता संयमित होती है जिसके कारण वायुप्रवाह से शून्य डिग्री पर टकराने पर इससे उद्भार बल नहीं पैदा होता। इस कारण इस प्रकार के पुच्छक विमानों को उद्भार बल न देनेवाले पुच्छक-विमान कहते हैं। पुच्छक-विमान किस कोण पर लगाया जाता है यह भी महत्त्व की बात है। वह वायु जो पुच्छक-विमान से टकराती है, मुख्य पंखकाट पर से होकर आती है, इस कारण पुच्छक-विमान की दिशा में अनुधावन उत्पन्न होता है। मुख्य पंखकाट के आक्रमण कोण की अपेक्षा इस अनुधावन का कोण लगभग आधा होता है। यदि मुख्य पंखकाट वायु-प्रवाह से ४° का कोण बनाये तो पुच्छक-विमान से टकरानेवाली वायु २° का कोण बनायेगी। इसलिए यदि पुच्छक-विमान का रिंगर अवपात कोण २° रखा जाय तो यह वायु-प्रवाह के साथ सीधा टक्कर खायेगा और संयमित होने की अवस्था में नीचे या ऊपर की ओर कोई बल उत्पन्न न करेगा और अनुधावन-कोण मुख्य पंखकाट के आक्रमण कोण को बदल देगा। पंखों से चलनेवाले विमानों में पुच्छक-विमान सामान्यतः पंखों के पीछे की ओर जानेवाले वायु-प्रवाह में रहता है। यह वायु का घूमनेवाला भाग होता है। अतः वायु का यह भाग पुच्छक-विमान के दोनों भागों से भिन्न कोणों पर टकराता है। इसके अतिरिक्त विमान के कबन्ध और अन्य भाग द्वारा, पुच्छक-विमान से टकरायी वायु का, विक्षेप होने की सम्भावना रहती है, इन सब कारणों से पुच्छक-विमान के लिए कोण निश्चित करने में कठिनाई पड़ती है।

जिन विमानों में चारों बलों का परस्पर सन्तुलन नहीं हो पाता उनमें पुच्छक-विमान से इस सन्तुलन को स्थापित करने के लिए, स्थायी रूप से, इसकी सहायता से नीचे या ऊपर की ओर कार्य करनेवाला बल पैदा किया जाता है। ऐसा करने के लिए इनको सामान्य पंखकाट की भाँति उत्तल[1] बनाया जाता है। इस पर भी सन्तुलन की समस्या हल नहीं होती। पुच्छक-विमान का आकार और कोण निश्चित होने पर भी जो बल उस पर, सामान्य उड़ान के समय लगते

1. Camber
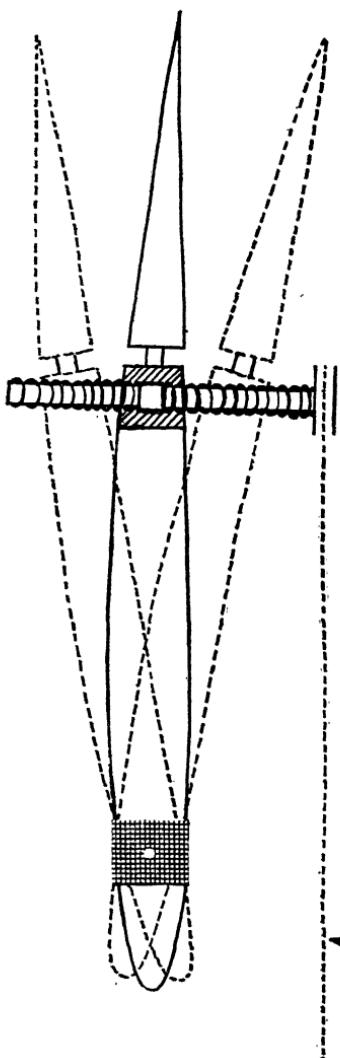
चित्र ४७—चालकघर से विमान के संचालन का नियंत्रण।

हैं वह चालक के नियन्त्रण के बाहर होते हैं। उनमें से बहुत से अपने आप ही एक दूसरे के प्रभाव को कम कर देते हैं, फिर भी ईंधन के जलने पर अथवा युद्ध में बम फेंकने के पश्चात् जो भार में कमी आती है उसको पूरा करने के लिए समंजनीय[1] पुच्छक-विमान की व्यवस्था की जाती है। इसका संचालन विमान में चालक-घर से होता है। इस व्यवस्था के कारण उड़ान के समय विमान-चालक पुच्छक-विमान के कोण को अपनी आवश्यकतानुसार बदल सकता है।

इस प्रकार सभी अवस्थाओं में विमान के सन्तुलन को स्थापित रखा जा सकता है। आज इस व्यवस्था का प्रयोग अपनी उपयोगिता के कारण लगभग सब प्रकार के विमानों पर होता है। उत्थापकों और ट्रिम्मिग[2] टेबों का भी प्रयोग इस उद्देश्य से किया जाने लगा है।

इस प्रकार जब पुच्छक-विमान पर कोई प्रतिदाब नहीं होता तो सन्तुलन की दशा इस प्रकार होती है।

१—उद्भार बल=भार बल।

२—नोद बल=वातरोध बल।

३—नासा से झुकाव खाने की प्रवृत्ति (उद्भार बल और भार बल के कारण) पूंछ में नीचे आने की प्रवृत्ति को सन्तुलन करती है। (नोद बल तथा वातरोध बल के कारण)।

यांत्रिकी में दो विपरीत और समानान्तर बलों को 'युग्म' कहते हैं। अतः उद्भार बल और भार बल युग्म है। इनमें घूर्ण की मात्रा, इनमें से एक बल और दोनों बलों के बीच की लम्बदूरी के गुणनफल के बराबर होती है। इसी प्रकार नोद बल और वातरोध बलयुग्म है। मान लीजिए भार बल २,००० पौंड है तो उद्भार बल भी २,००० पौंड होगा। सुविधा के लिए यह मान लें कि उद्भार बल कुल वातरोध बल का दस गुना है। मालूम है, अच्छे-से-अच्छे पक्ष से अच्छे-से-अच्छे कोण पर उद्भार बल कुल वातरोध से १२, १६ या २० गुना उत्पन्न होता है। यदि एक सामान्य विमान के लिए इस अनुपात को १:१० मान लें तो इसके अनुसार नोद बल २०० पौंड के बराबर होगा।

1. Adjustable 2. Trimming Tabs

स्पष्ट है कि २०० पौंड के नोद बल की सहायता से हम २,००० पौंड के विमान को उठा सकते हैं। यहाँ नोद बल की कार्यरेखा उदग्र नहीं होती बल्कि आगे की ओर होती है। (हेलिकोप्टर में यह उदग्र होती है)।

अब यदि नोद बल और वातरोध-बल की कार्यरेखा में लम्बदूरी (ख) हो और भार बल और उद्भार बल की यह दूरी (क) हो तो उड़ान के लिए आवश्यक है कि २०० (ख) = २००० क अर्थात्

क = १० ख होना चाहिए।

अतः यदि उद्भार बल तथा भार बल की लम्बदूरी १० है तो नोद बल तथा वातरोध-बल की लम्बदूरी एक होनी चाहिए (चित्र ४८)। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि उद्भार बल और वातरोध बल में जो अनुपात होगा वही इन दोनों बल-युग्मों की लम्बदूरियों में होना अभीष्ट होता है।

पुच्छक-विमान पर जब कोई बल न लगा हो तब यह परिणाम ठीक रहता है, परन्तु बल लगने की अवस्था में पूंछ-प्रतिदाब मालूम करने के लिए हम घूर्ण-सिद्धान्त का प्रयोग सफलतापूर्वक कर सकते हैं। उन अवस्थाओं में जहाँ क्षैतिज उड़ान में भी नोद बल की कार्यरेखा कुछ कोण पर झुकी हो तो समस्या कुछ कठिन हो जाती है। इससे सम्बन्वित समस्याओं को हल करने के लिए इस कार्यरेखा को दो भागों में बाँटना पड़ता है, उदग्र कार्यरेखा तथा क्षैतिज कार्यरेखा। विमान पर लगे बल का सन्तुलन करते समय उदग्र अवयव उद्-भार बल में जोड़ दिया जाता है तथा क्षैतिज अवयव, वातरोध के बराबर होता है। उसके पश्चात् सामान्य घूर्ण के सिद्धान्त के अनुसार, प्रतिदाब की मात्रा मालूम की जा सकती है। नोद बल की कार्यरेखा के थोड़े-से झुकाव से इसकी गुरुत्व केन्द्र से लम्बदूरी में कमी पड़ने लगती है और घूर्ण बल भी कम होने लगता है। पुच्छक-विमान को यह झुकाव जो बल देता है उसकी कार्य-रेखा नीचे की ओर होती है। इस कारण से हेलिकोप्टर की भाँति पंखों से उदग्र उद्भार बल प्राप्त करने की अपेक्षा, नोद-बल की कार्यरेखा से सहायता ली जाती है।

हैलिकोप्टर एक ऐसा विमान है जिसमें क्षैतिज तल में घूमनेवाले पंखों की सहायता से उत्पन्न नोद के कारण सारा उद्भार बल प्राप्त किया जाता

चित्र ४८—चारों बलों में सन्तुलन (पूंछ पर शून्य प्रतिदाब)
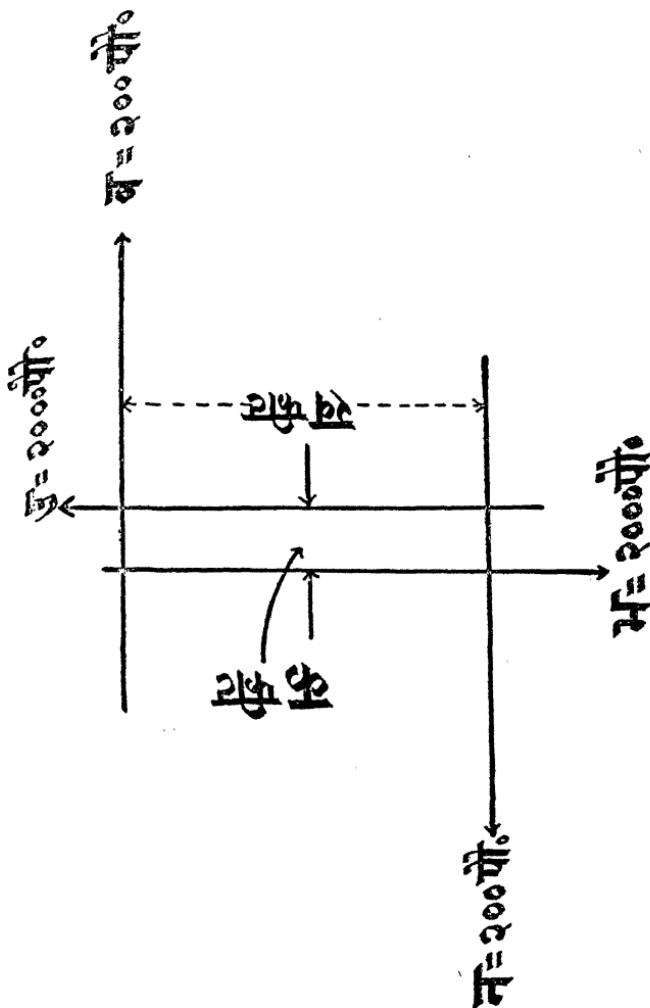
है। अतः सामान्य उड़ान में इस मशीन में नोद बल भार बल के बराबर होता है। एक सहायक इंजन और पंखे की सहायता से इसमें अग्रगति उत्पन्न की

जाती है। इन पंखों के विमोटन बल की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हेलिकोप्टर विपरीत दिशा में घूमना आरम्भ करता है जिससे विचलता की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है। इसको सन्तुलन में रखने के लिए, इसकी पूँछ पर एक सहायक पंखा लगा होता है। इस सहायक पंखे से इसकी गति की दिशा का भी नियन्त्रण होता है। हेलिकोप्टर मकानों की छतों पर उतर सकते हैं। नगरों की छोटी-छोटी गलियों से उड़ान कर सकते हैं। आगे-पीछे चल कर बिना रुके डाक इत्यादि को ले सकते हैं तथा दे सकते हैं, परन्तु इनकी पंखड़ियों के क्षैतिज तल में घूमने के कारण अधिक चाल से इनसे उड़ान करना सम्भव नहीं। इस अवस्था में हेलिकोप्टर की दिशा में एक समय में एक ही पंखड़ी घूम सकती है और इसकी वायु से आपेक्षिक चाल, इसकी घूर्णन गति और अग्रगति से प्राप्त संयुक्त चाल होगी। इससे पूर्व कि यह ध्वनि की चाल से उड़े इसकी घूमने-वाली पंखड़ियों के कोनों को वायु की संपीडचता के कारण उत्पन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। यही कारण है कि इसकी अधिकतम चाल २०० मील प्रतिघंटा ही रही है। फिर भी कुछ विशेष अवस्थाओं में इस मशीन की सामान्य विमान की अपेक्षा अधिक उपयोगिता है।

किसी भी चाल पर विमान की समतल उड़ान सम्भव है। एक विमान जो भिन्न वायुचालों पर समतल उड़ान कर रहा हो, वह वास्तव में भिन्न आक्रमण-कोणों पर उड़ान करता है। (वायु के प्रति इसका रुख भिन्न होगा) जब समतल उड़ान होती है तो विमान एक ही ऊँचाई पर रहता है, अतः विमान का पृथ्वी की ओर रुख भी भिन्न होगा। इसका ज्ञान विमान-चालक को अपने यन्त्र में अंकित क्षितिज से रहता है।

समतल उड़ान में उद्भार बल स्थिर रहता है और भार बल के बराबर होता है। हमारे सूत्र उद्भार=गुउ $\frac{१}{२}$ घ वे^{२} क्ष के पक्ष क्षेत्रफल (क्ष) में कोई तबदीली नहीं होती। राशि $\frac{१}{२}$ घ वे^{२} पिटेट नली और स्थैतिक नली के दाबान्तर को बतलाती है जो वायु-चाल सूचक से व्यक्त होती है। स्पष्ट है कि इस सूत्र के अनुसार यदि अंकित वायु-चाल में वृद्धि हो तो उद्भार गुणांक में उसके द्वारा कमी होगी अर्थात् उद्भार बल भार बल से बढ़ जायगा। यदि अंकित वायु-चाल में कमी हो तो उद्भार बल गुणांक में वृद्धि होगी अर्थात् भार बल उद्-

भार बल की अपेक्षा अधिक होगा। परन्तु उद्भार बल गुणांक पक्षों के आक्रमण कोण पर निर्भर है। उद्भार बल गुणांक में वृद्धि, आक्रमण कोण में वृद्धि होने पर, अवपात कोण की सीमा तक ही होगी। अतः हम कह सकते हैं कि प्रत्येक आक्रमण कोण के अनुरूप एक अंकित वायुचाल है। विमान चालक के पास ऐसा कोई यन्त्र नहीं होता जिससे आक्रमण-कोण के पाठ्यांक का पता लग सके जैसे कि वायुचाल सूचक द्वारा उसे अंकित वायुचाल का पता लगता है। हम कह सकते हैं कि यदि विमान के भार में कोई तबदीली न हो तो वायुचाल सूचक से प्राप्त वायुचाल के प्रत्येक पाठ्यांक के अनुरूप एक आक्रमण कोण होता है जिस पर समतल उड़ान सम्भव है।

प्रायः यह देखा गया है कि कम चाल पर जब विमान उड़ान करता है तो उसकी वायुचाल में एक निश्चित वृद्धि होने पर उसके आक्रमण कोण में जो वृद्धि होती है वह उस वृद्धि की अपेक्षा अधिक होती है जो उसी विमान के अधिक चाल पर उड़ान करते समय उसकी वायुचाल की एक निश्चित मात्रा में वृद्धि होने पर होती है। उदाहरण के लिए यदि आक्रमण कोण १६० मील प्रति घंटे की चाल पर १४० मील प्रति घंटे की चाल की अपेक्षा ५° अधिक है तो ३०० मील प्रति घंटे की चाल पर २८० मील प्रति-घंटे की चाल की अपेक्षा $\frac{1}{2}$° अधिक होगा। अनुपात में इतना अन्तर होना एक बहुत बड़ी बात है; यही कारण है कि विशेष तौर पर कम चाल पर आक्रमण-कोण सूचक की आवश्यकता अनुभव की जाती है।

वायुचाल और आक्रमण-कोण के सम्बन्ध में ऊँचाई का भी प्रभाव पड़ता है। इस सम्बन्ध में उद्भार गुणांक के सूत्र के आधार पर कह सकते हैं कि समतल उड़ान में यदि अंकित वायुचाल एक समान रहे तो आक्रमण कोण अथवा विमान का वायु के प्रति रुख प्रत्येक ऊँचाई पर एक समान रहता है, क्योंकि वायुचाल-सूचक पिटेट नली और स्थैतिक नली के दाबान्तर को व्यक्त करता है। अतः एक ही अंकित वायुचाल पर इसकी मात्रा एक समान होगी और उद्भार बल तथा वातरोध बल की मात्रा भी एक समान ही होगी। परन्तु भार में कमी आने पर विमान के सन्तुलन को स्थापित रखने के लिए, उद्भार बल में भी कमी करनी पड़ेगी जिसके लिए या तो विमान के आक्रमण कोण में

या चाल में कमी करनी पड़ेगी या दोनों बातें एक साथ करनी होंगी। कुछ भी हो, ऐसी दशा में वायुचाल और आक्रमण कोण का भी एक नया सम्बन्ध स्थापित होता है। अतः कहा जा सकता है कि विमान के कुल भार में कमी पड़ने पर उस कमी के अनुसार ही अंकित वायुचाल में भी कमी पड़ती है जो दिये हुए आक्रमण कोण के अनुरूप होती है।

विमान की उड़ान में चालक का एक मुख्य उद्देश्य विमान की अधिकतम दक्षता होता है। कभी हमें अधिकतम दूरी ईंधन की एक निश्चित मात्रा में ही तय करनी होती है, कभी बहुत तीव्र गति से उड़ान करना हमारा उद्देश्य होता है। इस क्षेत्र की ये बहुत बड़ी व्यावहारिक समस्याएँ हैं।

विमान और उसके इंजन से अधिकतम लाभ उठाने के लिए विमान-चालक को केवल उड़ान-विद्या में ही दक्ष होना आवश्यक नहीं है, अपितु उसे तत्परबुद्धि का भी होना चाहिए। ऐसी समस्याओं का सम्बन्ध इंजन, पंखे, विमान तथा वायु से है। यहाँ हम यह मानकर कि वायु स्थिर है इस समस्या पर विचार करेंगे।

सामान्यतः विमान में किसी एक प्रकार के ऊष्मा-इंजन का प्रयोग होता है। इस इंजन का काम ईंधन जलाकर ऊष्मा-ऊर्जा प्राप्त करना और इसे यांत्रिक ऊर्जा में बदलना रहता है। ईंधन की एक निश्चित मात्रा से अधिकतम कार्य लेने के लिए आवश्यक है कि इस ईंधन से अधिकतम ऊष्मा प्राप्त की जाय और उसके पश्चात् बहुत ही सफल और उत्तम साधन से इसे यांत्रिक ऊर्जा में बदलें। यह सफलता अच्छे ईंधन और अच्छे इंजन के अतिरिक्त चालक पर भी निर्भर है, क्योंकि ईंधन से अधिकतम ऊष्मा प्राप्त करने के लिए इसे ठीक प्रकार से चलाना आवश्यक है (अर्थात् वायु और ईंधन का मिश्रण ठीक प्रकार से बनना चाहिए)। इसके अतिरिक्त पंखे की गति तथा दाब का भी इंजन की दक्षता पर प्रभाव पड़ता है (राकेट इंजन में पंखे के चक्रों की समस्या नहीं होती)।

इंजन और पंखे के कार्य विमान की दक्षता को भली भाँति समझने के लिए एक उदाहरण यहाँ अप्रासंगिक न होगा। विमान का एक गैलन ईंधन ७ पौंड

के लगभग होता है। एक पौंड ईंधन भली भाँति जलने पर १९,००० *ब्रिटिश ऊष्मा मात्रक देता है। इस प्रकार एक पौंड ईंधन से १९,००० पौंड पानी के ताप में एक डिग्री फा० की वृद्धि होनी चाहिए। इसी प्रकार ७७८ फुट पौंड यांत्रिक कार्य करने पर हम एक ब्रिटिश ऊष्मा मात्रक पैदा कर सकते हैं अर्थात् हम एक पौंड पानी के ताप में एक डिग्री फारेनहाइट वृद्धि कर सकते हैं। परन्तु एक ब्रिटिश ऊष्मा मात्रक से ७७८ फुट पौंड यांत्रिक कार्य उत्पन्न करना असम्भव-सा लगता है। विमान के इंजन में भी इसी प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न करने का प्रयास किया जाता है और इस इष्ट सफलता के न मिलने पर हम उस इंजन को दक्षताहीन इंजन कहते हैं। अच्छे से अच्छे इंजन में अच्छे से अच्छे चालक के हाथों से इस मात्रा का केवल ३० प्रतिशत यांत्रिक कार्य के रूप में प्राप्त होता है। इस प्रकार इंजन एक गैलन ईंधन से ७×१९,०००×७७८ फुट पौंड का ३० प्रतिशत यांत्रिक कार्य विमान के पंखों को देता है (अर्थात् ३१,०००,००० फुट पौंड)। इसका लगभग २० प्रतिशत पंखों की हीन-दक्षता के कारण नष्ट हो जाता है। इस प्रकार विमान को केवल २५,०००,००० फुट पौंड यांत्रिक कार्य प्राप्त होता है। इससे एक तथ्य और स्पष्ट होता है कि विमान को अधिकतम दूरी पर ले जाने के लिए हमें इसे न्यूनतम भार से खींचना चाहिए। इस सिद्धान्त में अधिकतम परास में उड़ान करने का मानो सार छिपा है। इस सिद्धान्त के अनुसार इस प्रकार उड़ान करनी चाहिए कि विमान के पंखे उस न्यूनतम नोद बल को दें जिस पर समतल उड़ान सम्भव है। न्यूनतम नोद बल का अर्थ न्यूनतम वातरोध बल है, क्योंकि समतल उड़ान में यह दोनों बल बराबर होते हैं।

न्यूनतम वातरोध पर विचार करने पर सबसे पहले हमारा ध्यान विमान की धारारैखिक आकृति पर जाता है, क्योंकि धारारैखिक आकृति कम से कम वातरोध देती है। किन्तु ऐसा होता नहीं है, क्योंकि ऐसी आकृति से तेज चाल प्राप्त होती है और तेज चाल से अधिक वातरोध। दूसरी ओर समतल उड़ान पर भी न्यूनतम चाल के साथ उड़ान करते समय वातरोध भी न्यूनतम रहना चाहिए, ऐसा सोचना युक्तिसंगत नहीं होगा। इस अवस्था में आक्रमण कोण के

*ब्रिटिश ऊष्मा मात्रक एक मात्रक है। एक पौंड जल में १० फारेनहाइट ताप की वृद्धि के लिए जितनी ऊष्मा की आवश्यकता पड़ती है उसे एक 'ब्रिटिश ऊष्मा मात्रक' कहते हैं।

अधिक होने के कारण (१५°) प्रेरित वातरोध की मात्रा बहुत अधिक होती है, जिसके कारण चालक को अपने विमान को वायु में रखने के लिए अधिक प्रयास करना पड़ता है। अतः इस समस्या के हल के लिए बीच का मार्ग ही अपनाया जाता है।

यदि $\frac{\text{उद्भार}}{\text{वातरोध}}$ अनुपात अधिकतम हो तो वातरोध न्यूनतम होगा। प्रत्येक ऊँचाई और प्रत्येक भार के लिए $\frac{\text{उद्भार}}{\text{वातरोध}}$ के अधिकतम अनुपात के लिए आक्रमण कोण एक ही रहता है। इसका अर्थ यह हुआ कि तदनुरूप वायुचाल भी प्रत्येक ऊँचाई पर स्थिर रहेगी, परन्तु प्रतिदाब बढ़ने पर यह कुछ बढ़ेगी। एक निश्चित ऊँचाई पर एक निश्चित वायुचाल, एक निश्चित वातरोध को व्यक्त करती है और इसलिए एक निश्चित परास को भी।

इसी प्रकार अधिक चाल जो अधिक भार के लिए प्रयुक्त होती है, अधिक वातरोध को व्यक्त करती है, क्योंकि भार बढ़ने से उद्भार बल में वृद्धि होने के कारण $\frac{\text{उद्भार}}{\text{वातरोध}}$ अनुपात बढ़ जाता है। अतः अतिरिक्त भार अतिरिक्त वातरोध को व्यक्त करता है—अर्थात् कम परास (इसके समानुपात)। इस प्रकार एक गैलन ईंधन के यांत्रिक कार्य (२५,०००,००० फुट पौंड) से

१३० मील प्रति	घंटे की चाल से		१·९९ मील
१४०	,,	,,	२·८४ मील
१६०	,,	,,	३·५७ मील

उड़ान सम्भव होगी। यदि प्रतिदाब १०,००० पौंड से २०,००० पौंड कर दिया जाय तो प्रत्येक दूरी को दो से भाग देना होगा।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अधिकतम परास प्राप्त करने के लिए एक निश्चित आक्रमण कोण पर उड़ान करनी होगी अर्थात् एक दी हुई चाल पर किसी भी ऊँचाई पर कम से कम भार रखना होगा। यदि भार को बढ़ाया जाय तो वायुचाल को भी बढ़ाना होगा। विमान में जेट और पंखों की चालन-व्यवस्था तथा वायु के प्रभाव के कारण इस नियम से कुछ हटना पड़ता है।

यह ठीक है कि प्रत्येक ऊँचाई पर एक ही अंकित वायुचाल के लिए वातरोध बल की मात्रा भी एक ही रहती है, परन्तु शक्ति की मात्रा तो एक ही नहीं होगी। (यांत्रिकी में कार्य करने की दर को शक्ति कहते हैं) । विमान का ईंधन कुछ फुट पौंड यांत्रिक कार्य देता है। शक्ति, वातरोध और वेग (वास्तविक वायुचाल) के गुणनफल के बराबर होती है । इस प्रकार इसके ईंधन की शक्ति को वास्तविक वायुचाल निर्धारित करती है। एक ही अंकित वायुचाल पर वास्तविक वायुचाल में जितनी अधिक ऊँचाई पर उड़ान करते हैं उस ऊँचाई के समानुपात वृद्धि होती है। अतः उतनी ही अधिक शक्ति की आवश्यकता पड़ेगी ।

आजकल के द्रुतगामी विमानों में समुद्री सतह से एक निश्चित ऊँचाई पर उड़ान करते समय इंजनों की दक्षता अधिकतम होती है। ये विमान यदि उस ऊँचाई के आसपास ही उड़ान करें तो इनको न्यूनतम वातरोध का सामना करना पड़ेगा, परन्तु इससे कम चालपर उड़ान करते समय इंजन से कम शक्ति की आवश्यकता पड़ेगी । ऐसी अवस्था में इंजन इष्टप्रद नहीं होता, क्योंकि वह अपनी अभीष्ट दक्षता के अनुसार कार्य नहीं कर पाता । अतः अधिकतम परास के लिए इंजन और विमान दोनों की अधिकतम दक्षता का लाभ उठाने के लिए आवश्यक यह है कि ऐसी ऊँचाई पर उड़ान की जाय जहाँ पर इंजन पूरी दक्षता से कार्य कर सके। इसी प्रकार वायु के प्रवाह की दिशा का प्रभाव भी विमान की दक्षता पर पड़ता है। परन्तु ऊँचाई के साथ वायु की गति की दिशा बदलती है और उसके वेग में वृद्धि होती है। एक कुशल चालक परिस्थितियों के अनुसार अपनी उड़ान की ऊँचाई निश्चित कर इसके प्रभाव को कम कर सकता है।

कभी-कभी ईंधन की एक निश्चित मात्रा की सहायता से चालक अपने विमान को वायु में अधिक देर तक रखना चाहता है। अधिकतम क्षमता प्राप्त करने के लिए एक निश्चित समय में न्यूनतम ईंधन का प्रयोग किया जाना आवश्यक है अर्थात् कम से कम शक्ति का प्रयोग किया जाय ।

प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि उत्तम क्षमतावाली उड़ान के लिए चाल, उत्तम परास की चाल की अपेक्षा कम होनी चाहिए। यहाँ पर

इसका विमान की वास्तविक वायुचाल से सम्बन्ध होता है, अतः जितनी कम ऊँचाई पर उड़ान होगी उतनी ही उसकी क्षमता अधिक होगी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अधिकतम क्षमता प्राप्त करने के लिए, विमान, इंजन और चालन इन तीनों अवस्थाओं में से प्रत्येक से अधिकतम दक्षता प्राप्त करना हमारा उद्देश्य रहता है। यह बात सब प्रकार के विमानों के लिए सत्य है चाहे वह जेट चालन-व्यवस्था से युक्त हो, चाहे राकेट चालन-व्यवस्था से। सिद्धान्त एक ही है। केवल इन तीनों में से किसी में किसी की दक्षता को प्रधानता दी जाती है, किसी में किसी की दक्षता को।

विमान का निर्माण करते समय इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि ऊँचाई के अधिकतम परास में उड़ान करते समय, इसे न्यूनतम वातरोध का सामना करना पड़े। इसी प्रकार यदि हम न्यूनतम वातरोध के एक ही रुख में उड़ान करें तो कुछ भी ऊँचाई हो परास एक ही होगी। पंखों से चलनेवाले विमानों में यह नियम साधारणतः ठीक बैठते हैं, परन्तु जेट चालन-व्यवस्था से युक्त विमानों में निम्नलिखित दो कारणों से ऐसा नहीं होता--

(क) औसत विमानों में पंखे का नोद[1] बल अग्र चाल बढ़ने के साथ कम हो जाता है परन्तु जेट का नोद बल लगभग सब चालों पर स्थिर रहता है।

(ख) ईंधन का व्यय इंजन में उत्पन्न शक्ति के समानुपात होता है, परन्तु जेट में नोद के समानुपात होता है।

इससे स्पष्ट है कि जेट चालन-व्यवस्था की दक्षता चाल के साथ बढ़ती है और विमान की दक्षता पर इसका प्रभाव पड़ने के कारण इस पर ध्यान देना आवश्यक है। वातरोध अथवा नोद बल की तुलना में अधिकतम चाल प्राप्त करने पर ही वास्तव में सब कुछ निर्भर होता है। संक्षेप में इस प्रकार के विमानों में $\frac{\text{वातरोध}}{\text{चाल}}$ के न्यूनतम अनुपात पर उड़ान करना अच्छा रहता है और यह न्यूनतम वातरोधवाली चाल से अधिक चाल पर ही होता है। अतः अधिकतम परास प्राप्त करने के लिए जेट विमान को पंखों से युक्त विमान से कहीं अधिक चाल पर उड़ान करना आवश्यक है। जेट विमान में ईंधन का

1. Thrust

व्यय नोद बल के समानुपात होता है, अतः अधिकतम क्षमता-उड़ान के लिए, इसे न्यूनतम नोद बल के साथ उड़ान करना होगा। इस प्रकार जेट विमान की क्षमता चाल[1], पंखों से युक्त विमानों की परास-चाल से समानुरूप है। इस प्रकार अधिकतम क्षमता की दशा में जेट विमान के लिए उड़ान करना सुगम होता है। किसी भी ऊँचाई पर ईंधन का व्यय और नोद बल एक ही अंकित वायु-चाल के लिए समान होगा, विमान की क्षमता के लिए हम किस ऊँचाई पर उड़ान करते हैं इसका कोई अन्तर नहीं पड़ता। इंजन की दक्षता को ध्यान में रखते हुए तो अधिक ऊँचाई पर उड़ान करने में बहुत-से फायदे हैं।

विमान की उड़ान में समतल उड़ान तो उसकी उड़ान के केवल एक अंश की पूर्ति करती है। वायुमण्डल में भिन्न-भिन्न दिशाओं तथा चाल पर चालक अपने विमान की उड़ान करता है, उड़ान की इस प्रकार की गति 'सुचालन' कहलाती है।

गति की जितनी स्वतन्त्रता विमान को उड़ान करते समय होती है उतनी परिवहन के किसी भी अन्य साधन को प्राप्त नहीं है। विमान की स्वतन्त्र संख्या को ६ माना जा सकता है। वह ऊपर-नीचे चारों दिशाओं में उड़ान कर सकता है। इनका इसके निम्नलिखित तीन अक्षों की सहायता से वर्णन किया जा सकता है।

(१) **अनुदैर्घ्य अक्ष**[2]—यह गुरुत्व केन्द्र के आरपार की सरल रेखा है। जब विमान रिगर अवस्था में होता है तो यह क्षैतिज होती है। (समतल उड़ान के रुख में) विमान इस अक्ष के साथ-साथ आगे या पीछे की ओर चल सकता है। पीछे की ओर गति, जैसे पूँछ फिसलना, विमान का बहुत ही विरल सुचालन है। इसके विपरीत आगे की ओर गति जो समतल उड़ान का मुख्य अंग है एक सामान्य और हर क्षण होनेवाला सुचालन है।

(२) **सामान्य अक्ष**—यह भी गुरुत्व केन्द्र के आर-पारवाली रेखा होती है परन्तु जब विमान रिगर अवस्था में होता है तो यह उदग्र अवस्था में होती है। अतः यह अक्ष अनुदैर्घ्य अक्ष के समकोण होता है। विमान इस अक्ष के

1. Endurance speed 2. Longitudinal axis
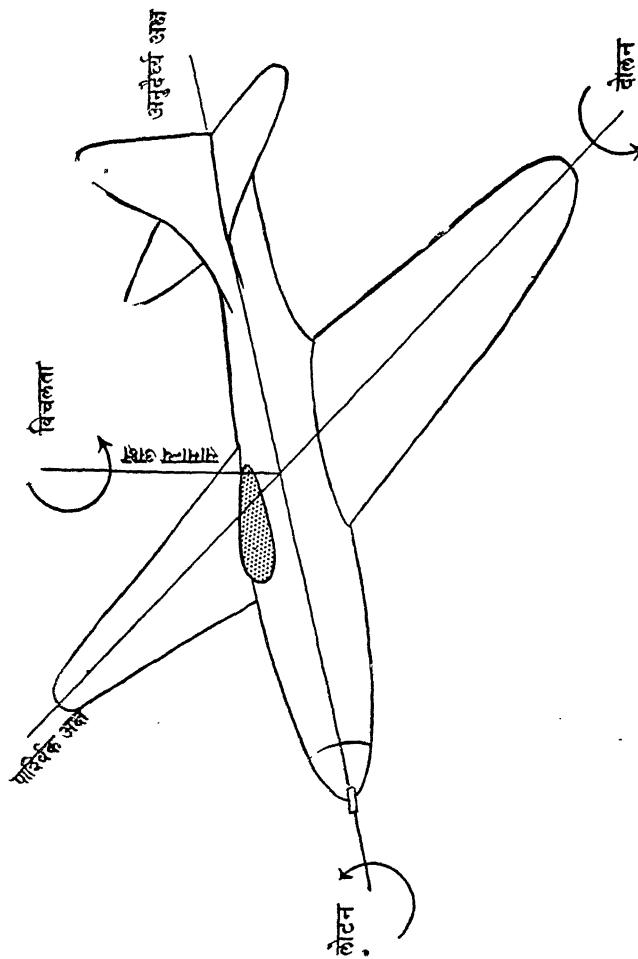
चित्र ४९—उड़ान में विमान के सुचालन।

साथ-साथ ऊपर या नीचे की ओर गति कर सकता है जैसा कि वह आरोहण क्रिया तथा उतरते समय की क्रिया में कर सकता है, परन्तु ऐसा अक्सर नहीं होता क्योंकि इन क्रियाओं को विमान के अनुदैर्घ्य अक्ष को क्षितिज से कुछ

झुकाकर, उस अक्ष की रेखा में उड़ान करके सम्पन्न कर लिया जाता है। विमान के सामान्य अक्ष के चारों ओर उसकी घूर्णन गति को विमान की 'विचलता'[1] कहते हैं।

(३) **पार्श्विक अक्ष**—गुरुत्व केन्द्र के आर-पार उस रेखा को जो अनुदैर्घ्य तथा सामान्य अक्ष दोनों के समकोण हो, 'पार्श्विक अक्ष' कहते हैं। जब विमान रिंगर अवस्था में होता है तो यह क्षैतिज और पक्ष के कोरों को मिलानेवाली रेखा के समानान्तर होता है। विमान इसके दायें या बायें गति कर सकता है। इस प्रकार की गति को 'बगल-फिसलन' कहते हैं। इस अक्ष के चारों ओर विमान की घूर्णन गति को 'दोलन गति' कहते हैं।

विमान की गति में ये अक्ष सदैव की सापेक्ष एक निश्चित अवस्था में रहते हैं अर्थात् पार्श्विक अक्ष विमान के किसी भी रुख में सदैव के कोरों को मिलाने-वाली रेखा के समानान्तर होता है।

इस प्रकार विमान का सुचालन निम्नलिखित एक या एक से अधिक गतियों का मिश्रण होता है; १—आगे या पीछे की ओर गति, २—नीचे या ऊपर की ओर गति, ३—दायें-बायें गति, ४—लोटन गति, ५—विचलता, ६—दोलन गति[2]।

इनमें से कुछ तो साम्यावस्था की भिन्न दशाएँ हैं और उनका वर्णन समतल उड़ान, आरोहण इत्यादि का वर्णन करते समय किया जा चुका है। यहाँ पर हम संक्षेप में कुछ ऐसे सुचालनों का वर्णन करेंगे जिनका दिशा या चाल या दोनों में परिवर्तन से सम्बन्ध है। इस प्रकार बदल को 'विमान का त्वरण' कहते हैं। ऐसे सुचालनों में विमान अपनी साम्यास्था में नहीं रहता। इनमें चालक के लिए मनोरंजन की पर्याप्त सामग्री रहती है और ये अभ्यास जटिल भी होते हैं।

विमान की उड़ान की रेखा के साथ इसकी चाल में जो त्वरण आता है उसका विशेष महत्त्व नहीं होता। त्वरण की मात्रा उड़ान-दौड़ के समय अधिकतम होती है। विमान की चाल में अपनी दिशा को बदलते समय जो

1. Yawing 2. Pitching

त्वरण आता है उसका बहुत महत्त्व है। इस क्रिया का यांत्रिकी में न्यूटन के प्रतिपादित तीन निम्नलिखित नियमों से गहरा सम्बन्ध है—

(१) न्यूटन का पहला नियम यह है कि एक वक्र मार्ग में घूमनेवाले पिण्ड में किसी भी क्षण अपनी गति की दिशा में उसी वेग से चलने की प्रवृत्ति होती है। अतः इस पिण्ड की गति को वक्र मार्ग में रखने के लिए इसकी गति में उस मार्ग के केन्द्र की ओर बदल उत्पन्न करना पड़ता है। इसी बदल को 'त्वरण' कहते हैं।

(२) इस त्वरण को उत्पन्न करने के लिए बाह्य बल की आवश्यकता होती है और दूसरे नियम के अनुसार इस बाह्य बल की दिशा केन्द्र की ओर होनी चाहिए। जितनी मात्रा में त्वरण की आवश्यकता होती है यह बल उसके समानुपात होता है। इसे 'अभिकेन्द्र बल' कहते हैं। इसकी मात्रा पिण्ड के द्रव्य-मान तथा त्वरण के गुणनफल के बराबर होती है।

(३) न्यूटन के तीसरे नियम के अनुसार, प्रत्येक क्रिया की बराबर मात्रा में प्रतिक्रिया होती है, अतः इस अभिकेन्द्र बल के प्रतिक्रिया रूप विपरीत दिशा में और बराबर मात्रा में जो बल उत्पन्न होता है, उसे 'अपकेन्द्र बल' कहते हैं।

किसी भी वक्रमार्ग में उड़ान करते समय विमान में उत्पन्न त्वरण की मात्रा जानने के लिए उसके वेग के वर्ग को उसके वक्र मार्ग की त्रिज्या से भाग देते हैं। इस प्रकार वेग और वक्र मार्ग की त्रिज्या पर त्वरण निर्भर है। एक विमान अपनी उड़ान में जब उदग्र दिशा में चक्र घूमता है (जिसे उलटी भी कहते हैं) तो इस क्रिया में अभिकेन्द्र बल के अतिरिक्त इसके भार का भी प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ, एक पौंड वजन के एक पत्थर में वक्र मार्ग से घूमने के लिए एक निश्चित मात्रा में त्वरण पैदा करने के लिए मान लीजिए कि ८ पौंड अभिकेन्द्र बल की आवश्यकता पड़ती है। क्षैतिज चक्र में घूमने पर इस पत्थर के भार की कार्य-रेखा अभिकेन्द्र बल की दिशा में ही होगी अतः इसका अभिकेन्द्र बल की मात्रा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। परन्तु उर्ध्वा-धर गति में जब पत्थर ऊपर से नीचे की ओर आना शुरू करेगा तो पत्थर का

अपना भार भी केन्द्र की ओर लगेगा, जिसके कारण हमें केवल ७ पौंड अभि-केन्द्र बल की आवश्यकता होगी, परन्तु नीचे से ऊपर की ओर जाते समय इस बल को पत्थर के भार को भी ऊपर की ओर खींचना पड़ेगा। इस प्रकार ९ पौंड अभिकेन्द्र बल की आवश्यकता होगी। और यह बल ७ पौंड से ९ पौंड के बीच में घटता-बढ़ता रहेगा। ठीक इसी प्रकार विमान की उड़ान में उसकी ऊर्ध्वाधिर गति (अर्थात् उलटी की क्रिया) में उसके भार का प्रभाव पड़ता है। उड़ान करते समय, विमान में उत्पन्न त्वरण को मापने के लिए जिस यन्त्र का प्रयोग करते हैं उसे "त्वरण मापी" कहते हैं।

जब कोई विमान नीचे की ओर डुबकी मारता है तो ज्यों-ज्यों वह नीचे की ओर आता है, गुरुत्वाकर्षण बल अधिक होता जाता है जिसके फलस्वरूप विमान के पक्षों के प्रतिदाब में भी वृद्धि होती है। इस प्रकार विमान को कुल भार बढ़ता-सा लगता है। अवपात-चाल में भी पक्ष-प्रतिदाब के वर्ग के समानुपात बढ़ोतरी होती है। अधिक चाल पर अवपात करना बहुत खतरनाक है, यदि विमान भूमि के बहुत समीप हो तो इस अवस्था में वह बहुत तीव्रता से नीचे आयेगा और सम्भव है कि वह चक्कर भी खाने लगे जो इसके लिए खतरनाक होता है।

त्वरण मापी[1] परीक्षणों से पता लगता है कि सामान्य सुचालन क्रिया में विमान के भार में सामान्य भार से तीन गुना वृद्धि बहुत कम होती है, लेकिन अभ्यास-युद्ध में विमान की दिशा में अचानक परिवर्तन करने से यह वृद्धि चार गुना भी हो सकती है। उलटी उड़ान और सुचालन में इसकी मात्रा आधी रह जाती है। हवाई-करतबों के दौरान में इस अतिरिक्त भार को सहन करने के लिए विमान के प्रत्येक भाग को एक निश्चित प्रतिदाब गुणांक से व्यक्त किया करते हैं जो ४ और ८ के बीच होता है। अर्थात् इन भागों को समतल उड़ान के लिए जिस मजबूती की आवश्यकता होती है उससे इन्हें ४ से ८ गुना अधिक मजबूत बनाया जाता है।

विमान की उड़ान में मोड़ लेते समय भीतरी अभिकेन्द्र बल कभी-कभी

1. Accelerometer

से प्राप्त किया जाता है। विमान के पक्ष की गति से उसका एक पंखकाट नीचे की ओर हो जाता है और दूसरा ऊपर उठ जाता है। इसस उद्भार बल विमान को उठाने के अतिरिक्त मोड़ के केन्द्र की ओर एक अवयव देता है। इससे विमान को वृत्ताकार पथ में खींचने के लिए एक विशाल बल मिल जाता है तथा इससे विमान सुव्यवस्थित दशा में आ जाता है। प्रत्येक मोड़ के लिए किसी निश्चित वेग पर कोण भी निश्चित होता हैं जिसे 'कन्नी का कोण' कहते हैं। यह कोण विमान के भार से स्वतन्त्र होता हैं। मोड़ में समतल उड़ान की अपेक्षा पक्षों को अधिक उद्भार बल की आवश्यकता होती है। उद्भार बल कन्नी-कोण के अनुपात में तीव्रता से बढ़ता है, अर्थात् समतल उड़ान में पक्ष जितने भार को उठाते हैं उसकी अपेक्षा मोड़ में वह अधिक भार को उठाते हैं। ६०° के कन्नी कोण पर जो मात्रा उद्भार बल की होगी, वह ७५½° के कन्नी-कोण पर इससे दूनी तथा ८४½° के कन्नी-कोण पर इससे पाँच गुना होगी। इस प्रकार कन्नी-कोण एक 'निर्णयात्मक अंश' है। परन्तु यह कोण मोड़ के वेग तथा उसकी त्रिज्या पर निर्भर है। इसके अतिरिक्त हमें इंजन शक्ति को भी नहीं भूलना चाहिए, क्योंकि अधिक टेढ़े मोड़ पर इंजन में इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वह विमान को अधिक आक्रमण-कोण पर ही नहीं, बल्कि अवपात कोण पर भी अधिक चाल से उड़ान करा सके क्योंकि सामान्य इंजन से विमान छोटे आक्रमण-कोण पर अधिक चाल से और बड़े आक्रमण-कोण पर कम चाल से उड़ान करता है, लेकिन ऐसे इंजनों से अधिक आक्रमण-कोण पर अधिक चाल से उड़ान नहीं की जा सकती।

चालक विमान को मोड़ने के लिए उसके पक्षकों की सहायता से कन्नी करता है। मोड़ आरम्भ होने के बाद बाह्य पक्ष में, भीतरी पक्ष की अपेक्षा, अधिक गति आने के कारण उसमें उद्भार बल भी अधिक उत्पन्न होता है। इसके प्रभाव को कम करने के लिए चालक को न केवल विमान के पक्षकों को बन्द करना होगा बल्कि कभी-कभी उन्हें कन्नी की विपरीत दिशा में भी मोड़ देना पड़ेगा। विमान की ग्लाइडिंग दशा में यदि इसे मोड़ लिया जावे तो ऐसा करने की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि तब भीतरी पक्ष का आक्रमण कोण अधिक होता है और इस कारण इसमें बाह्य पक्ष की अपेक्षा अधिक मात्रा में

उद्भार बल उत्पन्न होता है। इससे बाह्य पक्ष के उद्भार बल में उत्पन्न वृद्धि सन्तुलन में रहती है। विमान की आरोहण क्रिया से भीतरी पक्ष के आक्रमण-कोण में कमी आती है। इस दशा में आक्रमण कोण में वृद्धि तथा वेग के कारण बाह्य पक्ष में भीतरी पक्ष की अपेक्षा अधिक उद्भार बल उत्पन्न होता है। अतः सामान्य उड़ान में मोड़ की अपेक्षा इस दशा की मोड़ क्रिया में पक्षकों के कार्य को बन्द करने या मोड़ आरम्भ होने के बाद, उनके विपरीत दिशा में मोड़ देने की अधिक आवश्यकता रहती है।

विमान को उड़ान में मोड़ देनेके अतिरिक्त चालक और भी अन्य प्रकार के 'सुचालन' कर सकता है।

(१) उलटी मारना,
(२) चक्कर,
(३) लोटन,
(४) बगली-फिसलन,
(५) नाक के बल गोता।

एक या एक से अधिक सुचालन के योग से भी नया सुचालन बन सकता है। चित्र संख्या ५० में एक विमान को उलटी मारते[1] दिखाया गया है। उलटी मारते समय विमान की कक्षा वृत्ताकार हो जाती है। अपकेन्द्र बल से चालक अपनी सीट पर चिपक उठता है। जब विमान ऊपर जाकर उलट जाता है तो भी उसके गिरने का डर नहीं रहता। इस अवस्था की समानता उस खिलाड़ी से की जा सकती है जो दौड़ कर उलटी मारता है। दौड़ते हुए आकर वह कुछ ऊँचे से कूदता है और एक या दो बार ऊपर चक्कर मार कर खड़ा हो जाता है।

चित्र संख्या ५१ में विमान की चक्कर गति दिखायी गयी है। इस क्रिया को करते समय काफी मात्रा में दुर्घटनाएं होती हैं, अतः यह सुचालन लोकप्रिय नहीं हुआ। इस क्रिया में विमान के पक्ष अवपात की अवस्था में आ जाते हैं जिससे चालक को विमान के नियन्त्रण में बाधा पड़ती है। विमान में स्वतः

1. Loop
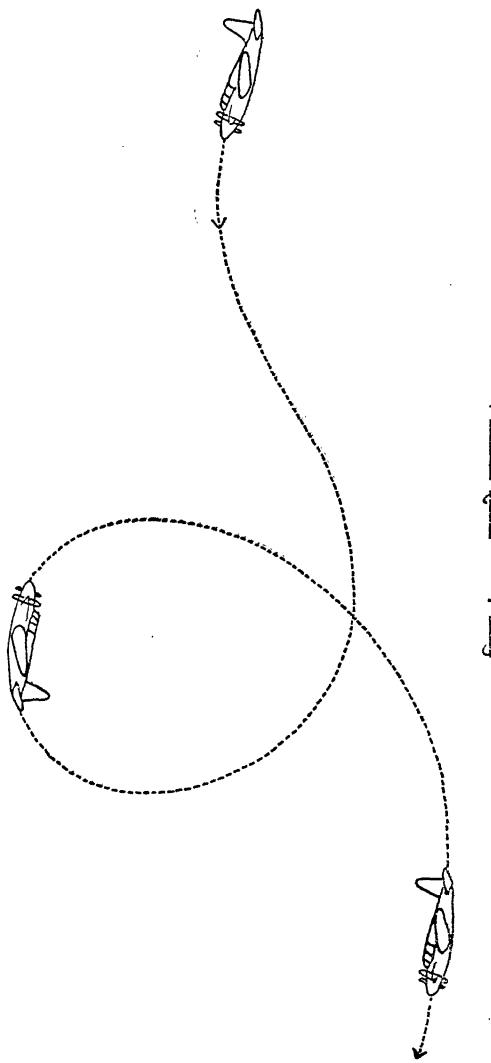
चित्र ५०—उलटी मारना।
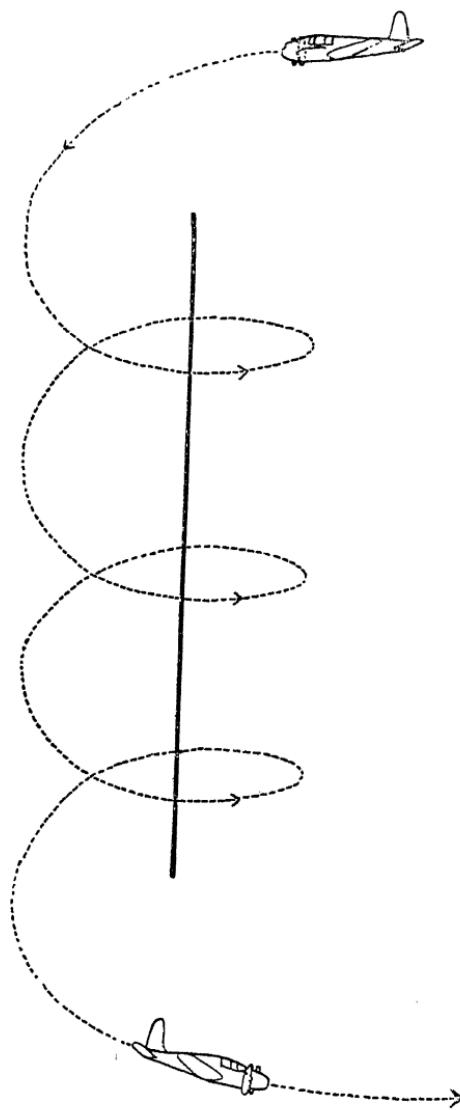
चित्र ५१—चक्कर गति।

घूमने की प्रवृत्ति आ जाती है। इस खतरे को कम करने और अवपात दशा से छुटकारा पाने के लिए चालक भरसक प्रयत्न करता है। यह विमान की नासा को नीचे की ओर करके या सुकान को विपरीत दिशा में चलाने से हो सकता है। वास्तव में सुकान का प्रयोग पहले किया जाता है क्योंकि विमान की घूर्णन गति को रोकने के पश्चात् ही उत्थापकों का सफल प्रभाव होता है।

चित्र संख्या ५२ में विमान की लोटन अवस्था दिखायी गयी है। इसमें विमान ३६०° पर पार्श्विक दिशा में लोट खा रहा है।

विमान की बगली फिसलन में इसके चारों तरफ वायु-दाब काफी मात्रा में होता है। अधिक ऊँचाई पर उड़ान करते समय, ऊँचाई को कम करने का यह एक अच्छा साधन है।

नासा के बल गोता लगाना ग्लाइडिंग क्रिया की ही एक विशेष अवस्था है। इसमें ग्लाइडिंग कोण ९०° हो सकता है। व्यवहार में ऐसा कम होता है। इसको चित्र संख्या ५३ में दिखाया गया है।

विमानों की 'सुचालन क्रिया' इसके अवस्थितित्व-घूर्ण पर बहुत कुछ निर्भर होती है। अवस्थितत्व घूर्ण गुरुत्व केन्द्र के चारों ओर घूमने की प्रवृत्ति के प्रति विमान की प्राकृतिक रोध की दशा है। एक विशेष घूर्णन-अक्ष से अधिक दूरी पर जो भार होगा, वह अक्ष के चारों ओर किसी भी तीव्र गति के आने में कठिनाई उत्पन्न करेगा। उदाहरणार्थ, पक्षों का अधिक भार अनुदैर्घ्य अक्ष के चारों ओर लोटन क्रिया में कठिनाई पैदा करता है। सुचालन क्रिया की दृष्टि से
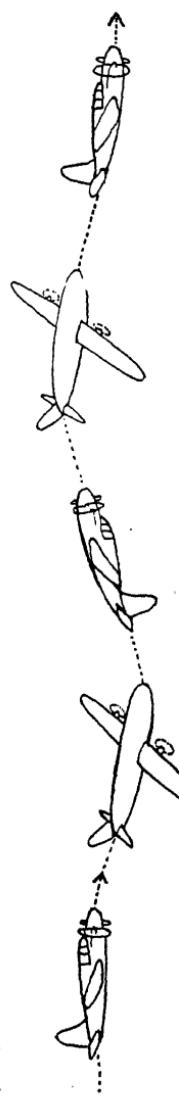
चित्र ५२—विमान की लोटन गति।

दुपंखी विमान एकपंखी विमानों की अपेक्षा अधिक अच्छे समझे जाते हैं क्योंकि इनमें इनका भार गुरुत्व केन्द्र के समीप कार्य करता है•। विमान अपने हवाई
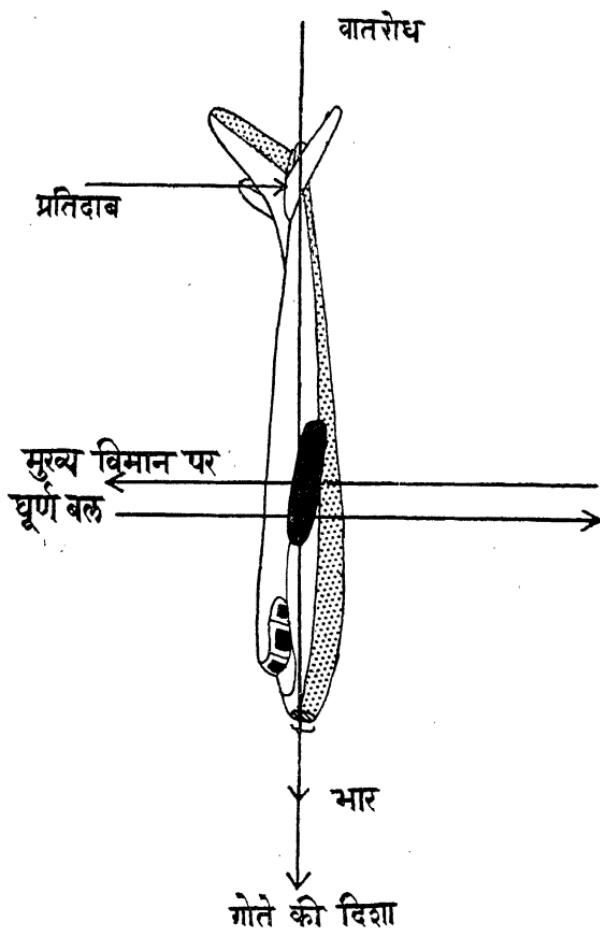
चित्र ५३——नासा के बल गोता लगाना।

करतबों के पश्चात् जमीन पर आने के लिए पहले कुछ देर तक ग्लाइडिंग करता है।

ग्लाइडिंग करते समय विमान पर तीन बल लगते हैं, उद्भार-बल, वात-रोध-बल तथा नोद-बल। ये ही तीनों बल ग्लाइडिंग की प्रक्रिया में विमान को साम्यावस्था में रखते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस दशा में उद्भार बल तथा
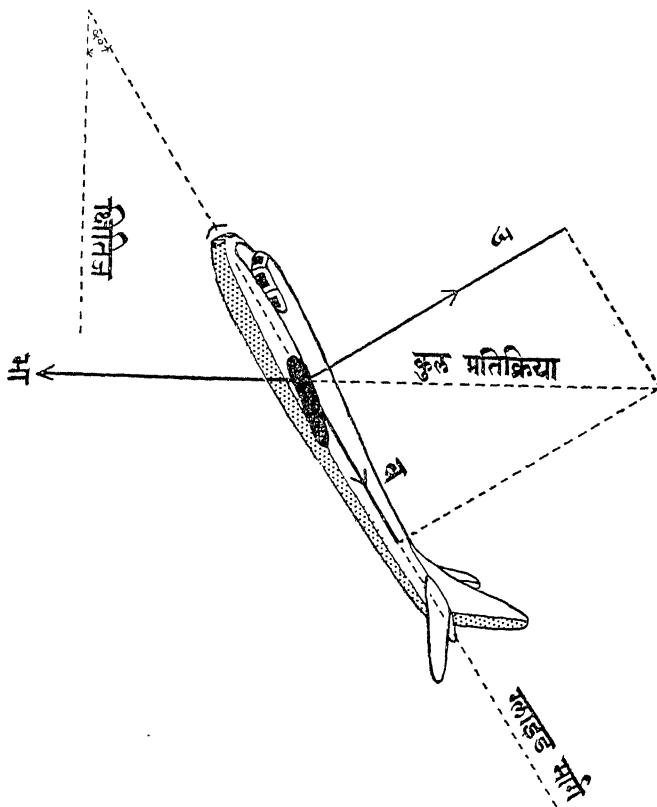
चित्र ५४—ग्लाइड करते समय विमान पर लगे बल।

वातरोध की संयुक्त प्रतिक्रिया, भार बल के विपरीत और बराबर होती है। चित्र संख्या ५४ में उद्भार बल की कार्य-रेखा अब उदग्र न होकर, ग्लाइड मार्ग

के समकोण होती है तथा वातरोध बल की कार्य-रेखा ग्लाइड मार्ग के समानान्तर पीछे की ओर कार्य करती दिखायी गयी है। संयुक्त प्रतिक्रिया और उद्भार बल के बीच के कोण को ग्लाइडिंग कोण कहते हैं। यह ग्लाइड मार्ग और क्षितिज में बने कोण के बराबर होता है। त्रिकोण मिति के अनुसार स्प $\alpha = \frac{\text{वातरोध}}{\text{उद्भार}}$ अर्थात् स्प α का मूल्य जितना कम होगा ($\frac{\text{उद्भार}}{\text{वातरोध}}$ अनुपात का मूल्य जितना अधिक होगा) ग्लाइडिंग कोण उतना ही कम होगा। इस तथ्य पर विचार करने से हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—

(१) ग्लाइडिंग कोण $\frac{\text{उद्}}{\text{वात}}$ पर निर्भर है जो स्वयं विमान की दक्षता पर निर्भर है। अतः जितनी अधिक दक्षता विमान में होगी उतना अधिक यह ग्लाइड कर सकेगा। दूसरे शब्दों में ग्लाइड कोण विमान की दक्षता को व्यक्त करेगा। दक्षता का यहाँ पर एक विशेष अर्थ है। यहाँ पर हमारा तात्पर्य इंजन की शक्ति की दक्षता से नहीं है। विमान को बनानेवाले को न्यूनतम वातरोध के साथ अधिकतम उद्भार बल प्राप्त करने में कहाँ तक सफलता मिली है, यहाँ दक्षता का यही अर्थ है। इसे विमान का वायुगत्यात्मक गुण भी कहते हैं। उदाहरणार्थ विमान के वातरोध को कम करने के लिए धारारैखिक बनाने से ग्लाइडिंग कोण बढ़ता है। अधिकतम परास के लिए भी इसी गुण की आवश्यकता होती है, अतः कह सकते हैं कि जिस विमान का ग्लाइडिंग कोण कम होता है परास उड़ान में वह उतना ही दक्ष होता है। जब इंजन काम करता है और जब वह काम नहीं करता तो उसके उद्भार बल—वातरोध के अनुपात में केवल थोड़ा-सा ही भेद होता है। काफी दूर तक ग्लाइड करने के लिए आवश्यक है कि ग्लाइड करते समय, आक्रमण कोण ऐसा हो जिस पर उद्भार—वातरोध अनुपात अधिकतम हो। विमान को बनाते समय रिगर आयतन कोण २ डिग्री या ३ डिग्री रखा जाता है क्योंकि समतल उड़ान के लिए यह कोण सबसे उपयुक्त होता है। आजकल अक्सर इस कोण को अधिकतम $\frac{\text{उद्भार}}{\text{वात}}$ अनुपात वाले कोण से कुछ कम रखते हैं, परन्तु फिर भी इसका परास लगभग यही होता है। अतः कह सकते हैं कि अधिकतम

परास, सरल और समतल उड़ान तथा समतल ग्लाइडिंग में आक्रमण कोण लगभग एक ही होता है। •ग्लाइडिंग करते समय भी अंकित वायुचाल से आक्रमण कोण का अनुमान लगाया जाता है और जिस वायुचाल पर ग्लाइडिंग की उत्तम अवस्था मिलती है उसको मालूम कर लिया जाता है। विमान-चालक के लिए वह मार्गदर्शक का काम करता है। परन्तु फिर भी समतल ग्लाइडिंग के लिए एक अच्छे कुशल और चतुर चालक की आवश्यकता होती है।

यदि चालक $\frac{\text{उद्भार}}{\text{वातरोध}}$ के अधिकतम अनुपातवाले आक्रमण कोण से कम या अधिक कोण पर ग्लाइड करने का प्रयत्न करेगा तो प्रत्येक अवस्था में उसका मार्ग ढलवाँ होगा।

मान लीजिए कि विमान $\frac{\text{उद्भार}}{\text{वातरोध}}$ के अधिकतम अनुपातवाले कोण पर ग्लाइड कर रहा है। ऐसी दशा में यदि विमान की नासा नीचे की ओर जाय तो इससे उसके आक्रमण कोण में कमी हो जाती है। इसके फलरूप $\frac{\text{उद्भार}}{\text{वातरोध}}$ अनुपात में भी कमी होती है। ऐसा होने पर ग्लाइडिंग मार्ग का ढलवाँपन बढ़ेगा। इस अवस्था में वायुचाल सबसे अच्छे ग्लाइडिंग कोण के समय जो वायुचाल होती उसकी अपेक्षा अधिक होगी। ग्लाइडिंग की प्रक्रिया में आक्रमण कोण में भ्रम हो सकता है। विमान जिस वास्तविक मार्ग को अपनाता है उस मार्ग और पक्षों की ज्या के बीच के कोण को, 'आक्रमण कोण' कहते हैं। ग्लाइडिंग करते समय, विमान की सूचित दिशा और वास्तविक दिशा में भेद करना चाहिए (चित्र ५.५)।

सामान्य विमान में उद्भार, वातरोध से लगभग ८, १०, १२ गुना अधिक होता है। इनके अनुसार ग्लाइडिंग कोण लगभग ७ डिग्री, ६ डिग्री या ५ डिग्री के होने चाहिए। साधारणतः चालक यदि ऐसे ग्लाइडिंग कोण को चुने जिसकी ज्या $\frac{१}{५.२८}$ हो तो वह १००० फुट की ऊँचाई पर लगभग एक मील के ग्लाइडिंग कर सकता है। ग्लाइडिंग करते विमान को जमीन पर खड़े होकर देखने पर इसकी गति के सम्बन्ध में अवसर भ्रान्ति होने की संभावना होती है। इसका कारण वायु की गति है। यदि यह गति ऊपर की ओर तथा क्षैतिज भी है तो जमीन पर

चित्र ५५—ग्लाइड कोण पर आक्रमण कोण का प्रभाव।
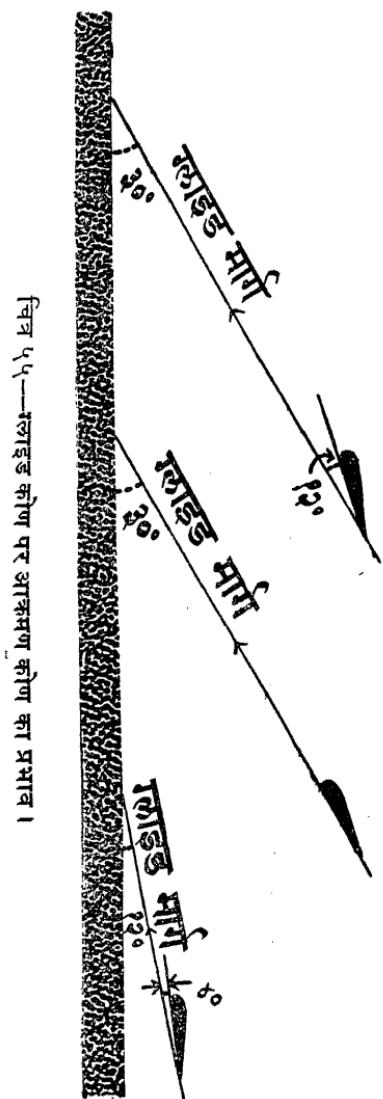
खड़े दर्शक को वायु के विपरीत ग्लाइड करनेवाला विमान अपेक्षाकृत अधिक ढलवां मालूम पड़ेगा और वायु की दिशा में ग्लाइड करता हुआ विमान अपेक्षाकृत कम ढलवां दिखाई देगा।

ग्लाइडिंग कोण उद्‌भार-वातरोध के अनुपात पर निर्भर है। अतः सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण से भार का इस कोण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह केवल वायुचाल पर प्रभाव डालता है। चित्र संख्या ५४ में मान लीजिए कि भार बढ़ गया है। इसके अनुसार कुल प्रतिक्रिया में भी वृद्धि होगी। अतः उद्‌भार बल और वातरोध में भी वृद्धि होगी, परन्तु इन दोनों के अनुपात अर्थात् ग्लाइडिंग कोण में कोई परिवर्तन न आयेगा। उद्‌भार बल और वातरोध में वृद्धि होने के लिए चाल में वृद्धि आना आवश्यक है। अतः भार की वृद्धि से केवल चाल बढ़ती है, ग्लाइडिंग कोण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

यहाँ यह शंका हो सकती है कि ग्लाइडिंग में हलके भार के विमानों की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए। किन्तु स्थिति यह नहीं है। वस्तुतः ये आवश्यक होते हैं। यदि यह विमान कुछ दूरी तक ग्लाइडिंग करे तो इसका

ग्लाइडिंग कोण कम होना चाहिए और नीचे आने की उदग्र चाल की दर भी बहुत कम होनी चाहिए। इसमें वायु में काफी देर ठहरने की सामर्थ्य का
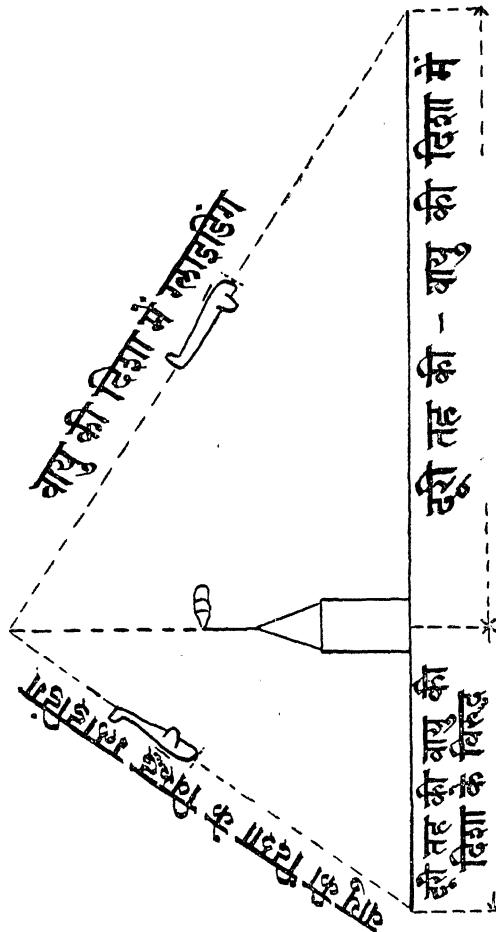
चित्र ५६—भूमि के सापेक्षिक ग्लाइड कोण पर वायु का प्रभाव।

होना भी आवश्यक है। नीचे आने की उदग्र चाल विमान के ग्लाइडिंग कोण और ग्लाइड करते समय की वायुचाल पर निर्भर है। अतः नीचे आने की

उदग्र चाल कम हो इसके लिए आवश्यक है कि $\frac{\text{उद्भार}}{\text{वातरोध}}$ अनुपात पर्याप्त हो अथवा इसमें वायुगत्यात्मकता गुण अच्छी मात्रा में हो और वायुचाल भी कम हो। जिस चाल पर अत्यन्त समतल ग्लाइडिंग सम्भव है उस चाल में कमी करने पर ही नीचे आने की उदग्र चाल की गति में भी कमी की जा सकती है, क्योंकि कम वायुचाल, ढलवाँ ग्लाइड की अपेक्षा इसके लिए अधिक उपयुक्त होती है। जिस प्रकार समतल उड़ान के लिए क्षमता-चाल होती है ठीक उसी प्रकार ग्लाइडिंग के लिए भी क्षमता-चाल होती है। यह चाल परास चाल से कम होती है।

ग्लाइडिंग कोण का कम होना सर्वदा अच्छा नहीं होता। ऐसे कोण के साथ जब हम छोटे हवाई अड्डे के समीप पहुँचकर झाड़ियों इत्यादि से बचते हुए रुकना चाहते हैं तो कुछ कठिनाई का अनुभव होता है। यदि ऐसे समय में विमान को एकदम नीचे को झुकायें तो भी वह चाल पकड़ लेता है और कुछ दूर जाने के बाद ठहरता है। इस कोण को $\frac{\text{उद्भार}}{\text{वातरोध}}$ का अनुपात कम करने से कम किया जा सकता है। आक्रमण कोण को कम करने से इस अनुपात में कमी आ सकती है, परन्तु इससे चाल बढ़ने का भय है। इसके लिए सबसे अच्छा उपाय वायु ब्रेक है। वायु ब्रेक ग्लाइडिंग कोण को बढ़ाने का सबसे अच्छा साधन है।

इस प्रकार ग्लाइडिंग करते-करते जब विमान को अपनी उड़ान के आखिरी दौर में नीचे उतरना होता है तो विमान जिस क्रिया द्वारा पुनः जमीन पर आ ठहरता है उसके दो क्रम होते हैं—

(१) विमान को न्यूनतम उदग्रवेग के साथ भूमि के सम्पर्क में लाना,

(२) विमान का भूमि के सापेक्षिक न्यूनतम क्षैतिज वेग का होना।

कभी-कभी विशेष दशा में 'तीव्र उतार' की जरूरत पड़ती है। उतरने की क्रिया विमान की अवपात क्रिया से मिलती है। परन्तु उतरते समय विमान का भूमि के प्रति एक विशेष और निश्चित रुख होता है जब कि अवपात में यह भिन्न होता है।

उतरने की क्रिया का भू-सापेक्ष क्षैतिज वेग से अधिक सम्बन्ध है। यह

क्षैतिज वेग न्यूनतम होना चाहिए। विमान वायु के विरुद्ध उतरता है, अतः भूमि-चाल को कम करना आवश्यक है। विमान-चालक हवाई चाल को कम कर अपनी भूमि-चाल को भी कम कर सकता है। मान लीजिए कि किसी विमान की न्यूनतम वायुचाल ८० मील प्रति घण्टा है। वायु की चाल २० मील प्रति घण्टा है और समुद्री जहाज ३० मील प्रति घण्टे से वायु की दिशा में चल रहा है, तो विमान की उतरते समय भूमि-चाल ३० मील प्रति घण्टा होगी। जमीन के पास वायु की चाल एक समान नहीं होती। इसका प्रभाव विमान की उतरने की क्रिया पर पड़ सकता है। यदि इसमें अचानक कमी पड़ती है तो विमान में अपने अवस्थितत्व के गुण के कारण अपनी उसी भूमि-चाल पर चलने की प्रवृत्ति आयेगी जिसके फलस्वरूप उसकी वायु-चाल में भी कमी पड़ेगी। यदि यह विमान कमी से पूर्व क्रांतिक चाल पर उड़ान कर रहा हो, तो वह अवपात की अवस्था में आ सकता है। इसी प्रकार यदि हवा की चाल में अचानक वृद्धि हो जाय तो विमान की वायु-चाल में कुछ देर के लिए वृद्धि होगी जिससे विमान में ऊपर की ओर उड़ने की प्रवृत्ति आ जाने के कारण इसके ठीक समय पर जमीन के सम्पर्क में आने में कठिनाई अनुभव होगी।

इस प्रकार की अवस्थाएँ अक्सर आती हैं। अधिक तेज़ वायु में यह क्रिया खतरनाक भी हो सकती है और ऐसी अवस्था में यदि विमान सामान्य उतार-चाल की अपेक्षा कुछ अधिक चाल से उतरे तो अच्छा रहता है। यदि विमान का अग्रवेग विमान का रुख थोड़ी देर के लिए क्षैतिज उड़ान में रख सके अथवा उसके पक्षों का उद्भार बल विमान के भार को सन्तुलित कर सके तो विमान का उदग्र वेग शून्य तक किया जा सकता है, जिससे विमान के उतरने में बहुत सहायता मिलती है।

विमान की अंकित वायुचाल और आक्रमण कोण में एक विशेष अनुपात रहता है। चित्र संख्या ५७ में विमान की समतल उड़ान में भिन्न हवाई चालों पर उसके आक्रमण कोण दिखायें गये हैं।

(क) अधिकतम वेग पर विमान के रुख को बताता है;

(ख) सामान्य क्रुज़िग उड़ान पर विमान के रुख को बताता है;

(ग) सामान्य उतार चाल पर विमान के रुख को बताता है;

चित्र ५७—सामान्य उड़ान के लिए विमान के रुख।

(घ) खांचेदार पक्षों से युक्त न्यूनतम उड़ान पर विमान के रुख को बताता है।

हम जानते हैं कि उद्भार बल को भार के बल के बराबर होना चाहिए। उद्भार बल को समीकरण के अनुसार यदि वेग कम हो तो उद्भार गुणांक में उसके अनुसार ही वृद्धि होगी और यह वृद्धि आक्रमण-कोण में वृद्धि करने पर होगी, बशर्ते कि यह अवपात कोण से न बढ़ने पाये जो सामान्यतः १५° के लगभग होता है क्योंकि इसके पश्चात् आक्रमण कोण में वृद्धि होने पर भी उद्भार में कमी होगी। अतः अवपात-कोण पर वेग न्यूनतम और उद्भार-गुणांक अधिकतम होगा। यदि चालक विमान के आक्रमण कोण को अवपात कोण से अधिक कर दे तो उद्भार गुणांक और वेग दोनों में कमी होगी और विमान का भार उद्भार बल के बराबर न रहेगा जिसके कारण विमान का उदग्र दिशा

की ओर आना आरम्भ होगा। कुछ दूर तक, लगभग ५० या १०० फुट तक, विमान का उदग्र वेग बढ़ता है और उसकी नासा नीचे की ओर झुकती है। विमान चालक को यहाँ पर सावधानी से काम लेना पड़ता है। उतरते समय उसे इस बात का ध्यान रखना है कि उसके विमान को खींचने के लिए उसकी दौड़ के वास्ते काफी मार्ग है या नहीं।

ये सब बातें अवपात-चाल के लिए भी मान्य हैं। उदाहरणार्थ, जब चालक अपने विमान को घुमाता है तो उसके पक्षों के उद्भार बल का उसके भार से अधिक होना आवश्यक है। इस प्रकार अवपात चाल[1] उतार चाल की अपेक्षा अधिक होती है। अधिक ऊंचाई पर वायु के घनत्व में कमी आने के कारण विमान का भार बल भूस्तर के वेग की अपेक्षा अधिक होता है। परन्तु यह तथ्य निम्न दो कारणों से अधिक महत्त्व नहीं रखता—

(१) अधिक ऊंचाई पर, आकस्मिक अवपात का कोई विशेष उपयोग नहीं होता क्योंकि विमान को अपनी पूर्व अवस्था में आने के लिए काफी समय मिल जाता है।

(२) इस अवस्था में यद्यपि अवपात चाल अधिक होती है, परन्तु अवपात क्रिया में वायु-चाल-सूचक उसी चाल को अंकित करेगा जिसको वह भू-स्तर पर करता है क्योंकि वायु-चाल-सूचक स्वयं वायु-घनत्व के प्रभाव पर निर्भर है। दूसरे शब्दों में, अंकित अवपात चाल प्रत्येक ऊंचाई पर एक समान रहेगी।

इस प्रकार एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि ऊंचे हवाई अड्डों पर विमान की वास्तविक उतार-चाल समुद्री-तल पर स्थित हवाई अड्डों की अपेक्षा अधिक होती है। भारत-जैसे गर्म देशों में भी अधिक ताप के कारण वायु के घनत्व में कमी आती है और इस प्रकार उतार-चाल में वृद्धि हो जाती है। इस दशा में उड़ान दौड़ चाल और दौड़ की दूरी में भी वृद्धि होती है।

अवपात क्रिया में विमान को ऊपर चढ़ाने के रुख में परन्तु ढलवाँ रखते हैं और इस प्रकार हवाई चाल को लगभग शून्य की ओर आने देते हैं जब तक कि विमान की नासा अचानक नीचे की ओर आना आरम्भ नहीं कर देती या (जैसा

1 Stall speed

कि सामान्यतः होता है) विमान का एक पक्ष नीचे की ओर नहीं झुक जाता और विमान गोता नहीं लगाने लगता। अवपात चाल या अवपात क्रिया की परिभाषा के सम्बन्ध में कोई निश्चित मत नहीं है। अवपात कोण की परिभाषा में लिख चुके हैं कि यह वह कोण है जिस पर उद्भार गुणांक अधिकतम होता है। परन्तु विमान-चालक को यह किस प्रकार पता लगे कि किस कोण पर यह अधिकतम होता है। वह तो केवल इतना ही जानता है कि अमुक चाल से कम पर उड़ान करने पर उसको भय हो सकता है। इस भय की मात्रा विमान के अतिरिक्त चालक की होशियारी पर भी निर्भर है। कुछ चालक दूसरों की अपेक्षा अधिक कम चाल पर उड़ान कर सकते हैं, अतः अवपात चाल किसे कहा जाय। हम कह सकते हैं कि यह स्वयं में अपनी परिभाषा है और आवश्यक नहीं कि उक्त सब बातें एक समय में ही इकट्ठी हों।

पृथ्वी पर उतरते समय विमान की उड़ान का वेग जितना ही कम होगा, उतना ही उसके उतरने में सुविधा होगी। परिवहन के सब साधनों में, उड़ान के साधन को छोड़कर उनके अधिकतम वेग पर अधिक ध्यान दिया जाता है क्योंकि न्यूनतम वेग तो उनमें शून्य किया ही जा सकता है। लेकिन उड़ान में अधिकतम और न्यूनतम वेग दोनों को एक-जैसा महत्त्व दिया जाता है। कभी-कभी न्यूनतम वेग से अधिकतम वेग की अधिक अपेक्षा होती है यद्यपि विमान का अपना महत्त्व उसके अधिक वेग के कारण ही है। सामान्य विमान की उतार-चाल ६० या ७० मील प्रति घंटे होती है जब कि सामान्य मोटरकार की अधिकतम चाल भी लगभग इसी परास में होती है। इतनी अधिक उतार चालवाले विमानों को उतरने के लिए बड़े-बड़े हवाई अड्डों की आवश्यकता रहती है। अतः उतार-चाल को कम करने से हम विमान को अधिक लोकप्रिय तथा सुरक्षित बना सकते हैं क्योंकि ऐसा होने पर यह कहीं भी थोड़े से ही खुले मैदान में उतर सकेगा।

उद्भार बलवाले सूत्र के अनुसार वेग को कम करने के लिए, उद्भार गुणांक को बढ़ाना होगा। अतः ऐसे पंखकाट जो अधिकतम उद्भार गुणांक दे, न्यूनतम वेग देंगे। परन्तु इस प्रकार के पंखकाट, वातरोध बल की अधिक मात्रा उत्पन्न करते हैं जिसके कारण अधिक वेग पर बहुत कठिनाई पड़ती है।

इस समस्या को खांचों और पल्लों ने हल किया है। वास्तव में हम केवल न्यूनतम उतार-चाल को प्राप्त करने से ही सन्तुष्ट नहीं होते और हमारा उद्देश्य एक अच्छी चाल-परास प्राप्त करना भी रहता है। इसलिए जो भी व्यवस्था प्रयुक्त की जाय वह ऐसी हो जो अधिकतम उद्भार (खुले खाँचे) से न्यूनतम वातरोध (बन्द खाँचे) की अवस्थाओं में स्वत: बदल सके। हमारी समस्या इससे भी कुछ और अधिक है। न्यूनतम उतार-चाल से उतरने के पश्चात् तुरन्त ही विमान को ऊपर की ओर खींचना पड़ता है। पहली क्रिया में अधिक उद्भार बल और दूसरी क्रिया में अधिक वातरोध की आवश्यकता होती है। दूसरी क्रिया के लिए वायु ब्रेक की आवश्यकता होती है जो पहिए के ब्रेकों को सहायता दे, परन्तु यह वास्तविक उतार-चाल को कम नहीं कर सकता। यह तो केवल उतरने के पश्चात् खींचने की क्रिया को सुधार भर सकता है। उतार रुख की तुलना करते समय पल्लेदार विमानों की अपेक्षा खाँचेदार विमान अच्छे सिद्ध नहीं होते। क्योंकि सामान्य पंखकाट की अपेक्षा खांचेदार पंखकाट अधिक आक्रमण-कोण पर उद्भार गुणांक की अधिकतम मात्रा प्राप्त करते हैं। खाँचों का पूरा प्रयोग करने के लिए, विमान के उतरते समय, आक्रमण कोण लगभग २५° का होना चाहिए। भूमि पर खड़े सामान्य विमान के पक्षों का झुकाव लगभग १५° के होता है। इस प्रकार २५° के कोण पर उतरते समय विमान निम्नलिखित चार उपायों में से एक को अपना सकता है––

१––विमान की पूँछ को इसके पहियों से पूर्व ही भूमि के सम्पर्क में आने देना व्यवहारिक ढंग से ठीक नहीं है।

२––विमान के निचले भाग में एक बड़े वहन की व्यवस्था रखना। (इससे कुछ अतिरिक्त वातरोध बल उत्पन्न होगा जो हानिकारक होता है)

३––विमान के मुख्य भाग में परिवर्ती आयतन गियर की व्यवस्था जैसा कि पुच्छक-विमान में प्रयोग होता है। (इसके प्रयोग में कुछ यांत्रिक कठिनाई होती है)।

४––पक्षों को कबंध[1] से अधिक कोण पर रखना (सामान्य उड़ान में कबन्ध

1. Fuselage

के पीछे का भाग वायु से ऐसा कोण बनायेगा जो वातरोध कम करने के दृष्टि-कोण से ठीक न होगा) ।

अन्तिम साधन का प्रयोग इस उद्देश्य से भी किया जाता है कि उतरने के पश्चात् पक्षों का वातरोध बल विमान को कुछ दूर खींचने में सहायक होता है। स्पष्ट है कि यह साधन डेक पर उतरनेवाले विमानों के लिए उपयुक्त होगा। कुछ भी हो, खांचेदार पक्ष उतार-चाल को कम करने में सहायता देते हैं। इस कम चाल पर विमान की गति को सफलतापूर्वक नियन्त्रण में रखने की भी अपनी एक समस्या है। इसको अग्र स्टैगर-खांचों की सहायता से हल किया जाता है।

अग्र स्टैगरवाले दो-पंखी विमानों में सामान्यतः खांचे ऊपरी भाग में लगाये जाते हैं क्योंकि इस भाग में वायु-प्रवाह निचले भाग की अपेक्षा छोटे कोण पर प्रक्षुब्ध हो जाता है। दूसरे शब्दों में दो-पंखी विमानों के ऊपरी भाग में अवपात क्रिया पहले होती है। पश्च-स्टैगर वाले दो-पंखी विमानों के निचले भाग में अवपात क्रिया पहले होती है, इसलिए खांचे इसी भाग में लगाये जाते हैं।

विमान की उतारचाल में कमी करने का एक और उपाय है। विमान के पक्ष-क्षेत्रफल में वृद्धि करना। ऐसा करनेसे $\frac{\text{भार}}{\text{पक्ष-क्षेत्रफल}}$ अनुपात कम होगा। इस अनुपात को पक्ष-प्रतिदाब भी कहते हैं। परन्तु इस प्रकार के परिवर्ती पक्षों के प्रयोग में कुछ यांत्रिक कठिनाइयाँ हैं।

यदि अन्य बातें समान रहें तो कम पक्ष-प्रतिदाब वाले विमान की उतार-चाल अधिक पक्ष-प्रतिदाब वाले विमान की अपेक्षा कम होगी। किसी भी हलके विमान में यदि पक्ष-प्रतिदाब अधिक हो तो इसकी उतार चाल भी अधिक होगी। अतः उतार-चाल भार पर निर्भर नहीं है, किन्तु भार पक्ष-क्षेत्रफल अनुपात पर आश्रित है। आजकल पक्षों के क्षेत्रफल में कमी कर सामान्यतः चाल को अधिकतम करने के लिए पक्ष-प्रतिदाब में वृद्धि करते हैं और उतार-चाल को कम करने के लिए पल्लों का प्रयोग करते हैं। औसत विमान में २ पौंड प्रति वर्ग फुट, और बम मार विमान में ३० से ५० पौंड प्रतिवर्ग फुट पक्ष-प्रतिदाब होता है।

उतार-चाल को कम करने में सीयरवा आटोगिरो के आविष्कार से यथेष्ट सहायता मिली है। इसे कोई-कोई हेलिकोप्टर भी कहते हैं। परन्तु वास्तव में

यह मशीन विमान से अधिक मिलती-जुलती है। हेलिकोप्टर में मुख्य इंजन से ही उसकी पंखड़ियाँ तथा पक्ष चलते हैं और इस प्रकार उद्भार बल देते हैं जब कि आटोगिरो की पंखड़ियां तथा पक्ष केवल वायु-बल पर घूमते हैं। यह वायु-बल मशीन के आगे तथा पीछे की ओर की हवा की चाल के कारण उत्पन्न होता है। इस प्रकार सामान्य विमान की भाँति इस मशीन को अग्रगति की आवश्यकता पड़ती है। यह गति साधारण विमान की तरह सामान्य इंजन तथा वायुपेंच के नोद के कारण उत्पन्न होती है। इसीलिए इस मशीन की विमान से अधिक समानता है। इस मशीन की अग्रगति सामान्य विमान की अवपात चाल से भी कम होती है तथापि इसमें की उड़ान की क्षमता होती है। इसका कारण यह है कि इसके घूमनेवाले पक्ष वायु से तीव्र वेग से टकराते हुए उद्भार बल की इतनी मात्रा उत्पन्न करते हैं जो इस मशीन को वायु में सन्तुलित रखने में पर्याप्त होता है। इस प्रकार इसकी अग्र गति पाँच से दस मील प्रति घण्टे की चाल तक की जा सकती है और यदि वायु का वेग भी इसी दिशा में हो तो इस मशीन की भूमि-चाल लगभग शून्य ही होगी। इस प्रकार यह मशीन उतार-चाल को न्यूनतम करने का एक सुकर साधन है।

द्वितीय युद्ध से कुछ पूर्व दो-पंखी विमानों की जगह पुनः एकपंखी विमानों की माँग बढ़ने लगी थी। इसके पीछे मुख्य कारण पक्ष-प्रतिदाब की वृद्धि थी। पक्ष-प्रतिदाब के बढ़ने से उतार-चाल में वृद्धि होती है जिसके कारण पल्ले विमान का एक आवश्यक अंग बन गये और इन पल्लों ने विमान की उतरने की एक नयी टेकनीक दी। इस टेकनीक के कारण विमान का बाह्य रूप भी बदला। आजकल ग्लाइडिंग रीति से उसी समय उतारा जाता है जब विमान को कहीं जबरदस्ती उतरना पड़े या इंजन काम करना बन्द कर दे। सामान्यतः ग्लाइड कोण को कम करने में इंजन की शक्ति का प्रयोग करते हैं और इसको आजकल जमीन पर उतरने के लिए एक प्रमाणित विधि मानते हैं।

पुराने विमानों में उतरते समय अतित्वरण[1] की दशा में, ऊंचाई की दूरी को कम करने के चार साधन थे।

1. Over-shoot

१—विमान की नासा को नीचे कर तीव्रता से ग्लाईडिंग करना,
२—विमान की नासा को ऊपर की ओर कर धीरे धीरे ग्लाइड करना,
३—ग्लाईडिंग के मार्ग को S घुमाव द्वारा लम्बा करना,
४—बगल से फिसलना।

पहले साधन में अवपात-चाल प्राप्त करने की सम्भावना बहुत अधिक होती है। यह वायु प्रवणता के कारण या मोड़ लेते समय हो सकती है। यह खतरनाक होती है। दूसरे साधन में जो अतिरिक्त वेग प्राप्त होता है उसे नष्ट करने के लिए वास्तविक उतार से पहले विमान को तैरना पड़ेगा, इस प्रकार इसका कम प्रभाव होगा। अन्तिम दो साधनों का प्रयोग सफलतापूर्वक काफी दिनों तक होता रहा है।

आजकल के विमानों में उनकी उच्चतम धारारैखिक आकृति उनको एक छोटा ग्लाइडिंग कोण बनाने में सहायता देती है। यह कोण इतना कम होता है कि थोड़े से अतित्वरण से भी यह उतरने से पूर्व कुछ देर तक तैरता रह सकता है। इस क्रिया में इस प्रकार के विमानों ने पल्लों से काफी सहायता ली है। उतरने की क्रिया को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है—

१—ग्लाइड,
२—ग्लाईडिंग के मार्ग को पृथ्वी के समानान्तर बनाना,
३—तैरना,
४—उतरना,
५—विमान को खींचना।

इन पाँचो अवस्थाओं में पल्लों की काफी महत्त्वपूर्ण स्थिति होती है। आजकल के मत में ग्लाइड क्रिया के अन्तिम चरण की ५०० फुट की दूरी में विमान को एक सरल रेखा में उड़ान करना चाहिए। इसमें विमान को डगमगाने, मोड़ने इत्यादि क्रियाओं से बचाना अच्छा समझा जाता है। इसमें सफलता प्राप्त करने के लिए विमान की वायुचाल को अधिक या कम किये बिना भू-सापेक्ष ग्लाइडिंग कोण को चालक के नियन्त्रण में रखने की व्यवस्था होनी चाहिए। विमान में पल्लों की सहायता से चालक इस ग्लाइडिंग कोण को सीमित परास के बीच रख सकता है। पल्लों को नीचे करने से वातरोध तथा उद्भार में वृद्धि आ जाती है।

उद्भार की वृद्धि से ग्लाइडिंग कोण कम हो जाता है, अतः विमान के लिए थोड़ी चाल पर ग्लाइडिंग करना सम्भव हो जाता है। ऐसे समय, विमान की चाल में अवपात-चाल का भय नहीं रहता। दूसरी ओर वातरोध की वृद्धि से विमान की उसी चाल के लिए इस कोण में वृद्धि होती है। इस प्रकार संयुक्त प्रतिक्रिया $\frac{\text{उद्भार}}{\text{वातरोध}}$ अनुपात की कमी या वृद्धि पर निर्भर रहती है जो स्वयं वातरोध पल्लों के झुकाव और प्रकार पर निर्भर है। सामान्यतः चिरा-पल्ले का अधिक प्रयोग किया जाता है। इसमें लगभग ५०° या ६०° का झुकाव देते हैं। इससे अनुपात में कमी पड़ने पर ग्लाइडिंग कोण में कुछ कमी आती है और ग्लाइडिंग मार्ग कुछ ढलवाँ बन जाता है। इस प्रकार पल्लों से ग्लाइडिंग कोण को नियन्त्रण में रखने की व्यवस्था हो जाती है।

दूसरी अवस्था में (ग्लाइडिंग मार्ग को पृथ्वी के लगभग समानान्तर रखने के लिए) विमान की दिशा को भी बदलना पड़ता है। इसके लिए वक्र मार्ग के केन्द्र की ओर त्वरण के रूप में बल की आवश्यकता पड़ती है। यह बल विमान के पक्षों की चाल और कोण में वृद्धि करने से प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार इस दशा में अवपात-चाल अधिक होती है। पहली ग्लाइडिंग जितनी अधिक ढलवाँ होगी उतना ही अधिक बल इस मार्ग को समानान्तर करने में लगेगा। इसके अनुसार चाल को बढ़ाने के लिए वहाँ पर इंजन का प्रयोग किया जाता है।

इस क्रिया के पश्चात् जो अधिक चाल इसमें रह जाती है, पृथ्वी के सम्पर्क में आने से पूर्व उसे कम करना होता है। इसमें पल्लों के वातरोध से सहायता मिलती है और ठीक इसी समय पक्षों को अवपात कोण पर कर विमान के रुख को बदलते हैं जिससे पक्षों का वातरोध भी इस क्रिया में हाथ बँटाता है। इस प्रकार हम अपने विमान को भूमि के सम्पर्क में लाते हैं। यह चौथी क्रिया क्षणिक होती है। जिस उतार चाल पर विमान भूमि को छूता है उससे उतरने के पश्चात इसको स्थिर अवस्था में लाने के लिए, जितनी दूरी की आवश्यकता होती है उसका पता लगता है। यह दूरी कम करने में वातरोध बहुत सहायक होता है। पाँचवीं अवस्था में वायु-ब्रेकों तथा पहियों के ब्रेकों का प्रयोग होता है। ९०° के कोण पर पल्ले अपने वातरोध बल के कारण बहुत ही अच्छे वायु-ब्रेक का कार्य

करते हैं। वायु-ब्रेक का प्रभाव उतार-दौड़ के आरम्भ में अधिकतम होता है और पहियों के ब्रेकों का प्रभाव इस क्रिया के अन्तिम चरण में अधिकतम होता है।

इस प्रकार विमान अपनी उड़ान का आरम्भ पृथ्वी को छोड़कर और अन्त पृथ्वी पर आकर करता है। इस बीच में उसकी बहुत-सी अवस्थाएँ होती हैं जिनमें आरोहण, समतल उड़ान, सुचालन, ग्लाइडिंग इत्यादि सभी सम्मिलित हैं।

ग्यारहवाँ अध्याय

विमान-स्थायित्व और नियन्त्रण

पिछले अध्यायों में हम इस बात से अवश्य परिचित हो गये होंगे कि किस प्रकार मनुष्य वैमानिकी की समस्याओं को एक-एक कर सुलझाने में सफल रहा, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि इनके अतिरिक्त उड़ान संबंधी कोई समस्या ही नहीं है। सबसे बड़ी समस्या तो वायुमंडल में विमान के स्थायित्व और नियन्त्रण की है।

उड़ान करते समय विमान को अनेक छोटे-छोटे विघ्नों का सामना करना पड़ता है। इनका मुख्य कारण वायुमण्डल में वायु के वे झोंके हैं जो समतल, ऊपर तथा नीचे की ओर चलते रहते हैं। यदि विमान की उड़ान बिना किसी दुर्घटना के, निश्चित मार्ग पर करनी हो तो आवश्यक है कि इनके प्रभाव को उत्पन्न होते ही समाप्त करने की शक्ति विमान में हो। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से तो विमान का चालक इस कार्य के लिए वहाँ पर है, परन्तु विमान को बनाते समय भी आवश्यक है कि उसमें इस बात का पूरा ध्यान रखा जाय। साइकिल का उदाहरण ही लीजिए। साइकिल चलाते समय, सड़कों में गढ़ों तथा वायु के वेग के कारण बहुत से विघ्न पड़ते हैं, परन्तु यह सब साइकिल के हैंडिल, अगले पहिये की गति में कुछ परिवर्तन आ जाने के कारण नष्ट हो जाते हैं और साइकिल चलानेवाले को यह ध्यान भी नहीं होता कि वह किस तीव्रता से इस प्रकार के विघ्नों को निष्फल करता साइकिल चला रहा है।

उड़ान की क्रिया बहुत कठिन हो जाय, यदि विमान-चालक को अपने विमान में आये इस प्रकार के छोटे-छोटे विघ्नों को उत्पन्न होते ही जानने और उनको निष्फल करने के लिए अपना मूल्यवान् समय देना पड़े। बाह्य विघ्नों के प्रति प्रतिक्रिया करते समय मनुष्य को कुछ निश्चित समय की आवश्यकता पड़ती है, जिसकी मात्रा मनुष्य-मनुष्य पर निर्भर है। सामान्यतः यह $\frac{१}{५}$ सेकण्ड के लगभग

होती है। साइकिल चलाना इसलिए सम्भव है कि साइकिल चलानेवाला इसके बहुत ही सम्पर्क में होता है। बिना किसी रोक-रुकावट वह विघ्नों को ठीक करने की क्रिया सम्पन्न कर सकता है। दूसरे इसकी चाल मन्द होने के कारण प्रति-क्रिया–समय का इस पर कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसके विपरीत विमान में चालक को बहुत ही जटिलताओं के व्यूह से सँभलना पड़ता है और एक जटिल यांत्रिक व्यवस्था की सहायता से वह इन विघ्नों को ठीक करने की क्रिया कर सकता है। ये विघ्न इतनी तीव्रता से आ जाते हैं कि उसे इतना समय ही नहीं मिल पाता कि वह इनके प्रति निश्चित प्रतिक्रिया कर सके।

अतः स्पष्ट है कि विमान में अपने अंगों के कारण स्थायित्व होना चाहिए। यदि विमान अपनी उड़ान की किसी विशेष दशा में थोड़ी-सी मात्रा में मुड़-झुक कर चालक के संकेत बिना पुनः अपनी पूर्व स्थिति पर आ जाय तो वह स्थायी कहलाता है। एक ही विमान उड़ान की किसी विशेष दशा में स्थायी और किसी दूसरी उड़ान की दशा में अस्थायी हो सकता है। उदाहरणार्थ, समतल उड़ान में जो विमान स्थायी हो, हो सकता है कि नासा के बल गोता लगाते समय वह स्थायी न हो। यह स्थायित्व विमान के विभिन्न अंगों की बनावट पर निर्भर है, अतः इसे 'अंगीगत स्थायित्व' कहा जायगा।

कभी-कभी विमान के स्थायित्व और सन्तुलन में भ्रम हो जाता है। मान लीजिए कि एक विमान इस प्रकार उड़ान कर रहा है कि उसका एक पक्ष दूसरे की अपेक्षा अधिक झुका हुआ है। यदि वह इस दशा से स्वतः अपनी पहली स्थिति में आ जाय तो यह अवस्था सन्तुलन की न होते हुए भी स्थायी है। यदि विमान थोड़ी मात्रा में हिल-डुल जाने पर अपनी पूर्व स्थिति को वापस आने की अपेक्षा इससे दूर हट जाय तो ऐसे विमान को 'अस्थायी' कहा जाता है और यदि इसमें अपनी नयी दशा में ही रहने की प्रवृत्ति हो तो इसे विमान का 'तटस्थ स्थायित्व' कहेंगे। स्थैतिक तथा गतिज स्थायित्व भी दो भिन्न अवस्थाएँ हैं। हम साइकिल के उदाहरण से इसे स्पष्ट करेंगे। स्थिर अवस्था में साइकिल खड़ी हो तो उसे थोड़ा-सा भी हिला देने पर उसमें गिर जाने की प्रवृत्ति आ जाती है। हम कहेंगे कि इसमें स्थैतिक स्थायित्व नहीं है। दूसरी ओर एक तीन पहियों की साइकिल में ऐसी कोई प्रवृत्ति न होने के कारण, स्थैतिक स्थायित्व है।

गतिज स्थायित्व का एक अच्छा उदाहरण साइकिल चलाते समय मिलता है। इस प्रकार के स्थायित्व को समझने के लिए एक वोल्टमापी-जैसा सुग्राहित यन्त्र लीजिए। इस यन्त्र की सहायता से विद्युत की वोल्टता को मापते समय उसमें तनिक-सा अन्तर आने पर जो प्रतिक्रिया इस यन्त्र में होती है, उसके अनुसार इसकी सुई एक स्केल पर चलती है और इस अन्तर की मात्रा के अनुसार ही एक निश्चित स्थान पर जा ठहरती है। सुई की गति का अध्ययन करने से पता लगता है कि यह गति दो प्रकार से हो सकती है।

(१) अन्तिम पाठ्यांक पर पहुँचते-पहुँचते सुई की चाल मन्द होती जाती है और पाठ्यांक पर जाकर रुक जाती है।

(२) सुई अन्तिम पाठ्यांक के आस-पास दोलन करती रहती है, और अन्त में यह निश्चित पाठ्यांक पर रुक जाती है। ठीक प्रकार से बने यन्त्र में यह क्रिया इतनी तीव्रता से होती है कि उसे आँखों से सुस्पष्ट देखा नहीं जा सकता।

विज्ञान का पाठक कहेगा कि इस प्रकार के यन्त्र में गतिज स्थायित्व है क्योंकि थोड़े से विघ्न से ही इसमें अपनी पहली दशा में आने अथवा नयी दशा में रहने की प्रवृत्ति आ जाती है, और वैमानिकी की भाषा में इस प्रकार की गति को अव-मन्दित[1] गति कहते हैं। किसी भी यांत्रिक व्यवस्था में घर्षण पैदा कर यह गति प्राप्त की जा सकती है।

चित्र संख्या ५८ में अवमन्दन गति की मात्रा में अन्तर पड़ने पर मशीन पर जो प्रभाव पड़ता है उसे दिखाया गया है। मान लीजिए कि मशीन आकस्मिक आवेग पा कर अपनी साम्यावस्था से हट जाती है। इसको इसी साम्यावस्था में लाने के लिए जो बल इस मशीन पर लगेंगे उनके कारण दोलन उत्पन्न होंगे और पर्याप्त अवमन्दन के अभाव में यह सम्भव है कि ये दोलन लुप्त न हों बल्कि समय के साथ बढ़ते जायँ। इनकी यह वृद्धि विपत्ति का कारण भी बन सकती है। एक अस्थायी मशीन में ऐसा ही होता है। सामान्य मात्रा में अवमन्दन से मशीन की गति पर जो प्रभाव पड़ता है वह चित्र संख्या ५८ ख में दिखाया गया है। इस दशा में मशीन स्थायी होती है और अवमन्दन कंपनों को उत्पन्न करती है जिनके लुप्त हो जाने पर मशीन पुनः बन्द हो जाती है।

1. Damped motion
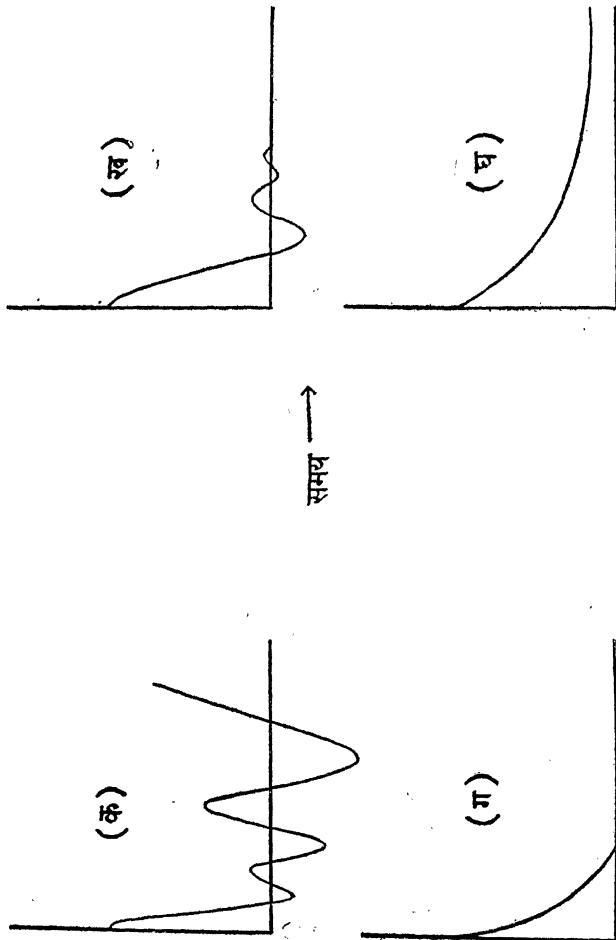
चित्र ५८—गतिज स्थायित्व।

चित्र संख्या ५८ ग में क्रांतिक अवमन्दन दिखाया गया है। इससे मशीन अति त्वरण के बिना साम्यावस्था में आ जाती है। इस गति को 'मृतस्पन्द' कहते हैं। चित्र संख्या ५८ घ में अति स्थायी मशीन दिखायी गयी है। यह मशीन साम्यावस्था दशा में बहुत धीरे-धीरे आती है। इस प्रकार के संलक्षणों से युक्त मशीन में सामान्यतः सुग्राहिता का अभाव होता है।

विमान भी एक ऐसी ही मशीन है। इसमें भी थोड़ा-सा विघ्न पड़ने पर उसके कारण पड़ी कमी को तीव्रता के साथ स्वतः पूर्ण करने की प्रवृत्ति होनी चाहिए। छोटे-छोटे विघ्नों को सुधारने के लिए विमान-चालक की कम-से-कम आवश्यकता पड़नी चाहिए। अवमन्दन बहुत कम होने पर पहली दशा में आने में, विमान को कठिनाई हो सकती है या विमान को अपनी पहली दशा में आने में इतनी देर लग सकती है, जिससे उसकी उड़ान में खतरा आ सकता है। बहुत अधिक अवमन्दन में भी इसे मशीन से कार्य लेने में असुविधा होती है। इस प्रकार विमान में स्थायित्व लाने के लिए उसमें अवमन्दन की मात्रा इन दोनों सीमाओं के बीच में होनी चाहिए। गणित के सिद्धान्तों और वात-सुरंगों के परीक्षणों की सहायता से यह बात स्पष्ट हो गयी है कि यह गुण विमान के भिन्न-भिन्न अंगों की बनावट, विशेष तौर पर उनके प्रति-दाब पर निर्भर है।

विमान के स्थायित्व पर विचार करते समय इसके तीनों अक्षों के स्थायित्व को ध्यान में रखना पड़ता है, क्योंकि यह सम्भव है कि एक अक्ष पर यह स्थायी हो और दूसरे पर न हो। पार्श्विक अक्ष के चारों ओर विमान की परिभ्रमण गति, हवा के झोंके से विमान की नासा के झुकने या ऊपर उठने से पैदा होती है। इसे विमान की 'दोलन गति' कहते हैं। इसको ठीक करने के लिए अपेक्षित दक्षता 'अनुदैर्घ्य-स्थायित्व' कहलाती है। इस स्थायित्व को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि विमान के आक्रमण-कोण में अस्थायी वृद्धि करने पर जो बल विमान पर लगे, वह इसकी नासा को नीचे झुकाये और इस प्रकार आक्रमण कोण को पुनः कम कर दे। पंखकाट का अध्ययन करते समय इस पर विचार किया जा चुका है। सामान्यतः यह क्रिया निम्नलिखित चार बातों पर निर्भर है—

(१) विमान का गुरुत्व केन्द्र अधिक पीछे नहीं होना चाहिए।

(२) मुख्य विमान पर दाब-केन्द्र की गति में अस्थायित्व उत्पन्न करने की

प्रवृत्ति होती है। ऐसे पंखकाट में, जिसकी निचली सतह उत्तल होती है, इसकी सम्भावना कम रहती है।

(३) किसी भी आक्रमणकोण पर, विमान के कबन्ध और अन्य भागों पर लगे बलों की मात्रा कभी अधिक भी हो सकती है। इन बलों के दाब-केन्द्र में भी आक्रमण-कोण के बदलने के साथ-साथ गति होने की सम्भावना रहती है। सामान्यत: यह गति सर्वदा अस्थायी दशा की ओर होती है, जिससे विमान के स्थायित्व में अन्तर पड़ सकता है अत: इसे कम करना चाहिए।

(४) मुख्य विमान की अपेक्षा पुच्छक विमान वायु-प्रवाह से कम कोण बनाता है (चित्र संख्या ५९)। इन दोनों विमानों की ज्या के बीच के कोण को 'अनुदैर्घ्य द्वितल कोण' कहते हैं। सामान्य विमानों में यह एक आवश्यक अंग समझा जाता है। परन्तु यह कहना कठिन है कि जिस विमान में यह अंग न होगा उसमें अनुदैर्घ्य स्थायित्व भी न होगा। वायु-प्रवाह से जो कोण पुच्छक विमान स्थापित करता है उसका स्थायित्व से अधिक सम्बन्ध है। इसी कारण मुख्य विमान से उत्पन्न अनुधावन क्रिया को ध्यान में रखना पड़ता है क्योंकि इस अनुधावन के कारण पुच्छ-विमान के रिगर अवपात-कोण की अपेक्षा वास्तविक आक्रमण-कोण में कुछ कमी आती है।

चित्र ५९—अनुदैर्घ्य द्वितल कोण।

यही कारण है कि मुख्य विमान और पुच्छक-विमान का वायुप्रवाह से एक कोण होने पर भी, वास्तव में एक अनुदैर्घ्य-द्वितल कोण बनता है और इसी से विमान में अनुदैर्घ्य-स्थायित्व आ जाता है। समंजनीय पुच्छ विमान में पुच्छ-विमान कोण को मुख्य विमान के कोण से अधिक किया जा सकता है, परन्तु इसकी आवश्यकता उसी समय पड़ती है जब मुख्य विमान का आक्रमण-कोण बहुत अधिक हो जाय, अर्थात्

अनुधावन कोण सामान्य दशा की अपेक्षा अधिक हो। यदि विमान चालक समंजनीय पुच्छ-विमान का ठीक प्रकार से प्रयोग न करें तो विमान में अनुदैर्घ्य स्थायित्व नहीं रहता।

मान लीजिए कि कोई विमान उड़ान कर रहा है और वायुप्रवाह से मुख्य विमान ४° आक्रमण-कोण और पुच्छक विमान २° आक्रमण-कोण पर है। पवन के झोंके से यदि इसकी नासा ऊपर उठ जाती है और अनुदैर्घ्य अक्ष १° पर झुक जाता है तो विमान अपने संवेग के कारण कुछ देर तक अपनी पूर्व दिशा में ही अपनी पूर्ववत् चाल से चलता रहेगा। इसलिए मुख्य विमान ५° आक्रमण-कोण पर तथा पुच्छ विमान ३° आक्रमण-कोण पर होगा। इससे मुख्य विमान का उद्भार बल बढ़ जाता है और इसकी गति आगे की ओर हो जाती है। पुच्छ विमान के उद्भार बल में इसकी अपेक्षा यही अधिक वृद्धि हो जायगी। यदि पुच्छ विमान के उद्भार की वृद्धि और गुरुत्व केन्द्र से इसकी दूरी; इन दोनों के गुणनफल से प्राप्त घूर्ण, मुख्य विमान के उद्भार की वृद्धि और गुरुत्व केन्द्र से इसकी नयी दूरी; इन दोनों के गुणनफल से प्राप्त घूर्ण की अपेक्षा अधिक हो तो विमान में स्थायित्व होगा। कभी-कभी मुख्य विमान पर दाब-केन्द्र की गति शून्य के बराबर होती है और अनुदैर्घ्य-द्वितल कोण भी अनुदैर्घ्य-स्थायित्व के लिए परम आवश्यक नहीं समझा जाता। ऐसी दशा में मुख्य रूप से इस प्रकार के स्थायित्व को गुरुत्व केन्द्र की अग्रस्थिति और पुच्छक-विमान का क्षेत्रफल अधिकतम प्रभावित करता है। जब कभी पवन के झोंके से विमान की नासा ऊपर की ओर उठा दी जाती है तो पुच्छ-विमान को घुमा दिया जाता है जिससे उसका आक्रमण-कोण मुख्य विमान की अपेक्षा कम हो जाय। इस प्रकार पुच्छ-विमान पर जो बल लगता है उसकी दिशा इस प्रकार से होती है जिससे वह मुख्य विमान के दाब केन्द्र से उत्पन्न बल को सन्तुलन में रखे और इस प्रकार सम्पूर्ण विमान पुनः साम्यावस्था को प्राप्त कर लेता है।

सामान्य उड़ान में उद्भार बल उदग्र और भार के बराबर तथा विपक्षी होता है। लोटन की अवस्था में विमान का एक पक्ष नीचे झुक जाता है और दूसरा ऊपर उठ जाता है। इस स्थिति में विमान का उद्भार कुछ झुका रहता है और उसी सीधी रेखा पर नहीं होता जिस पर उसका भार होता है। इन दो
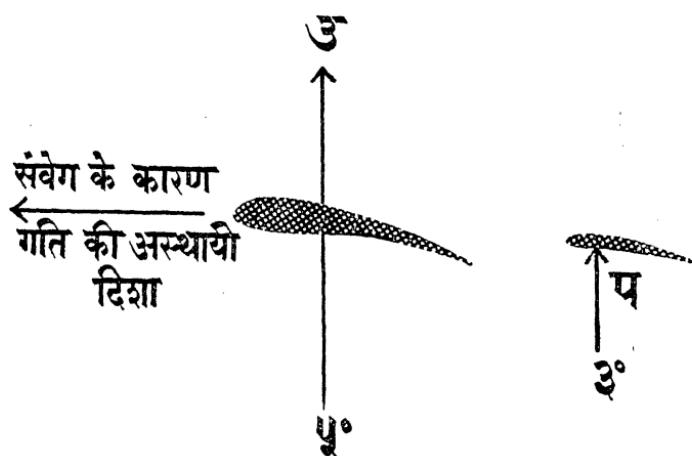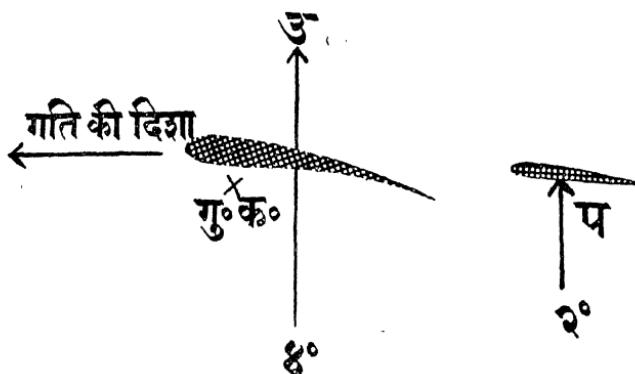
चित्र ६०—अनुदैर्घ्य स्थायित्व ।

असमानान्तर बलों के कारण विमान की मशीन अपना सन्तुलन खो बैठती है और विमान में निचले पक्ष की दशा में चलने की प्रवृत्ति आ जाती है। इसे विमान की 'बगली फिसलन' कहते हैं। इससे पार्श्विक स्थायित्व प्राप्त होता है।

इसके लिए आवश्यक है कि विमान में लोटन की प्रवृत्ति थोड़ी मात्रा में भी आने पर, उस पर ऐसे बल लगने आरम्भ हों जिससे वह पुनः अपनी साम्यावस्था में आ जाय। कुछ सीमा तक यह गुण सब विमानों में विद्यमान होता है, यदि वे कम आक्रमण-कोण पर उड़ान कर रहे हों। क्योंकि मान लीजिए उसका एक पक्ष नीचे की ओर गिरता है, इसका स्थान लेने के लिए वायु ऊपर की ओर आयेंगी जिससे प्रभावकारी (आक्रमण-कोण में) वृद्धि होगी, अतः उस पक्ष का उद्भार बल भी बढ़ेगा। इसी तर्क के अनुसार ऊपर जानेवाले पक्ष के उद्भार और आक्रमण-कोण में भी कमी होगी। ये दोनों परिवर्तन एक दूसरे के विपरीत होने के कारण एक 'बल-युग्म' पैदा करेंगे जो विमान में उत्पन्न लोटन की प्रवृत्ति को रोकेगा। यह उसी समय सम्भव है जब विमान वास्तव में लोटन की क्रिया में लगा हो और आक्रमण-कोण भी थोड़ा हो। यदि आक्रमण कोण, अवपात कोण से अधिक हो तो गिरते पक्ष के कोण में वृद्धि होने के साथ उद्भार में कमी होगी जब कि ऊपरवाले पक्ष के आक्रमण कोण में कमी के साथ उद्भार में वृद्धि होगी। इस दशा में विमान में लोटन क्रिया तीव्रता से होने लगेगी। इसे कम करने के लिए पक्ष-कोरों के समीप अपने आप कार्य करनेवाले खाँचों का प्रयोग किया जाता है। एक पक्ष के नीचे झुकने के साथ ही, आक्रमण-कोण में हुई वृद्धि उस पक्ष पर लगे खाँचे को खोल देती है जिससे उद्भार में वृद्धि होती है और पक्ष अपनी पूर्व अवस्था में आ जाता है। इस प्रकार ये खाँचें विमान में पार्श्विक स्थायित्व को लाने में काफी सहायक होते हैं।

पार्श्विक स्थायित्व को द्वितल कोण की सहायता से भी सुधारा जा सकता है। यह विमान की सामान्य स्थिति में क्षैतिज तल और प्रत्येक पक्ष के पार्श्विक अक्ष के बीच का कोण होता है। जब तल ऊपर की ओर ढालू होता है तो यह धनात्मक और जब नीचे की ओर ढालू हो तो यह ऋणात्मक कहलाता है। सामान्यतः धनात्मक द्वितल-कोण का ही अधिक प्रयोग होता है। जब विमान के दोनों पक्ष एक समान झुके हों तो पक्षों का संयुक्त उद्भार बल भार के बराबर होगा और यह उदग्र होगा। परन्तु इसके एक पक्ष के नीचे की ओर झुकने पर पक्षों का संयुक्त बल निचले पक्ष की ओर झुका होता है और भार उदग्र होता है। इस प्रकार दोनों बलों में सन्तुलन न रहने के कारण विमान पर बल की बगल में

नीचे की ओर एक बल कार्य करेगा, जिसके कारण विमान इस बल की दिशा में चलेगा अर्थात् बगल के बल फिसलेगा। विमान की इस क्रिया से फिसलन की विरुद्ध दिशा में वायुप्रवाह उत्पन्न होता है। यह वायुप्रवाह निचले तल को उभरे तल की अपेक्षा अधिक आक्रमण कोण पर टकरायेगा।

जहाँ तक इस फिसलन का सम्बन्ध है, निचले तल का पक्ष-कोर अगले सिरे का कार्य करता है। जिस प्रकार ज्या पर दाब-केन्द्र अगले सिरे के समीप होता है, ठीक इसी प्रकार इस दशा में भी पाट के साथ दाब-वितरण-केन्द्र, निचले तल पर होता है। इन दोनों कारणों से निचले तल को अधिक उद्भार प्राप्त होता है और बगल फिसलन आरम्भ होने के कुछ बाद ही विमान अपनी पूर्व स्थिति पर आ जाता है। वास्तव में विमान के कबन्ध के कारण बगल फिसलन से उत्पन्न वायुप्रवाह, ऊपरी पक्ष के अधिकांश भाग तक नहीं पहुँच पाता और इससे स्थायित्व में सहायता मिलती है। कुछ भी हो, ३° या इससे अधिक द्वितल कोण से पार्श्विक स्थायित्व में काफी सीमा तक सहायता मिलती है। पार्श्विक स्थायित्व को प्राप्त करने के अन्य साधनों में इसको सबसे अच्छा साधन माना जाता है।

पार्श्विक स्थायित्व विमान के गुरुत्व केन्द्र की स्थिति पर भी निर्भर करता है। इस क्रिया में ज्यों ही लोटन क्रिया पूर्ण हुई तथा विमान एक पक्ष को नीचे किये उड़ा, इस निचले पक्ष की ओर बगल फिसलन के बाद ही विमान अपनी पूर्व अवस्था में आ जाता है। यही बगल फिसलन दैशिक स्थायित्व में अन्तर डालती है। दैशिक स्थायित्व वाले विमान में उसके मार्ग में थोड़ी-सी बाधा आने पर उसमें पुनः अपने आप इसे ठीक कर लेने की प्रवृत्ति आ जाती है। मान लीजिए कि विमान के मार्ग में कोई विक्षेप होता है। अपने प्राकृतिक संवेग के कारण, थोड़ी देर के लिए विमान अपनी पुरानी दिशा में ही चलता रहेगा। इस-लिए अनुदैर्घ्य अक्ष, वायु-प्रवाह के साथ कुछ झुका रहेगा और विमान के एक तरफवाली सब सतहों पर दाब भी उत्पन्न होगा। यदि गुरुत्व केन्द्र के पीछे दाब के कारण उत्पन्न घूर्ण, गुरुत्व केन्द्र के अगले दाब के कारण उत्पन्न घूर्ण की अपेक्षा अधिक हो तो विमान अपने पहले मार्ग पर वापस आने लगेगा। यदि आगे की ओर का घूर्ण पीछेवाले से अधिक हो तो विमान अपने पहले मार्ग से और दूर

हटता जायेगा। स्पष्ट है कि दाब की अपेक्षा घूर्ण की मात्रा का दैशिक स्थायित्व पर अधिक प्रभाव पड़ता है और घूर्ण की मात्रा इस बात पर निर्भर है कि गुरुत्व केन्द्र से कोई तल कितनी दूर है। उदाहरणार्थ, पार्श्विक स्थायित्व प्राप्त करने के लिए एक लम्बे कबन्ध के पीछे एक छोटा-सा सिफना उतना ही प्रभावशाली होगा जितना कि छोटे कबन्ध के पीछे एक बड़ा सिफना। यह पुच्छक-विमान के बीचोबीच एक छोटे पंखकाट के रूप में होता है और उदग्र रहता है। इसकी क्रिया बहुत कुछ पुच्छक-विमान-सी होती है। इससे जो बल उत्पन्न होता है वह विमान की, उसके सामान्य अक्ष पर परिभ्रमण-गति करने की चेष्टा को नियंत्रण में रखता है।

विमान के पार्श्विक और दैशिक स्थायित्व में घना सम्बन्ध है। पार्श्विक स्थायित्व के लिए बगली फिसलन आवश्यक है और इस बगली फिसलन के कारण उत्पन्न वायुदाब का दैशिक स्थायित्व के लिए होना आवश्यक है। इस दाब के कारण विमान की नासा आपेक्षिक वायु की ओर जाने लगती है। अर्थात् इस अवस्था में यह बगल फिसलन की दिशा में होती है। इस कारण विमान निचले पक्ष की ओर गति करता है। विमान में जितनी अधिक मात्रा में दैशिक स्थायित्व होता है, बगल फिसलन की क्रिया में उतना ही अधिक वह अपने मार्ग से दूर जाता है। इसके कारण ऊपरवाला पक्ष निचले पक्ष की अपेक्षा अधिक वेग से चलता है और इस प्रकार अधिक उद्भार प्राप्त करता है, अतः विमान और अधिक कन्नी करेगा। इससे विमान के मुड़ने की अवस्था समझी जा सकती है। यदि बायें मुड़ना हो तो सुकान के प्रयोग की अपेक्षा विमान को इसी दिशा में कन्नी किया जायगा जिससे उसकी गति में अन्दर की ओर फिसलन होगी और वह बायीं ओर मुड़ जायगा। मोड़ने का यह ढंग आजकल काफी प्रचलित है।

किसी भी विमान में स्थायित्व हो या नहीं चालक के लिए तो इसे अपने नियन्त्रण में रखना बहुत आवश्यक है, अन्यथा निरापद रूप से वह उड़ान नहीं कर सकेगा। विमान को किसी भी अभीष्ट स्थिति में जबर्दस्ती लाने तथा विमान के उस मार्ग से भटकने की चेष्टा को रोकने के लिए चालक की सुविधा के लिए किसी न किसी प्रकार की नियंत्रण-व्यवस्था का रहना अत्यन्त आवश्यक है। विमान-चालक की सुविधा के लिए इस प्रकार के तीन यन्त्र चालक-कोष्ठ में होते हैं जिनसे वह विमान पर नियंत्रण कर सके।

१---अनुदैर्घ्य नियन्त्रण उत्थापकों की सहायता से होता है (पुच्छक विमान के पीछे लगे पल्ले उत्थापक का कार्य करते हैं)।

२---पार्श्विक नियन्त्रण पक्षकों की सहायता से होता है (प्रत्येक पक्षकोण के समीप पंखकाटों के पीछे लगे पल्ले इस कार्य को करते हैं)।

३---दैशिक नियन्त्रण सुकान की सहायता से होता है (सिफने के पीछे कब्जों से कसा उदग्र पल्ला ही 'सुकान' कहलाता है)।

अनुदैर्घ्य नियन्त्रण में, उत्थापक की सहायता से विमान के उड़ानकोण को बदला जा सकता है और इस प्रकार विमान की नासा इच्छानुसार ऊपर या नीचे की जा सकती है। उत्थापक जायस्टिक द्वारा नियंत्रित रहते हैं। यह चालक-कोष्ठ में चालक के सम्मुख रहती है। इसको पीछे खींचकर उत्थापकों को ऊपर उठाया जाता है जिससे विमान ऊपर उठने लगता है, तथा इसको आगे चलाकर उत्थापकों को नीचे किया जा सकता है जिससे विमान नीचे उतरने लगता है।

पार्श्विक नियन्त्रण पक्षकों द्वारा होता है। पक्षक[1] आपस में जुड़े रहते हैं इसलिए जब एक पल्ला नीचे झुकाया जाता है तो दूसरी पक्ष-कोर वाला पल्ला अपने आप उठ जाता है। जब वायु के झोंके से विमान कुछ कोण बनाता पलट जाता है तो विमान-चालक पक्षकों को दबाकर उसे ठीक कर लेता है, इस प्रकार विमान पक्षकों की सहायता से एक पक्ष दूसरेसे ऊपर कर उड़ सकता है। पक्षकों को चलाने के लिए या तो हाथ से चलानेवाला नियन्त्रण यन्त्र होता है या कभी-कभी मोटरगाड़ी के स्टियरिंग ह्वील की भाँति एक नियन्त्रण चक्का होता है। पक्षकों और उत्थापकों[2] की गति का नियन्त्रण चालक-घर में रखे एक यन्त्र से ही होता है। इस यन्त्र को बायीं ओर ठेलने से दायाँ पक्षक नीचे और बायाँ पक्षक ऊपर उठ जाता है। इसके साथ ही विमान का बायाँ पक्ष नीचे और दायाँ पक्ष ऊपर उठ जाता है। इस प्रकार पूरा विमान बायीं ओर मुड़ जाता है।

दैशिक नियन्त्रण के लिए विमान चालक, चालक-कोष्ठ में रखे सुकान[3] के नियन्त्रक को पैरों से चलाता है। दाहिना पैर आगे की ओर दाबने से सुकान का

1. Aleron 2. Elevator 3. Ruddar

पिछला हिस्सा दाहिनी ओर चलेगा और विमान भी दाहिनी ओर मुड़ेगा। सुकान की सहायता से विमान को अपने सही मार्ग पर रखने में सहायता मिलती है और इसे विमान को मोड़ने के लिए पक्षकों के साथ काम में लाया जाता है। सामान्यतः सुकान की गति से सिफने पर और उत्थापक की गति से पुच्छक विमान पर बल उत्पन्न होता है। जैसे-जैसे पक्षक को नीचे या ऊपर खींचा जाता है वैसे-वैसे पक्ष पर उद्भार बढ़ता या घटता है। यह ध्यान में रखना चाहिए कि प्रत्येक दशा में नियन्त्रण-तल को सामान्यतः विमान के गुरुत्व केन्द्र से जितनी दूर सम्भव हो उतनी दूर ही रखा जाता है, जिससे विमान की स्थिति बदलने के लिए उसे काफी उत्तोलकता[1] मिल सके।

स्थायित्व और नियन्त्रण में अन्तर स्पष्ट है। एक ओर तो स्थायित्व के उपकरण, जिनमें पुच्छक विमान, सिफना इत्यादि सम्मिलित हैं, विमान के गड़बड़ा जाने से उसे पुनः अपने पहले उड़ान मार्ग पर ले आने का प्रयत्न करते हैं। दूसरी ओर नियन्त्रण उपकरण, जैसे उत्थापक, सुकान, इत्यादि का उपयोग कर विमान-चालक विमान को किसी भी इच्छित स्थान पर ले जा सकता है।

नियन्त्रण और स्थायित्व के सम्बन्ध में वर्णन की गयी उपर्युक्त व्यवस्था सामान्य विमानों का एक मुख्य अंग है; परन्तु द्रुतगामी विमानों के प्रचलन के बाद भविष्य में इस प्रकार के विमानों के नियन्त्रण तथा स्थायित्व में अन्य बहुत-सी कठिनाइयों की सम्भावना हो सकती है। इन कठिनाइयों को किस प्रकार और कहाँ तक सफलतापूर्वक दूर किया जा सकेगा, यह अभी विचार का विषय है।

1. Leverage

बारहवाँ अध्याय

द्रुतगामी विमान

अब तक हम जो भी चर्चा कर रहे थे वह यह मानकर कि वायु के घनत्व में विमान की चाल के कारण कोई परिवर्तन नहीं आता। विमान की धीमी चाल पर तो ऐसा माना भी जा सकता है, लेकिन तेज चाल पर ऐसी स्थिति का मानना कठिन है। वैमानिकी में ध्वनि-चाल को मानक मानते हैं। जो विमान ध्वनि-चाल की एक तिहाई चाल के आस-पास उड़ान करता है सामान्यत: उसकी उड़ान से वायु-घनत्व में हुए परिवर्तन नगण्य से होते हैं। किन्तु ध्वनि की चाल के आधी चाल से भी अधिक चाल पर जो विमान उड़ान करता है उसकी उड़ान के कारण वायु के घनत्व में जो परिवर्तन आते हैं वे साधारण नहीं होते। सामान्यत: २५० मील प्रति घण्टे की चाल से उड़नेवाले विमानों को ऐसे परिवर्तनों का सामना नहीं करना पड़ता, परन्तु द्रुतगामी विमान जो सामान्यत: ४०० मील प्रति घंटे से अधिक चाल पर उड़ान करते हैं, इन कठिनाइयों से नहीं बच पाते।

वायु संपीड्य होते हुए भी विमान की सामान्य चाल पर एक असंपीड्य गैस की भाँति क्रिया करती है। तो जब यह किसी पिण्ड पर से प्रवाह करती है तो इसके घनत्व में पानी के समान कोई परिवर्तन नहीं होता; वैज्ञानिक दृष्टि से ऐसा कहना ठीक न होगा। विज्ञान का विद्यार्थी जानता है कि वायु प्रत्येक चाल पर संपीड्य है। जब विमान अपनी सामान्य चाल पर उड़ान करता है तो वायु के घनत्व में जो परिवर्तन होता है वह अत्यन्त विरल होता है और इस कारण हम अपनी सुविधा के लिए यह मान लेते हैं कि इस कम चाल पर इसके घनत्व में विमान की उड़ान के कारण कोई अन्तर नहीं पड़ता। विमान की उड़ान चाल ज्यों-ज्यों अधिक तेज होती है त्यों-त्यों इस प्रकार के परिवर्तन सघन होते जाते हैं और कभी-कभी तो वे उड़ान में खतरनाक सिद्ध होते हैं।

मान लीजिए एक विमान १०० मील प्रति घंटे की चाल से उड़ान कर रहा है, यदि वायु को असंपीड्य मानकर वातरोध की मात्रा मालूम करें तो इसकी मात्रा में वायु को असंपीड्य मानने के कारण $\frac{1}{2}$ प्रतिशत त्रुटि होती है। यदि विमान ३०० मील प्रति घंटे की चाल से उड़ान कर रहा हो तो यही त्रुटि $\frac{1}{4}$ प्रतिशत से ४ प्रतिशत तक बढ़ जाती है। ४०० मील प्रति घंटे की उड़ान पर यह ७ प्रतिशत हो जाती है। ज्यों-ज्यों विमान की चाल बढ़ती है इसकी त्रुटि में वृद्धि होती जाती है। ६०० मील प्रतिघंटे की उड़ान पर यह त्रुटि १६ प्रतिशत तक हो जाती है, लेकिन ३०० मील की उड़ान तक यह त्रुटि इतनी कम होती है कि विमान की उड़ान पर इसका प्रभाव शून्य होता है। परन्तु इससे अधिक चाल पर ज्यों-ज्यों इस त्रुटि में वृद्धि होने लगती है * (अर्थात् ७६० मील प्रति घंटे की चाल से बहुत पहले ही) त्यों-त्यों वायु के असंपीडनात्मक गुणधर्म में परिवर्तन होने लगता है। ध्वनि की चाल वायु के ताप पर निर्भर होती है, वायु के दाब पर नहीं। किसी भी ताप पर ध्वनि की चाल निम्नलिखित सूत्र से मालूम की जा सकती है।

ध्वनि-चाल = ४५ $\sqrt{\text{ताप}}$ मील प्रति घंटा।

यहाँ पर सामान्य ताप को परम ताप में बदल लेते हैं—

परम ताप = सामान्य ताप + २७३°।

विमान के पक्षों के चारों ओर ताप एक-समान नहीं होता और वायुमण्डल में भी स्थान, ऊँचाई, ऋतु, समय तथा मौसम के अनुसार ताप में परिवर्तन आता रहता है। ऊँचाई के साथ वायु के ताप में कमी आती है। अतः ऊँचाई के साथ वायु में ध्वनि की चाल में भी कमी होती जाती है। विमान के पक्षों के चारों ओर भी ध्वनि की चाल एक समान नहीं होती। इस तथ्य का द्रुतगामी विमानों की उड़ान में पर्याप्त महत्त्व है। स्थान और ऋतु सम्बन्धी परिवर्तनों के कारण समुद्र-तल पर भी ध्वनि-चाल में परिवर्तन आता रहता है, जिसका द्रुतगामी उड़ान पर प्रभाव पड़ता है। वायुमण्डल में जहाँ तक ध्वनि-चाल ७६० मील के आस-पास रहती है वहाँ तक ही विमान की उड़ान सुगम रहती है।

* ध्वनि की चाल सामान्यतया ७६० मील प्रति घण्टा है।

जब विमान वायु की ध्वनि-चाल की अपेक्षा बहुत कम चाल पर उड़ान करता है तो वह वायुमण्डल में अपने आगे-आगे आने का सन्देश-सा भेजता जाता है। इसके मार्ग की वायु का सन्देश मिलते ही इसके आगे की वायु अपने को इस विमान के आगमन के लिए तैयार कर लेती है, जिसके कारण वायु (गैस के भिन्न-भिन्न अणुओं का मिश्रण है) के अणुओं को यह अवसर मिल जाता है कि वे अपने को विमान की गति की अन्धा-धुन्ध टक्करों से बचा सकें। अतः वायु के उस भाग के घनत्व में किसी प्रकार के अन्तर का अनुभव नहीं होता। विमान के इस सन्देश को भेजने का श्रेय विमान के इर्द-गिर्द उत्पन्न वायु-दाब की कमी या वृद्धि के क्षेत्रों से उत्पन्न वायु की तरंगों को है। इन क्षेत्रों का वायु-दाब, वायु की तरंगों द्वारा पास की वायु में सब दिशाओं में फैल जाता है। ये तरंगें, ध्वनि-तरंगों के समान होती हैं और वायु में उसी की चाल (समुद्रतल पर ७६० मील प्रतिघंटा या १,१०० फुट प्रति सेकण्ड) पर चलती हैं। वस्तुतः ध्वनि वायु के संपीडन के कारण उत्पन्न दाब-तरंग ही है। इस दशा में यदि विमान स्वयं भी ध्वनि की चाल पर उड़ान करे तो विमान के आगमन के सन्देश को उसकी उड़ान से आगे जाने का पर्याप्त समय नहीं मिलता और वायु आघात के साथ विमान से टक्कर खाती है। इस आघात के कारण स्थानीय वायु का संपीडन होने लगता है जिससे उस भाग की वायु के वेग, दाब, घनत्व में आकस्मिक परिवर्तन आने की सम्भावना रहती है और वायु-प्रवाह विमान के तल से अलग होने लगता है। ऐसा होने पर उद्भार, वातरोध और अन्य वायुगति बलों और घूर्ण-बलों में भी परिवर्तन होने लगता है। इन परिवर्तनों के कारण वायुगतिकी के नियमों में काफी संशोधन करने की आवश्यकता पड़ती है। इससे एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि विमान की चाल और विक्षोभ के विसरण की चाल के अनुपात का द्रुतगामी विमानों की उड़ान पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। ज्यामिति की सहायता से इस तथ्य को इस प्रकार समझा जा सकता है।

मान लीजिए कोई पिण्ड बिन्दु (अ) से बिन्दु (ब) तक (च) चाल से (स) समय में पहुँचाता है। दूरी अ ब = च स। इतने समय में ही (अ) बिन्दु पर उत्पन्न दाब-तरंग ध्वनि की चाल (क) पर (क) (स) दूरी तय करेगी। इस प्रकार यह तरंग पिण्ड से आगे रहेगी। ठीक इसी तरह मार्ग के अन्य विन्दुओं

पर उत्पन्न तरंगें एक एक करके पिण्ड से आगे चलेंगी। इस प्रकार ध्वनि-चाल की अपेक्षा कम चाल पर चलनेवाला पिण्ड सर्वदा तरंगों के गुब्बारों में रहेगा
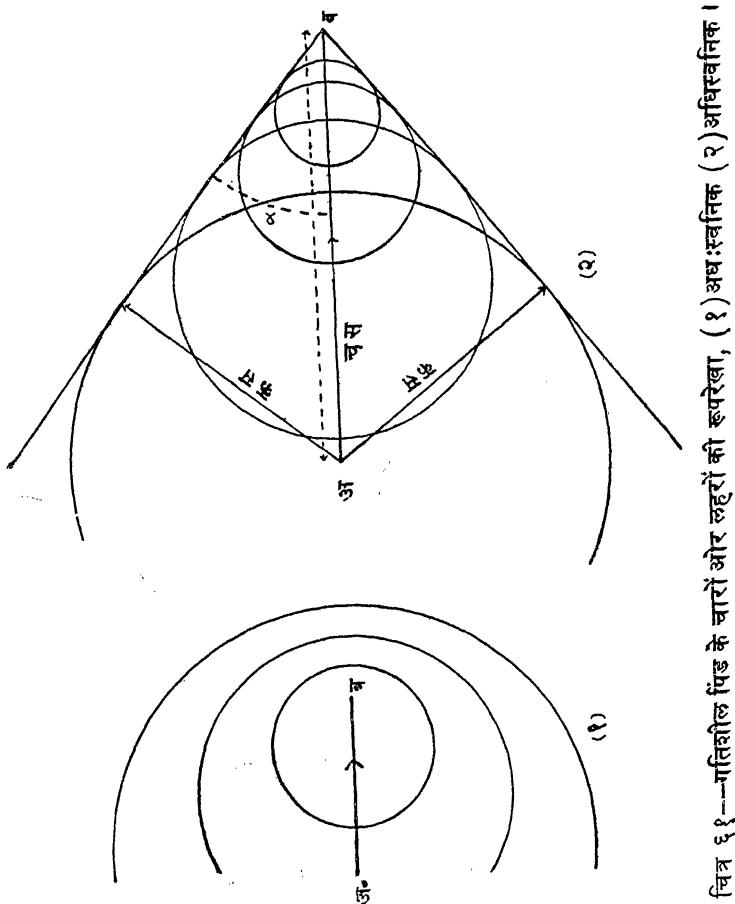
चित्र ६१—गतिशील पिंड के चारों ओर लहरों की रूपरेखा, (१) अधःस्वनिक (२) अधिस्वनिक।

और तरंग का प्रत्येक गुब्बारा अपने से पहले बने गुब्बारे के अन्दर फैलता जायगा। चित्र (संख्या ६१) में ध्वनि से तेज चलनेवाले पिण्ड द्वारा उत्पन्न

दाब-तरंगों का लेखाचित्र चित्र के भाग १ में दिखाया गया है। इसमें पिण्ड, दाब-तरंगों से आगे रहता है क्योंकि पिण्ड की चाल (च) इस दशा में ध्वनि की चाल (क) से अधिक है। तरंगों से उत्पन्न तमाम गुब्बारे एक शंकु के भीतर रहते हैं। स्पष्ट है कि किसी भी समय दाब-तरंगों की चरम सीमा को इस शंकु का तल व्यक्त करता है। इस शंकु से बाहर की वायु पर पिण्ड की उपस्थिति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। एक और बात यह भी है कि किसी भी समय तरंगों की सीमा का शंकु के तल से स्पर्श अवश्य होता रहता है। ऐसी अवस्था में पिण्ड के चलने से उत्पन्न विक्षोभ, इस शंकु के तल पर अधिकतम होते हैं। दो आयामों में इस शंकु को रेखाओं द्वारा व्यक्त किया जा सकता है (देखिए उपर्युक्त चित्र २)। किसी भी समय दाब-गुब्बारों को व्यक्त करनेवाले सभी वृत्त इन दोनों रेखाओं का स्पर्श अवश्य करते हैं। ये रेखाएँ स्वयं बाहर की ओर निकलती हैं। इसलिए इनकी चाल का अवयव जो इन रेखाओं का लम्ब होता है, ध्वनि की चालको व्यक्त करेगा। इन रेखाओं को मेश 'रेखा' कहते हैं। त्रिकोणमिती के अनुसार ज्या $\alpha \frac{\text{क स}}{\text{च स}} = \frac{\text{क}}{\text{च}}$ पिण्ड की चाल (च) और (ब) स्थिर वायु में ध्वनि की चाल (क) अर्थात् क च अनुपात को मेश संख्या कहते हैं। वास्तव में यह संख्या ध्वनि की चाल के आपेक्षिक विमान की चाल को व्यक्त करती है। यदि किसी विमान की मेश संख्या $\frac{1}{2}$ है तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि विमान ध्वनि की चाल से आधे पर उड़ान कर रहा है। यहाँ पर दोनों चालें अर्थात् विमान व ध्वनि की चालें वास्तविक चालें हैं। ध्वनि की चाल वायु के ताप के अनुसार बदलती है अतः मेश संख्या में ध्वनि की चाल उस वायु के ताप के अनुरूप होनी चाहिए जिसमें विमान उड़ रहा हो। ध्वनि-चाल केवल ताप पर ही निर्भर नहीं है, उस पर वायु के घनत्व का असर भी पड़ता है। इन दोनों तत्त्वों में ताप ही नियंत्रक अंश होता है।

वास्तव में ध्वनि की चाल परम ताप के वर्ग के समानुपात होती है। इस रीति से परम शून्य ताप पर ध्वनि की चाल भी शून्य होनी चाहिए। इसके अनुसार बहुत कम चाल और बहुत कम ताप पर वात सुरंगों में द्रुतगामी विमानों के परीक्षणों की संभावना होने लगी। इससे एक तथ्य और सामने आता है कि

वास्तव में ध्वनि-चाल से अधिक चाल पर उड़ान करना इतना प्रधान नहीं होता जितनी ध्वनि की चाल के आस-पासवाली चालों पर की उड़ान है अर्थात् जिनकी मेश संख्या एक के लगभग पहुँचने का प्रयत्न करती है। परम शून्य ताप पर ऐसे परीक्षण कठिन होते हैं, परन्तु ऐसे स्थिर तापमण्डल में जहाँ ताप –६० से० और ध्वनि की चाल ६६० मील प्रतिघंटा होती है, इस प्रकार की उड़ान के परीक्षण सुगमता से किये जा सकते हैं। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि ध्वनि की चाल में कमी ताप के कारण होती है, ऊँचाई के कारण नहीं।

जब विमान ध्वनि की चाल के आस-पास अथवा मेश संख्या १ के आसपास उड़ान करता रहता है, तो उसे स्वभावतः अधिक मात्रा में वातरोध का सामना करना पड़ता है और जब विमान की चाल ध्वनि की चाल के बराबर होने जाती है तो जो प्रतिक्रियाएं होती हैं उनको समझना कठिन बात नहीं है।

आघात तरंगें

मान लीजिए कि विमान का एक पक्ष कम चाल पर उड़ने के लिए बनाया गया है। लेकिन इसे अधिक चाल पर उड़ान करने के लिए त्वरण देते हैं और यह $\frac{3}{4}$ ध्वनि-चाल पर अपनी उड़ान आरम्भ करता है। इस दशा में इस पंखकाट के ऊपरी भाग पर पक्षों की ध्वनि से सापेक्षिक वायुगति में काफी वृद्धि होगी। यदि इस विमान के पक्ष की अग्रचाल काफी अधिक हो तो ऊपर के तल के किसी ऐसे बिन्दु पर जो अगले सिरे से अधिक पीछे न हो, वहाँ की स्थानीय ध्वनि-चाल होगी। विमान के पक्ष के पिछले सिरे से ध्वनि की चाल पर जो भी दाब-तरंग आगे की ओर जायेगी उसे अपने विपरीत वायु-प्रवाह का सामना करना पड़ेगा जो स्वयं भी स्थानीय ध्वनि की चाल पर प्रवाह कर रहा होगा। पक्ष के ऊपरी तल के अधिकतम चालवाले बिन्दु पर अधिकतम विक्षोभ एकत्र हो जायेगा और वहाँ पर एक स्पष्ट आघात तरंग दिखाई देगी। यदि पक्ष की अग्रगति में और वृद्धि कर दें तो निचले तल पर इसी प्रकार की आघात तरंग उत्पन्न होती है और ऊपरी तल की आघात तरंग विमान की पूंछ की दिशा में नीचे की ओर चलेगी। अन्त में अधिक चाल पर दोनों आघात तरंगें विमान के पक्ष के पिछले सिरे के साथ मिल जाती हैं। इन आघात-तरंगों का दो ढंग से वातरोध पर प्रभाव पड़ता है। एक तो आघात-तरंगों के आरम्भ में सीमान्त-स्तर कुछ घना

होता है, यह तल से अलग भी हो सकता है। दूसरे इस आघात से गुजरते समय गति की गतिज ऊर्जा उष्मा में बदल जाती है। इन दोनों अवस्थाओं में कुल परिणाम यह होता है कि विमान के पक्ष के वातरोध में काफी वृद्धि हो जाती है। थोड़े-से आघात से भी ०·७ से कम मेश संख्या पर वातरोध गुणांक दुगना हो जाता है। ज्यों-ज्यों आघात में वृद्धि होती है त्यों-त्यों एक ऐसी स्थिति भी आ सकती है कि एक सामान्य पक्ष में वातरोध गुणांक १० गुना भी हो जाय। इतनी तेजी से वातरोध में वृद्धि होने के कारण विमान की सतत गति को कायम रखने के लिए एक पर्याप्त शक्तिवाले इंजन की आवश्यकता पड़ती है। वात-रोध में वृद्धि होने के साथ ही उद्भार में आकस्मिक कमी हो जाती है। इस समस्त क्रिया को आघात-अवपात[1] कहते हैं। विमान के पक्ष की चाल के ध्वनि की चाल पर पहुँचने के पूर्व ही यह क्रिया पूरी हो जाती है। जिस मेश संख्या पर यह क्रिया होती है उसको 'क्रांतिक मेश संख्या' कहते हैं। यह क्रिया विमान के किसी भी भाग पर हो सकती है। जहाँ भी यह सम्पन्न होगी वहाँ वातरोध में वृद्धि अवश्य होती है और इस क्रिया के साथ-साथ उद्भार में कमी भी होगी। इसके परिणाम-स्वरूप दाब-वितरण एक नया रूप धारण कर लेता है और दाब-केन्द्र में भी परिवर्तन हो जाता है। लगभग इसी प्रकार के लक्षण अधिक अवपात पर होते हैं। यही कारण है कि क्रांतिक मेश संख्या को आघात अवपात-चाल भी कहते हैं। यदि विमान एक से अधिक मेश संख्या पर उड़ान करता है तो इसे अधिस्वनिक और यदि एक से कम पर उड़ान कर रहा हो तो इसे अधःस्वनिक कहते हैं। अतिस्वनिक[2] क्षेत्र क्रांतिक मेश संख्या से आरम्भ होता है। इस दशा में यह संख्या १ से कम होती है। विमान बनाते समय इस संख्या को अधिक से अधिक रखने का प्रयत्न किया जाता है। इसके लिए मोटे पक्ष नहीं रखे जा सकते और पतले पक्ष अधिक चाल पर उत्पन्न बल को सँभालने में अस-मर्थ होते हैं। आजकल परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि हर ढंग से पतले पक्ष ही अधिस्वनिक[3] विमानों के लिए उपयुक्त होते हैं।

अब ऐसे विमान भी बनने लगे हैं जो ध्वनि की चाल पर उड़ान करने में

1. Shock stall 2. Transonic 3. Supersonic

समर्थ होते हैं। जब ये विमान 'ध्वनि-रोध' को पार करते हैं तो वायु में क्रम से दो बार बड़े जोर का धमाका होता है। क्रांतिक मेश संख्या धमाके होनेवाले वातरोध के स्थान के बहुत समीप के बिन्दु को बताती है। इस 'वातरोध' को पार करने की सम्भावनाओं को वातरोध के दृष्टिकोण से अध्ययन किया गया है और वातरोध गुणांक से इसका पता लगता है जो एक निश्चित आकार के विमान के लिए उड़ान के साधारण नियमों के अनुसार निश्चित होता है। इसके अनुसार वातरोध वेग के वर्गानुरूप ही बढ़ता है। वातरोध गुणांक में परिवर्तन का अभिप्राय यह होता है कि उक्त स्थिति की कोई निश्चिति नहीं होती। एक पतले पंखकाट के लिए, भिन्न मेश संख्याओं पर वातरोध गुणांक लेने से पता लगता है कि सामान्यतः मेश संख्या ०·७ के आसपास तक वातरोध गुणांक स्थिर रहता है अर्थात् उड़ान के सामान्य नियमों का मेश संख्या ०·७ तक ठीक प्रकार से पालन होता है और इसके पश्चात् इसमें वृद्धि होनी आरम्भ होती है। एक मत के अनुसार इसी संख्या को क्रांतिक मेश संख्या भी कहते हैं। ०·८ और ०·८५ मेश संख्या पर वातरोध गुणांक में तीव्रता से वृद्धि होती है। इस संख्या से लेकर १·२ तक वात सुरंग में परीक्षण अनेक कारणों से नहीं हो सकते। यही कारण है कि इस क्षेत्र के सम्बन्ध में कोई विश्वसनीय परिणाम अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं। १·२ मेश संख्या के पश्चात् वातरोध गुणांक में कमी होने लगती है और दो या इससे अधिक संख्या पर वातरोध पुनः स्थिर हो जाता है, परन्तु यहाँ इसका मान पहली स्थिर अवस्था के मान से सामान्यतः दुगना या तीन गुना अधिक होता है। इतना जानने के पश्चात् वैमानिकी में ध्वनि-चाल के महत्त्व का पता लगता है। ध्वनि की चाल पर उड़ान करने पर एक ऐसा क्षेत्र आता है जिसको पार करने में बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। एक बार इसे पार करने पर फिर ऐसी अवस्था आ जाती है जिसमें अधिस्वनिक उड़ान सुगमता से हो सकती है।

जब एक सामान्य पंखकाट अधिक चाल से उड़ान करता है तो इसमें वातरोध के अतिरिक्त उद्भार में भी परिवर्तन होते हैं। यह परिवर्तन वातरोध की अपेक्षा अधिक जटिल होते हैं और इसके कारण विमान के स्थायित्व

में बहुत भयानक गड़बड़ी पड़ सकती है। अधिस्वनिक विमानों के प्रायोगिक विकास में जो देर हुई अन्य कारणों के अतिरिक्त विमान का उद्‌भार-परिवर्तन भी उसका एक कारण था।

एक नियम के अनुसार यदि पक्ष अधिक मोटा न हो और इसकी अग्रचाल क्रांतिक मेश संख्यावाली चाल से कम रखी जाय, तो संपीडन प्रभाव के कारण उद्‌भार गुणांक में $\sqrt{\frac{१}{(१-\text{मे० सं०}२)}}$ के अनुसार वृद्धि होती है। इस प्रकार ०·५ मेश संख्या पर उद्‌भार गुणांक में सामान्य चाल की अपेक्षा अधिस्वनिक चाल पर १६ प्रतिशत और ०·६ मे० सं० पर २५ प्रतिशत वृद्धि होती है; परन्तु प्रत्येक दशा में मे० सं० क्रांतिक मे० सं० से कम होनी चाहिए। यह परिवर्तन लाभदायक है। यदि इतना ही परिवर्तन होता तो द्रुतगामी विमानों के निर्माण में शायद बहुत सुगमता रहती। यह स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यों मेश संख्या इकाई के समीप पहुँचती है उड़ान के सामान्य नियम अंशतः उल्लंघित होते दीख पड़ते हैं क्योंकि उक्त नियम के अनुसार ध्वनि की चाल पर उद्‌भार बल अपरिमित मात्रा में होना चाहिए जो असंभव होता है। यह बात पहले से ही मालूम थी। जानने योग्य तथ्य तो यह था कि विमान की चाल में वृद्धि होने के क्रम में इस सूत्र पर हम कहाँ तक निर्भर रह सकते हैं। इसका समाधान अधिक-चाल के वायुपेंचों पर परीक्षण करने से मिलता है। विमान के पंखों की चाल को यदि इतना बढ़ाया जाय कि उसकी पंखड़ियों के कोर, ध्वनि के वेग के आसपास चलने लगें तो उसके पंखकाट पर वायु का प्रवाह काफी अधिक चाल पर होता है। ऐसा करने पर पहले चाल की वृद्धि के अनुक्रम में उद्‌भार गुणांक में भी वृद्धि होती है। यह प्रक्रिया ऊपर दिये गये सूत्र के अनुसार होती है। परन्तु जब पंखों की चाल मे० सं० ०·६ और ०·७ के आसपासवाली चाल के बराबर होती है तो उद्‌भार में अचानक कमी और वातरोध में आकस्मिक वृद्धि होने लगती है। इस प्रकार विमान की दक्षता में कमी आ जाती है। यही कारण है कि द्रुतगामी विमानों में जेट चालन की व्यवस्था रखी जाती है। संपीडन क्रिया द्वारा उद्‌भार बल की आक-

स्मिक कमी की क्रिया को 'आघात-अवपात' कहते हैं। सामान्य चाल पर अवपात क्रिया का वर्णन करते समय हमने बताया था कि यह क्रिया आक्रमण-कोण की एक निश्चित मात्रा से अधिक होने पर होती है और इसमें ऊपरी तल के वायु-प्रवाह का अलगाव भी होता है। आघात-अवपात क्रिया का सम्बन्ध भी इस अलगाव से है। यह क्रिया शून्य आक्रमण कोण पर भी हो सकती है, जैसा कि सामान्य चाल की अवपात क्रिया पर नहीं होता। इसके अलगाव में सीमान्त स्तर के घनेपन से सहायता मिलती है। यह घनापन विमान के पंखकाट के ऊपरी तल में आघात-तरंग की उत्पत्ति के कारण होता है। इससे उद्भार में कमी आती है। ध्वनि-रोध के पार करने के पश्चात् निचले तल में भी आघात-तरंग की उत्पत्ति होने के कारण वहाँ के सीमान्त स्तर में कुछ घनापन आता है जिससे वहाँ भी अलगाव की क्रिया आरम्भ हो जाती है। इन दोनों क्रियाओं का कुल परिणाम यह होता है कि इस चाल पर उद्भार में पुनः वृद्धि होनी आरम्भ हो जाती है। संक्षेप में कह सकते हैं कि अतिस्वनिक क्षेत्र में ऊपरी तल की आघात तरंग के कारण उद्भार में कमी तथा निचले तल की आघात तरंग के कारण इसमें पुनः वृद्धि होने लगती है।

अधिस्वनिक चाल पर (मे० सं० १ और २·२३ के बीच) उद्भार गुणांक, सामान्य चाल पर प्राप्त उद्भार गुणांक से अधिक और इससे अधिक मे० सं० पर यह कम होना आरम्भ हो जाता है और ज्यों-ज्यों मे० सं० में वृद्धि होती है त्यों-त्यों इसमें कमी आती जाती है।

द्रुतगामी विमानों के निर्माण में कठिनाइयाँ

अधिस्वनिक उड़ान के लिए विमान को अतिस्वनिक क्षेत्र से गुजरना पड़ता है। इसके अतिरिक्त आघात तरंगों के पैदा होने के कारण विमान के स्थायित्व में भी गड़बड़ी पड़ती है। इन कारणों से द्रुतगामी विमानों को बनाते समय इसके निर्माता को दो बातों का ध्यान रखना पड़ता है——

(१) विमान में जहाँ तक हो सके ऐसी व्यवस्था रखने का प्रयत्न करना पड़ता है जिससे कम से कम वातरोध उत्पन्न हो, क्योंकि ध्वनि की चाल पर इसमें बहुत अधिक वृद्धि होने की सम्भावना रहती है।

(२) इस बात का ध्यान भी रखना पड़ता है कि अतिस्वनिक क्षेत्र से गुजरते समय इसके स्थायित्व में कोई गड़बड़ी न हो।
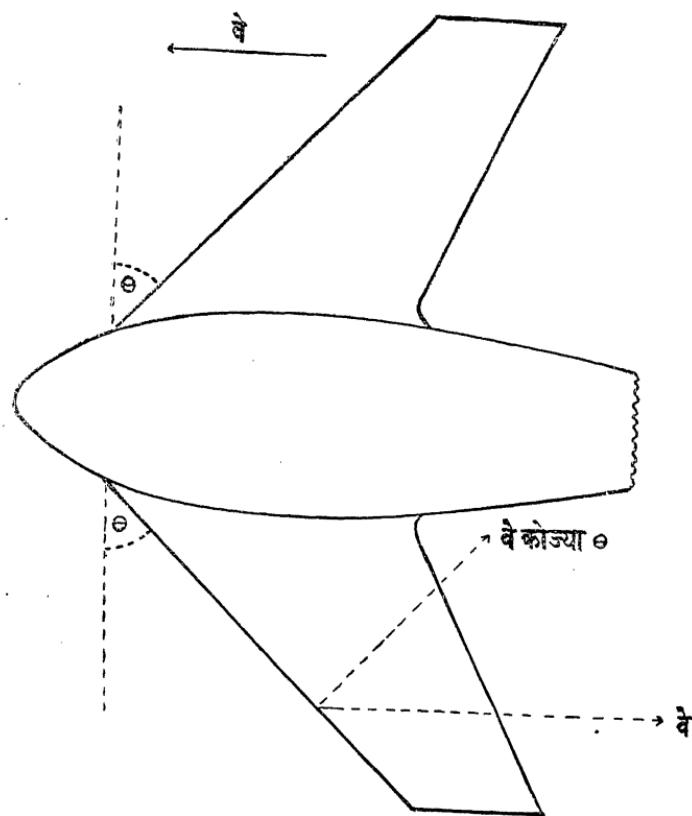
चित्र ६२—**पीछे की ओर मुड़े पक्षोंवाला विमान।**

वातरोध को कम रखने के लिए आवश्यक है कि विमान को यदि ध्वनि-रोध पार करना हो तो इसकी आकृति जहाँ तक सम्भव हो नोकीली और पतली होनी चाहिए। यह शर्त विमान के सब अंगों के लिए है। इसमें इसके पंखकाट,

कबन्ध, इंजन इत्यादि सब भाग सम्मिलित हैं। जहाँ तक पंखकाट का सम्बन्ध है, एक चपटी प्लेट के आकार का पंखकाट सबसे अच्छा समझा जाता है; परन्तु यह इतने मजबूत नहीं होते अतः प्रायोगिक दृष्टि से इसके कारण असुविधा रहती है। इसके लिए सामान्यतः द्विउत्तल आकार[1] के पंखकाट प्रयोग में लाये जाते हैं। सबसे अधिक कठिनाई द्रुतगामी विमानों के स्थायित्व को स्थापित करने में होती है। अधिक अधःस्वनिक चाल पर उड़ान करने वाले विमान के लिए आघात अवपात के कोण को जहाँ तक सम्भव हो सके दूर रखना आवश्यक है। इसको प्राप्त करने के लिए पीछे की ओर मुड़े पक्षों का प्रयोग सबसे अच्छा साधन माना जाता है (चित्र संख्या ६२)। यह कोई असामान्य आकृति का पक्ष नहीं होता। इसका प्रयोग अधःस्वनिक चाल के विमानों के लिए होता रहा है। सामान्य चाल पर पक्षों को यह मोड़ वायुगतिकी केन्द्र का पीछे की ओर विस्थापन करता है जिससे विमान के स्थायित्व में सुधार हो जाता है। इसके अतिरिक्त यदि विमान किसी क्षोभ के कारण अपने मार्ग को छोड़ने पर बाध्य हो जाय तो इन पक्षों के कारण इसमें अपने-आप पहले मार्ग पर वापस आने की प्रवृत्ति भी होती है।

द्रुतगामी उड़ानों में इस पक्ष के प्रयोग को इससे भिन्न कारणों से महत्त्व देते हैं। इस क्षेत्र में इसका प्रयोग सर्वप्रथम १९३५ में एक जर्मन वैज्ञानिक ने किया था। यदि मे० सं० में वृद्धि करने का कोई साधन मिल सके तो आघात-अवपात की क्रिया को दूर करना सम्भव होता है। विमान के पक्षों की ज्या-मिति में कुछ परिवर्तन लाने से भी यह सम्भव होता है। यह इस तथ्य पर निर्भर है कि आघात-तरंगों का मुख्य कारण वायु-प्रवाह का वह अवयव है जो अगले सिरे के समकोण होता है। बहुत अधिक पीछे की ओर मुड़े पक्षों के लिए यह अवयव, विमान की अग्रचाल की अपेक्षा कम होता है। चित्र ६२ में दिखाया गया है कि यदि पक्ष को कोण पर मोड़ा जाय तो अगले सिरे की लम्ब दिशा में पक्ष पर वायु प्रवाह की चाल का अवयव (वे कोज्या Φ) के बराबर हो जाती है। यहाँ पर (वे) विमान की चाल को व्यक्त करता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि पक्ष की प्रभावकारी क्रांतिक मेश संख्या में $\frac{१}{\text{कोज्या } \Phi}$ की

1. Biconvex shape

वृद्धि हुई। दूसरे शब्दों में विमान उस चाल की (जिस पर एक सरल पक्ष में आघात अवपात की अवस्था उत्पन्न हो जाती है) अपेक्षा कहीं अधिक चाल पर उड़ान कर सकता है।

जिन तथ्यों का अब तक वर्णन किया गया है वे प्राय: अधिक लम्बाई के पाटवाले पक्षों के लिए ही सामान्यतः उपयुक्त हैं। व्यवहार में एक सीमित पक्ष में ऐसी व्यवस्था करने पर अपेक्षाकृत कम लाभ होता है, फिर भी उन विमानों के लिए जिन्हें अधःस्वनिक अथवा अतिस्वनिक क्षेत्र में उड़ान करना हो, इस व्यवस्था का कुल मिलाकर काफी फायदा रहता है। अधिस्वनिक क्षेत्र के लिए पक्ष के पीछे की ओर के मोड़ को बहुत अधिक बढ़ाना चाहिए, परन्तु ऐसा करने से और बहुत-सी समस्याएं उत्पन्न हो हो जाती हैं। पिछले कुछ वर्षों से अधिस्वनिक क्षेत्र के लिए विमान बनानेवालों ने 'डेल्टा' अथवा त्रिकोण-पक्ष को अधिक अपनाया है (चित्र संख्या ६३)। मुख्यतः इसका कारण यह है कि इससे संरचना-सम्बन्धी सभी समस्याएं हल हो जाती हैं। दूसरी ओर इस प्रकार के पक्ष के लिए अधिकतम उद्भार गुणांक की मात्रा भी कम हो जाती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ऐसा विमान बनाने के लिए इसके निर्माता में उच्चतम योग्यता की आवश्यकता है, जिससे उसका विमान जमीन पर से उड़ान-दौड़ प्रारम्भ कर, अधिस्वनिक क्षेत्र में ध्वनि से भी तीव्र उड़कर वापिस जमीन पर सुरक्षापूर्वक उतर सके। उसके लिए बीच का मार्ग अपनाना आवश्यक होगा क्योंकि उड़ान-दौड़ तथा उतार-चाल के लिए जिन लक्षणोंकी विमान में आवश्यकता पड़ती है उसके ठीक विपरीत अधिस्वनिक उड़ान पर इसकी आवश्यकता नहीं होती।
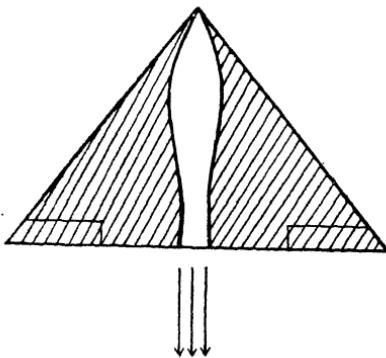
चित्र ६३—**डेल्टा पक्ष।**

आघात तरंगों की उत्पत्ति को रोकने या उन्हें दूर रखने के लिए भी अधिकतम सावधानी की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि इसके कारण उसके स्थायित्व में गड़बड़ी हो सकती है।

विमान की आकृति में सब प्रकार की सुविधाएं प्राप्त करने के उपरान्त, उसमें एक ऐसे इंजन की आवश्यकता होती है जो क्रांतिक मेश संख्या पर वातरोध में होने वाली आकस्मिक वृद्धि को सन्तुलन में रख सके। संपीडन प्रभाव के अभाव में भी वातरोध में वेग के वर्ग और शक्ति (जो वातरोध और वेग के गुणनफल के बराबर होती है) में वेग के घन के अनुरूप वृद्धि होती है। संपीडन क्रिया के कारण तो इनमें और भी वृद्धि होगी। इसके अतिरिक्त, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पंखों से चलनेवाले विमानों में अच्छे पंखे की दक्षता लगभग ८० प्रतिशत के होती है। यह विमान की ३०० या ४०० मील प्रतिघंटे की चाल पर होती है। इसके बाद तो इसमें कमी आने लगती है। इन दोनों कठिनाइयों को गैस टरबाइनके आविष्कार ने दूर कर दिया। १९४१ में पहली वार जेट-चालित विमान ने उड़ान की थी। जेट की दक्षता में पंखों की ४०० मील प्रतिघंटे से ६०० मील प्रतिघंटे की चाल तक वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त यह भार में भी अपेक्षाकृत कम होता है और इस चाल पर इसमें ईंधन का खर्च भी कम रहता है। राकेट चालन व्यवस्था से हम आज एक कदम और आगे बढ़ चुके हैं। कहा नहीं जा सकता कि हम इस क्षेत्र में और कहाँ तक जायँगे। कुछ भी हो, अधिस्वनिक उड़ान महँगी और खतरनाक है; सैनिक आवश्यकताओं को छोड़कर अन्य कार्यों के लिए कम सुविधानजनक है। ज्यों-ज्यों हम इस क्षेत्र की उड़ानों से सम्बन्धित समस्याओं को हल करते जाते हैं, हमारे सामने अन्य नयी समस्याएं आती जाती हैं। इस चाल पर बहुत अधिक प्रतिदाब के कारण, विमान के संघटन में विकृति हो सकती है, इसके यात्रियों के लिए उनके शरीर पर होनेवाली विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाओं से नयी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं; पुनश्च, विमान के ताप में भी वृद्धि की सम्भावना रहती है। यह समस्या तो इतनी गम्भीर है कि यह इस क्षेत्र के विकास में काफी रुकावट वन सकती है। ताप की वृद्धि $\left(\frac{\text{वे}}{१००}\right)^२$ के सूत्र के अनुसार होती है।

इसमें (वे) राशि मील प्रतिघंटे में विमान की चाल को व्यक्त करती है। १०० मील प्रतिघंटे पर यदि ताप एक डिग्री सेंटीग्रेड है तो ६०० मील प्रतिघंटे की चाल पर इस सूत्र के अनुसार वह ३६° सेंटीग्रेड, १,०००, मील प्रतिघंटे की चाल पर १००° सेंटीग्रेड होगी। समस्याएं कुछ भी हों, आज हम उड़ान के एक नये युग के द्वार पर खड़े हैं और शायद यह इसके सब युगों से अधिक महत्त्वपूर्ण और कौतूहलवाला हो।

तेरहवाँ अध्याय

आधुनिक आविष्कार

उड़ान के क्षेत्र में पिछले पचास वर्षों में असाधारण प्रगति हुई है। द्वितीय विश्व-युद्ध में भी अनेक आविष्कार हुए। इनमें राकेट नाम की मशीनों का एक विशेष स्थान है।

राकेट के क्षेत्र में सर्वप्रथम प्रयोग करनेवालों में अमेरिकी डाक्टर रावर्ट एच गाडरड का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने अपना अनुसन्धान कार्य १९०८ई० में आरम्भ किया। राकेट-चालन पर इनकी एक रिपोर्ट पर इन्हें अमेरिकी वैज्ञानिक संस्था की सहायता प्राप्त हुई। इन्होंने १९२६ में द्रव-ईंधन से चलनेवाले राकेट को आकाश में छोड़ा। ऐसा माना जाता है कि विश्व में इस प्रकार का यह पहला प्रयास था। १९२७ में जर्मनी के वैज्ञानिकों और गणितज्ञों ने राकेट-चालन के विकास के लिए एक संस्था बनायी थी और चार वर्ष बाद अपना पहला द्रव-ईंधन चालित राकेट छोड़ा था। द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व ही जर्मनों ने इस प्रकार के यन्त्र के बनाने में सफलता प्राप्त कर ली थी। इसी युद्ध में इन्होंने राकेट व्यवस्था युक्त लड़ाकू जहाज और नियन्त्रित मिसाइल के निर्माण में अपने साधन जुटाये थे।

इनका प्रयोग युद्ध में अपने दुश्मन को नष्ट करने के लिए किया गया था। युद्ध के बाद राकेट-उड़ान की अन्य उपयोगिताओं के सम्बन्ध में अनुसन्धान-कार्य पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। राकेट की उड़ान का सिद्धान्त सामान्य विमान से भिन्न है, परन्तु यह जेट-विमान से मिलता-जुलता ही है। विमान का वेग ४०० मील प्रतिघंटा के लगभग हो जाने पर, इस वेग को अधिक करना कठिन हो जाता है क्योंकि इसके पंखों की पंखड़ियों पर वायु के कारण उत्पन्न वातरोध काफी अधिक हो जाता है। इसे दूर करने के लिए जेट-इंजन काम में लाया जाता है; इनमें वायु-पेंच के लगाने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती। इस

प्रकार के विमानों का वेग धरातल के पास लगभग ३५० से ४०० मील प्रतिघंटा और अधिक ऊँचाई पर लगभग ६०० मील प्रतिघंटा होता है। जेट-चालित मशीन में एक कोष्ठ के अन्दर गैस का विस्फोट किया जाता है। इस विस्फोट से गैस अकस्मात फैल जाती है और कोष्ठ की दीवारों पर काफी दाब पड़ता है। इस प्रकार पैदा हुई गैस को पीछे की ओर नली द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। विस्फोट के धक्के की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप मशीन को आगे ले जानेवाला बल प्राप्त होता है। इन धक्कों का औसत प्रति सेकण्ड विमान पर लगनेवाले नोद बल के बराबर होता है। इसमें से वायु बाहर से खिंचकर गैस-वाले कोष्ठ में जाती है और गैस के साथ-साथ उसका विस्फोट होता है। वायु के मेल से गैस के मिश्रण का ताप बढ़ जाता है और हवा के साथ-साथ गैसोलीन जैसा कोई तेज जलनेवाला पदार्थ भी मिश्रण में मिलाया जाता है। जेट चालित विमानों का कार्य करने का सिद्धान्त रेखीय संवेग की अविनाशिता के सिद्धान्त पर निर्भर है। यदि दो पिण्ड आपस में सटे हुए रखे हों तो एक पर धक्का लगने से दूसरा विपरीत दिशा में प्रतिक्रिया बल के कारण गति करने लगता है। यहाँ तक तो राकेट और जेट विमान में समानता है। लेकिन जहाँ जेट विमान को अपनी उड़ान के लिए वायुमण्डल का सहारा लेना पड़ता है वहाँ राकेट मशीन को ऐसी कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। राकेट द्वारा चालित विमानों में बाहरी वायु को उसकी गैस के साथ नहीं मिलना पड़ता। उसके अन्दर काम में आने-वाले रासायनिक पदार्थ ही सारी आवश्यक शक्ति दे देते हैं; अतः राकेट को रासायनिक ईंधनवाली मशीन कह सकते हैं। राकेट आकाश* में जेट विमान की अपेक्षा अधिक दक्षतासे उड़ान कर सकता है। राकेट के आविष्कार से अब यह सम्भव होता जा रहा है कि निकट भविष्य में चन्द्रमा जैसे ग्रहों की यात्रा की जा सकेगी।

आज के विमानों में जेट व्यवस्था एक साधारण-सी बात है, परन्तु गुरुत्व क्षेत्र से मुक्ति पाने का एकमात्र साधन राकेट ही समझा जाता है। इसका एक

* पूर्ववर्ती ग्रन्थों में 'आकाश' शब्द 'स्पेस' के लिए प्रयोग किया जाता रहा है, अतः इस अध्याय में भी यह इसी अर्थ में प्रयोग किया गया है। पृथ्वी के वायु-मण्डल से बहुत ऊपर के इस भाग में पृथ्वी के कारण उत्पन्न गुरुत्वाकर्षण शक्ति न्यूनतम मानी जाती है।

कारण यह है कि यह यन्त्र अपनी उड़ान के लिए वायु पर किसी भी प्रकार निर्भर नहीं होता। अन्य विमानों को अपनी उड़ान के लिए जिस आक्सीजन की आवश्यकता पड़ती है वह वायुमण्डल से प्राप्त होती है। अधिक ऊँचाई पर वायु में आक्सीजन की कमी पड़ने के साथ-साथ इस प्रकार के विमानों की दक्षता में भी कमी आती है। राकेट में इस प्रकार की कोई आवश्यकता नहीं होती।

राकेट के सिद्धान्त को समझने के लिए हम ऐसी नली का दृष्टान्त ले सकते हैं जिसका एक सिरा बन्द हो। इस नली में एक ऐसा पदार्थ रखा जाता है जो जलने के पश्चात् काफी मात्रा में गैस पैदा करे। नली के खुले मुँह से बाहर जाने के प्रयत्न में इस पदार्थ से उत्पन्न गैस एक जेट का रूप धारण कर लेती है। बहुत पहले तोपखानों में प्रयुक्त होनेवाले छोटे-छोटे राकेटों में सामान्यत: ईंधन के रूप में बारूद जैसे ठोस पदार्थों का प्रयोग किया जाता था; परन्तु आजकल इस प्रकार के राकेटों में 'कोरडाइट' जैसे रासायनिक पदार्थों का प्रयोग होता है। इस प्रकार के ईंधन के जलने पर राकेटों में गैस का दाब १,००० से २,००० पौंड प्रति वर्ग इंच के लगभग होता है। नली के मुँह के समीप गैस का वेग ४,००० मील प्रतिघंटे के आसपास रहता है जो सामान्यताप के ध्वनि वेग से लगभग छ: गुना है। इस रासायनिक ईंधन के जलने में बहुत थोड़ा समय लगता है। कभी-कभी तो इस क्रिया में एक या दो सेकण्ड ही लगते हैं। बड़े-बड़े राकेटों में ठोस ईंधन के स्थान पर रासायनिक तरल ईंधन का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार का ईंधन, राकेट के दहन कक्ष में ठोस ईंधन की अपेक्षा बहुत कम दाब पर अर्थात् कुछ सौ पौंड प्रति वर्गइंच पर भी काम में आ सकता है। छोटे और बड़े राकेटों में जेट-वेग लगभग एक समान ही रहता है। परन्तु बड़े राकेटों में दहन-क्रिया छोटे राकेटों की अपेक्षा अधिक समय तक चलती है। इस प्रकार के बृहत् आकार के वी-२ राकेट में यह क्रिया लगभग एक मिनट तक रहती थी।

लोगों का प्राय: कहना है कि राकेट अपने पीछेवाली वायु के प्रति उत्पन्न नोद के कारण उड़ान करता है; परन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है। हम कुछ सीमा तक केवल इतना कह सकते हैं कि राकेट की उड़ान के सिद्धान्त का रहस्य न्यूटन के एक विशिष्ट नियम (अर्थात् प्रत्येक क्रिया के बराबर और विपरीत

दिशा में प्रतिक्रिया होती है) में छिपा हुआ है। इस नियम के अनुसार राकेट के किसी भी भाग में जो क्रिया होगी उसके बराबर और विपरीत दिशा में राकेट के किसी न किसी भाग में प्रतिक्रिया अवश्य होगी। इसको रोकना असम्भव-सा है। फिर भी हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि राकेट की उड़ान के सिद्धान्त का वास्तविक ज्ञान न्यूटन के एक अन्य नियम* से ही होता है।

इसे समझने के लिए हम एक नलके का दृष्टान्त लेते हैं। (चित्र संख्या ६४) इस चित्र में यह नलका बेलनों पर रखा दिखाया गया है। मान लीजिए कि इस नलके में वायु का दाब बहुत अधिक है और यह नलका, इसके अन्दर की वायु तथा इसके बेलन सब साम्यावस्था में हैं। गुरुत्व के कारण जो बल इस नल-के पर लगता है उसको सन्तुलन में रखने के लिए इसका आन्तरिक दाब और बेलनों की नलके के प्रति प्रतिक्रिया सहायक होती है। दूसरे शब्दों में इसी तथ्य को इस प्रकार भी कह सकते हैं कि नलके की इस्पात से बनी दीवार के अणुओं के कारण उत्पन्न बल, नलके पर वायु के अणुओं द्वारा बल को सन्तुलन में रखता है। ऐसी अवस्था में नलके के मुँह को इस प्रकार खोले कि इसके अन्दर की गैस (वायु) बाहर की ओर एक निश्चित वेग से, जो ध्वनि के वेग से कहीं अधिक हो, जाने का प्रयत्न करे।

इस दशा में बाहर से कोई बल न लगने पर भी इस यन्त्र के किसी भाग में कुछ मात्रा में संवेग अवश्य पैदा होता है। न्यूटन के दूसरे नियम के अनुसार इस यन्त्र की कुल संवेग मात्रा में कोई अन्तर नहीं आना चाहिए था, किन्तु ऐसा तभी हो सकता है जब बाहर जानेवाली वायु के कारण उत्पन्न संवेग को सन्तुलन में रखने के लिए इसके किसी और भाग में इसके बराबर और विपरीत दिशा में संवेग उत्पन्न हो। स्पष्ट है कि ऐसा होने पर नलका बेलनों की सहायता से वायु के जेट के वेग के विपरीत दिशा में चलने का प्रयास करेगा। यदि कोई ऐसी व्यवस्था की जा सके कि सिलेण्डर गति न करे तो इसके लिए जिस मात्रा में बाह्य बल की आवश्यकता पड़ेगी वह वायु के संवेग परिवर्तन दर के

* अर्थात् किसी भी पिण्ड की संवेग परिवर्तन दर, लगनेवाले बाह्य बल के समक्रमानुपात होती है और इस प्रकार जो परिवर्तन होता है उसकी दिशा बलकी दशा की ओर ही होती है।

चित्र ३४—राकेट सिद्धान्त।
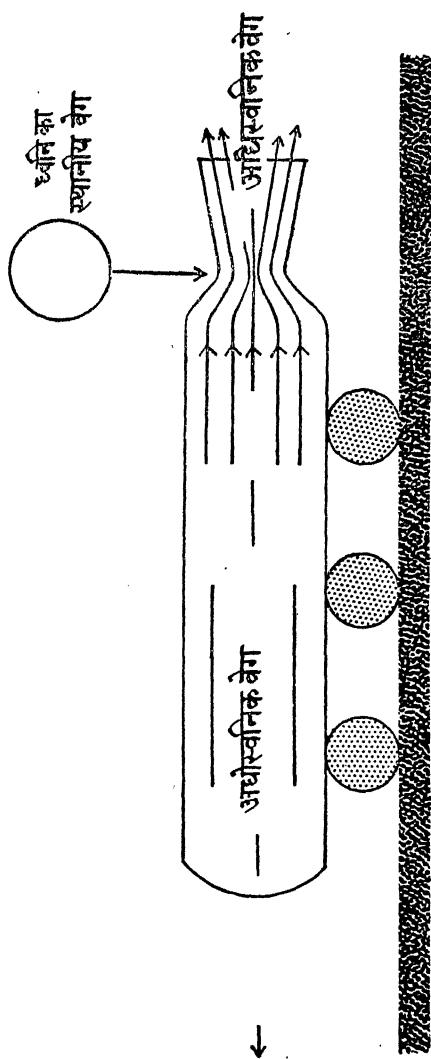
बराबर होगा। राकेट की उड़ान में इसी बल से नोद प्राप्त किया जाता है। प्रयोगशालाओं में भी माडल राकेटों के नोद का ज्ञान इसी बल की सहायता से होता है। वहाँ पर माडल राकेटों को इस प्रकार के बेलनों पर रखा जाता है। इसमें ईंधन जलाने पर जो चाल उत्पन्न होती है उसको रोकने में जो बल लगता है उसी से इसके नोद का परिमाप मालूम होता है। इस प्रकार का प्रयोग करते समय सामान्यतः राकेट की बाह्य परिस्थितियों के प्रभाव को शून्य के लगभग माना जाता है। जेट विमान को अपनी उड़ान करते समय वायुमण्डल और आकाश में भिन्न परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। परन्तु जेट विमान और राकेट सामान्यतः अधिस्वनिक चाल से उड़ान करते हैं। इस कारण बाह्य परिस्थितियों का इन पर जो प्रभाव पड़ता है वह शून्य के बराबर मान लिया जाता है। सब जानते हैं कि वायु में यदि थोड़ी मात्रा में क्षोभ हो तो यह क्षोभ ध्वनि के वेग से गति करता है। अतः इस प्रकार के किसी भी दाबान्तर का राकेट तक पहुँचना जब कि वह अधिस्वनिक (अर्थात् ध्वनि के वेग से अधिक चाल पर) चल रहा हो, असम्भव-सा है।

उपर्युक्त विवेचना करते समय जिस सन्तुलन का वर्णन किया गया है वह वेगों में नहीं, अपितु संवेगों में होता है। स्पष्ट है कि सिलेण्डर जिसका भार काफी होता है वायु-जेट की अपेक्षा कम वेग से उड़ान करेगा। किसी भी राकेट के त्वरण की मात्रा, उसके नोद बल को उसके द्रव्यमान से भाग देकर प्राप्त की जाती है। वायुमण्डल में जब कि गुरुत्व और वातरोध दोनों राकेट की उड़ान को कम करने में लगे होते हैं तो राकेट के त्वरण की मात्रा मालूम करते समय, राकेट के भार और वातरोध को उसके नोद में से कम करना पड़ता है। इसी प्रकार आकाश में यदि उसके नोद की मात्रा को स्थिर रखा जा सके तो राकेट के त्वरण में निरन्तर वृद्धि की जा सकती है और इसका ईंधन समाप्त न हो तो इस प्रकार राकेट किसी भी चाल पर चल सकता है। इस सिद्धान्त पर जब राकेट निर्माण करते हैं तो मुख्यतः दो प्रकार की कठिनाइयाँ सम्मुख आती हैं, आन्तरिक और बाह्य।

राकेट में पर्याप्त मात्रा में ईंधन का रहना आवश्यक है। इसके कुल भार का यह एक बहुत बड़ा अंश होता है। इस ईंधन का एक मात्र उद्देश्य नोद उत्पन्न

करना है, अतः इसको जलाकर जितनी जल्दी नोद प्राप्त कर लिया जाय राकेट के लिए उतना ही अच्छा होता है। इस प्रकार ईंधन के अनावश्यक भार को उठाने में जिस बल की आवश्यकता पड़ती है उसकी बचत हो सकती है।

नोद = (ईंधन के दहन की दर) × (गैस-जेट का वेग)

स्पष्ट है कि ईंधन को तीव्रता से जलाकर या गैस-जेट के वेग में वृद्धि कर या दोनों क्रियाओं में वृद्धि करने से नोद की मात्रा में वृद्धि की जा सकती है।

आरम्भ में राकेटों में सामान्यतः ठोस ईंधन का प्रयोग होता था। जैसे बारूद, परन्तु आज के फौजी राकेटों में जिन विशेष प्रकार के पदार्थों का प्रयोग करते हैं उन्हें नोदक कहते हैं। विस्फोटक वर्ग के इन पदार्थों की क्रिया डाइनमाइट-जैसे तीव्र विस्फोटक पदार्थों की क्रियाओं से भिन्न होती हैं। इस प्रकार के नोदक पदार्थों में कारडाइट बहुत प्रसिद्ध है। ये पदार्थ जलते तो सामान्य रूप से हैं, परन्तु इनमें एक विशेष गुण होता है कि इनके जलने पर जो गैसें उत्पन्न होती हैं उनके कारण उत्पन्न दाब में वृद्धि होने के साथ-साथ, इनके दहन की दर में भी वृद्धि होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि कारडाइट सामान्य वायु में तो बिना हानि किये तीव्रता से जलता है, लेकिन बन्द मुँह के कक्ष में जलाये जाने पर यह इतनी अधिक तीव्रता से जलता है कि इसकी यह क्रिया विस्फोट क्रिया से मिलती-जुलती है। जिस राकेट में कारडाइट का प्रयोग होता है दहन-क्रिया आरम्भ होने के साथ-साथ उसके गैस-दाब में तीव्रता से वृद्धि होती जाती है और शीघ्र ही यह दाब राकेट के अभिकल्प के अनुसार निश्चित साम्यावस्था को पहुँच जाता है। इस प्रकार राकेट के ईंधन से जिस दर से गैस का उत्पादन होता है उस दर में तथा राकेट से इस गैस के बाहर जाने की दर में सन्तुलन रहता है। इस प्रकार के राकेटों की नलकियों में दाब के सामान्यतः अधिक और गैसों के अधिक गरम होने के कारण दहन की दर में वृद्धि करने का कोई भी प्रयास करने पर राकेट के आन्तरिक दाब के कारण राकेट को क्षति पहुँच सकती है, क्योंकि अधिक ताप पर राकेट में इस्पात की बनी नली की शक्ति तीव्रता से क्षीण हो जाती है।

तरल ईंधन से चलनेवाले राकेटों में दाब के कारण उत्पन्न समस्याएँ ठोस ईंधन से चलनेवाले राकेटों की अपेक्षा सामान्यतः कम गम्भीर होती हैं। परन्तु

इनमें ईंधन के दहन की दर को अधिक रखने के प्रयास में अन्य बहुत-सी इंजीनियरिंग-सम्बन्धी समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। उदाहरण के लिए जर्मनी के मुख्य वी–२ राकेट में एक विशेष टरबाइन की व्यवस्था करनी पड़ी थी। दहन कक्ष को प्रति सेकण्ड १७८ पौंड तरल आक्सीजन तथा ११२ पौंड अलकोहल देने के लिए यह टरबाइन ५,००० चक्र प्रति मिनट की दर पर ६०० अश्व-शक्ति उत्पन्न करती थी। इंजीनियरिंग का यह एक अपूर्व चमत्कार था और गैस-प्रवाह की दर में वृद्धि करने में जो कठिनाइयाँ हो सकती हैं वे इस उदाहरण से आसानी से समझी जा सकती हैं।

ईंधन के व्यय की व्यावहारिक दर निश्चित करने के पश्चात् राकेट का अधिकल्पक अपना ध्यान इस बात पर लगाता है कि किस प्रकार राकेट की गैसों को उससे जल्दी से जल्दी बाहर फेंका जा सके। इसके लिए उसे गैस-गतिकी[1] का आश्रय लेना पड़ता है। अधिक चाल पर गैसों के प्रवाह का अध्ययन करने में ऊष्मागतिकी[2] से सहायता लेनी पड़ती है। गैस के घनत्वमें काफी परिवर्तन आने पर संपीड्यता गुणधर्म का जो प्रभाव गैस पर पड़ता है उसका भी ध्यान रखना पड़ता है।

संपीड्य प्रवाह में क्रिया आशा के विपरीत होती है। असंपीड्य प्रवाह में किसी भी नली में एक निश्चित समय में जिस मात्रा में गैस का प्रवाह होता है उसको स्थिर किया जा सकता है। ऐसा करने के लिए नली के अनुप्रस्थ काट-क्षेत्र को प्रवाह के प्रतिलोम रखना पड़ता है। अर्थात् यदि गैस की मात्रा स्थिर रहे तो नली के मार्ग को संकीर्ण करने से गैस के वेग में वृद्धि की जा सकती है। वास्तव में अधिक चाल पर नली को संकीर्ण करने में गैस के प्रवाह के वेग में कमी होती है क्योंकि वेग में वृद्धि के साथ-साथ दाब के अतिरिक्त घनत्व में भी कमी आती है। अधिक दाब पर किसी भी हौज से गैस के प्रवाह की एक सतत धारा प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम प्रारम्भिक त्वरण पैदा किया जाता है जिसके लिए धारा को संकीर्ण करना पड़ता है और इसके पश्चात् ज्यों-ज्यों संपीड्यका प्रभाव प्रकट होने लगता है इसको फैलने दिया जाता है। यही कारण है कि

1. Gas dynamics. 2. Thermo-dynamics.

अधिक चाल पर गैस के प्रवाह के वेग में वृद्धि करने के लिए नली को चौड़ा करना पड़ता है।

मान लीजिए कि एक राकेट के दहन-कक्ष में गैस अधिक दाब पर है। राकेट को चलाने में यही दाब ऊर्जा का काम करेगा, इसके लिए इस दाब ऊर्जा को
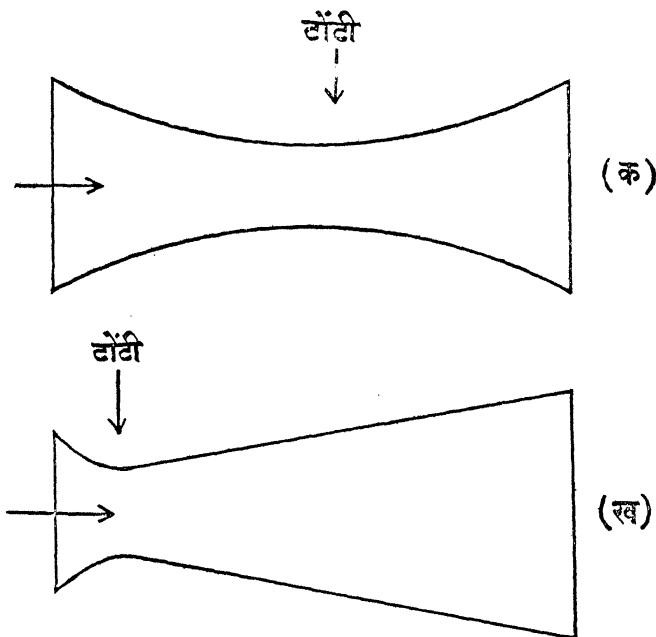
चित्र ६५—**अभिबिन्दु-अपबिन्दु टोंटी।**

गतिज ऊर्जा या स्थितिज ऊर्जा में बदलना आवश्यक है। यह गैस किसी भी मार्ग से (यदि यह प्राप्य हो) बाहर निकल भागने का प्रयत्न करेगी। इस भागने की क्रिया में इसे जो चाल प्राप्त होगी उसके कारण इसके दाब में कुछ कमी का पड़ना आवश्यक है। इस प्रकार यह मार्ग संचित गैस को मुक्त करने

तथा इसे गतिज या स्थितिज ऊर्जा में बदलने का एक साधन बन जाता है। इस परिवर्तन के लिए जिस उपाय का राकेट में प्रयोग करते हैं उसे 'टोंटी' कहते हैं। इसे कोई भी आकार दे, लेकिन इस बात का ध्यान रखा जाता है कि एक निश्चित समय में जिस मात्रा में गैस इसमें प्रवेश करती है, उतने ही समय में उतनी ही मात्रा में इससे निकलती भी हो। इसके अतिरिक्त राकेट निर्माण करते समय इस बात का ध्यान भी रखा जाता है कि गैस को ठीक प्रकार से प्रवाहित करने के लिए इसके मार्ग के प्रत्येक बिन्दु पर दाब में ठीक प्रकार से कमी हो, क्योंकि दाब का गैस के वेग और घनत्व से सम्बन्ध होता है। चित्र (संख्या ६५ क) में एक ऐसी ही 'टोंटी' का चित्र दिखाया गया है। इसमें पहले भागवाले क्षेत्र-फल के दाब में कमी आरम्भ होती है और एक निश्चित कमी के पश्चात् पुनः वृद्धि होती है। इस प्रकार की टोंटी को अभिबिन्दु-अपबिन्दु टोंटी कहते हैं। न्यूनतम चौड़ाईवाले क्षेत्र को थ्रोट (संकीर्ण मार्ग) कहते हैं। इस स्थान पर धारा का वेग ध्वनि के स्थानीय वेग के बराबर हो जाता है (इस बिन्दु पर गैस का जो ताप होता है उस ताप पर ध्वनि की जो चाल होनी चाहिए, धारा का वेग उसके बराबर होता है)। इस प्रकार धारा के इस वेग पर ध्वनि तरंगें गैस के सापेक्षिक गति करती हैं, टोंटी की सापेक्षिक नहीं। थ्रौट से गुजरने के पश्चात् वेग में वृद्धि होती जाती है और टोंटी के बाह्य मुँह के पास इसकी गति अधि-स्वनिक हो जाती है। थ्रोट के दाब को 'क्रांतिक' दाब कहते हैं। बाह्य दाब में कमी करने पर एक बार इस दाब को प्राप्त करने के पश्चात् बाह्य दाब में और कमी करने से इसमें कोई परिवर्तन नहीं आता। इस बिन्दु के पश्चात् प्रवाह की गति अधिस्वनिक हो जाती है। और फिर बाद में कोई भी बाह्य क्षोभ थ्रोट तक नहीं पहुँच पाता। इस अवस्था में दहन कक्ष, बाहरी सम्बन्ध खो बैठता है। राकेटों में वास्तव में चित्र संख्या ६५ ख जैसी टोंटी का प्रयोग करते हैं। इसमें अपविन्दु भाग अभिविन्दु भाग की अपेक्षा अधिक लम्बा होता है। अन्य विमानों की भाँति राकेटों में भी स्थायित्व की आवश्यकता रहती है। राकेट में स्थायित्व प्राप्त करने के लिए इसके भार को आगे की ओर संकेन्द्रित किया जाता है। पारिभाषिक भाषा में कह सकते हैं कि इनमें गुरुत्व-केन्द्र दाब-केन्द्र से काफी आगे होता है।

द्वितीय युद्ध में राकेट (चित्र ६६) प्रक्षिप्त के रूप में प्रचुर मात्रा में प्रयोग में आये। युद्ध में इनका प्रयोग काफी मात्रा में हुआ है। सबसे आश्चर्यजनक बात राकेट के सम्बन्ध में यह है कि उड़ान करनेवाली सारी मशीनों में यही एक ऐसी मशीन है जो पृथ्वी के गुरुत्व क्षेत्रसे छुटकारा दिला सकने तथा ग्रहों इत्यादि में यात्रा करने का अवसर प्रदान करती है। उड़ान सम्बन्धी इस चर्चा को इस क्षेत्र में भविष्य में होने वाले आश्चर्यजनक कार्यों की सम्भावनाओं से भी परिचित हो लेना यहाँ अप्रासंगिक न होगा। पृथ्वी के बहुत ऊपर आकाश में उड़ान की सम्भावनाओं पर भी कुछ विचार कर लेना अनुचित न होगा। इस परमाणु-युग में यूरेनियम की कुछ औंस मात्रा से इतनी अधिक ऊर्जा उत्पन्न की जा सकती है कि भारतवर्ष की बिजली की तमाम आवश्यकता को पूरा कर दे, परन्तु इसको वास्तविक रूप देना इतना आसान नहीं है। इसी प्रकार ग्रहों में जाना-आना तो सम्भव है, परन्तु इसमें बहुत-सी प्रयोगात्मक कठिनाइयाँ हैं और जब तक इनको सुलझाया नहीं जायेगा इसमें सफलता नहीं मिलेगी। ये मुख्य रूप से इस प्रकार हैं।
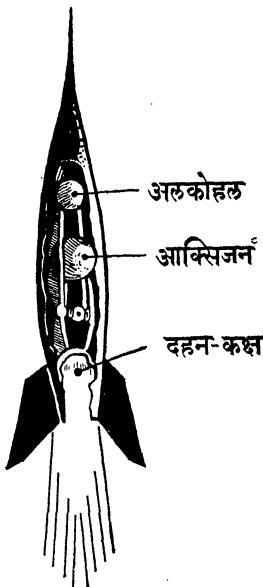
चित्र ६६—**राकेट।**

किसी भी पदार्थ का गुरुत्व-क्षेत्र सीमित नहीं है। गणित की भाषा में कह सकते हैं कि गुरुत्वाकर्षण शक्ति का प्रसार अनन्त सीमा तक है। किसी भी पिण्ड के समान पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण अपने केन्द्र से दूरी के वर्ग के प्रतिलोम कम होता जाता है। ग्रह सम्बन्धी अध्ययन से पृथ्वी की सतह में किसी भी बिन्दु पर इसके मान को ठीक-ठीक जाना जा सकता है। पृथ्वी के गुरुत्व-क्षेत्र

से किसी भी पिण्ड को स्वतन्त्र कराने के लिए पृथ्वी के गुरुत्व-बल के विपरीत कुछ न कुछ कार्य अवश्य करना पड़ेगा। लेकिन इससे किसी प्रकार भी बचा नहीं जा सकता। पृथ्वी की सतह से किसी भी पिण्ड को स्थिर अवस्था से ऐसे विन्दु पर ले जाने के लिए जहाँ कि गुरुत्वाकर्षण न्यूनतम हो, उसे कुछ न कुछ न्यूनतम ऊर्जा मिलनी चाहिए। स्थितिज ऊर्जा पिण्ड के द्रव्य मान तथा इसकी चाल के वर्ग के गुणनफल के आधे के बराबर होती है। न्यूनतम चाल जो इसके लिए आवश्यक होती है 'स्वतन्त्र वेग' कहलाती है। गणना करने पर पता लगता है कि इस प्रकार के वेग की मात्रा बहुत अधिक होती है। यह लगभग २५,०००मील प्रति घण्टा या ३६,७०० फुट प्रति सेकण्ड अर्थात् ७ मील प्रति सेकण्ड होती है। इस गणना को करते समय वातरोध, पृथ्वी के घूमने की चाल तथा चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव को शून्य के लगभग माना गया है। आकाश में उड़ान करने के लिए इस प्रकार एक ऐसी मशीन बनाने की आवश्यकता होगी जो २५००० मील प्रति घण्टे की चाल पकड़ सके। ऐसा सोचते ही हम इस समस्या के सार पर पहुँच जाते हैं। तमाम राकेटों का यह अंगीभूत गुणधर्म होना चाहिए और इसी के कारण दूसरे प्रक्षिप्तों के विपरीत बहुत अधिक चालवाला राकेट बहुत बड़ा होगा, यदि हम उन रासायनिक ईंधनों का प्रयोग करें जिनकी हमें जानकारी परमाणु ऊर्जा के आविष्कार के पूर्व थी। परमाणु-ऊर्जा के आविष्कार और व्यावहारिक प्रयोग में इसकी सफलता ने भविष्य के लिए ऐसी सम्भावना उत्पन्न कर दी है कि ईंधन के कारण राकेट के आकार में जो वृद्धि करनी पड़ती है वह न करनी पड़ेगी। यह निष्कर्ष द्रव्यमान अनुपात नियम पर निर्भर है। राकेट के द्रव्यमान तथा ईंधन के योग और राकेट के द्रव्यमान से जो अनुपात मिलता है उसे 'द्रव्यमान अनुपात नियम' कहते हैं। यदि यह अनुपात अधिक हो तो राकेट के भार का अधिक भाग ईंधन के लिए रखना पड़ता है।

द्रव्य मान अनुपात	कुल द्रव्यमान का प्रतिशत जो ईंधन के रूप में ले जाया जाता है
१·६५	४० प्रतिशत
२·७२	६३ प्रतिशत

७·३९	८७	प्रतिशत
२०· १	९५	प्रतिशत
५४· ६	९८·७	प्रतिशत
१४८· ४	९९·४	प्रतिशत

ऊपर की तालिका से स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यों इस अनुपात की मात्रा में वृद्धि होती है इंजीनियर की समस्या बढ़ती जाती है। सामान्यतः यह प्रयत्न किया जाता है कि यह अनुपात २·७२ से कम ही रहे तो अच्छा है; परन्तु काफी सीमा तक इसमें अभी पूर्ण सफलता नहीं मिली है।

राकेट के अन्तर्गत दूसरी समस्या जेट-चाल से सम्बन्ध रखती है। रासायनिक प्रतिक्रियाओं से हमें ऊर्जा प्राप्त होती है और हम इसके अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। नाइट्रोमेथेन, नाइट्रिक अम्ल+एनिलिन और साँद्र हाइड्रोजन पराक्साइड+मेथेल एलकोहल आदि ऊर्जा प्राप्त करने के व्यावहारिक साधन हैं और इनसे लगभग ५००० मील प्रतिघण्टे की जेट चाल प्राप्त की जा सकती है। तरल आक्सीजन और इथिल एलकोहल (जिसका वी–२ राकेट में प्रयोग किया गया था) से लगभग ५५०० मील प्रतिघण्टे की जेट चाल प्राप्त की जा सकती है। तरल आक्सीजन+तरल हाइड्रोजन की प्रतिक्रिया से (यदि इसे प्रयुक्त किया जा सके) ८००० मील प्रतिघण्टे की जेटचाल प्राप्त की जा सकती है। अधिक ऊँचाई पर वायु दाब में जो कमी आती है इस गणना में उसका ध्यान रखा गया है। इस प्रकार उत्तम से उत्तम ईंधन द्वारा भी जो वेग प्राप्त होता है वह 'स्वतन्त्रतवेग' से बहुत कम होता है। इसके अतिरिक्त तरल आक्सीजन और तरल हाइड्रोजन के प्रयोग करने पर राकेट के कुल भार का केवल ४ प्रतिशत ही शेष रहता है। इसमें ही ईंधन को छोड़कर राकेट के पिण्ड, पम्पों, दहनकक्ष इत्यादि की व्यवस्था रखनी पड़ती है। परमाणु ऊर्जा से आजकल इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया जा रहा है। विश्व के सर्वप्रथम सबसे बड़े राकेट वी–२ का जेट वेग लगभग ४७०० मील प्रतिघण्टे था। यह राकेट जर्मनी का था। इसमें दहन समय ६० सेकण्ड रखा गया था। ३५०० मील प्रति घण्टे की चरम चाल प्राप्त करने के

लिए इस राकेट का द्रव्य-मान-अनुपात २·८ रखा गया था। ऐसा करने पर राकेट का कुल भार १२½ टन रखना पड़ा, इसमें ८ टन ईंधन का भार था।

इसको अपनी यात्रा के अन्त तक रिक्त-ईंधन टैंक, पम्प तथा दहन-कक्ष को ले जाना पड़ता था, यद्यपि इनकी उपयोगिता बहुत पहले ही समाप्त हो चुकती थी। इसलिए यह सुझाव प्रस्तुत किया गया कि कोई इस प्रकार की व्यवस्था की जाय जिससे इनको, अपना कार्य समाप्त करने पर, राकेट से अलग किया जा सके। आजकल ऐसा करने के लिए राकेट को कई स्वतन्त्र भागों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक भाग में चालन-व्यवस्था और ईंधन का कुछ भाग रहता है। प्रत्येक भाग को उसके कार्य समाप्त होने पर राकेट से अलग किया जा सकता है। अनुसन्धान करने से पता लगा कि राकेट में इस प्रकार के कम से कम ३ और अधिक से अधिक १० भाग (अर्थात् मंजिलें) होने पर कुछ फायदा हो सकता है। (चित्र ६७) मान लीजिए इस प्रकार की मशीन की सहायता से १० पौंड का एक पिण्ड पृथ्वी से चन्द्रमा में भेजना है। यदि इस मशीन में नाइट्रिक अम्ल + एनिलिन ईंधन का प्रयोग करें तो राकेट को यदि पाँच भागों में बाँटा जाय तो आरंभ में इसका भार ३६७ टन होगा। इस प्रकार जो प्रक्षिप्त बनेगा उसका व्यास १३ फुट और लम्बाई १३० फुट होगी (वी-२ राकेट ४३ फुट लम्बा था और व्यास साढ़े पाँच फुट था)। इस भार में से लगभग ३२९ टन भार पहले
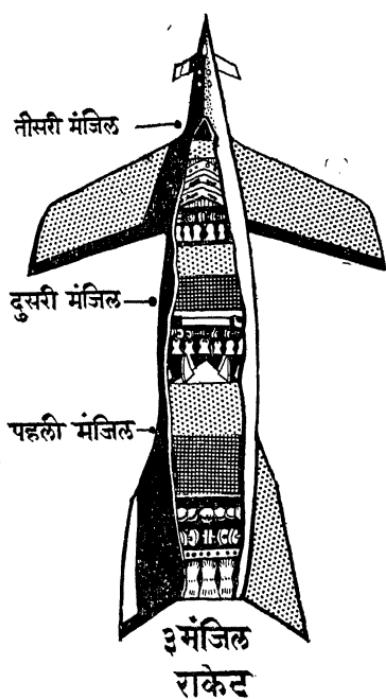
चित्र ६७—**राकेट के तीन भाग।**

भाग में होगा जिसकी उपयोगिता ४० सेकण्ड में ही समाप्त हो जायगी । इस भाग को ४० सेकण्ड के पश्चात फेंका जा सकता है । दूसरे भाग में ३४ टन, तीसरे भाग में साढ़े तीन टन भार होगा । इन भागों से मुक्त होते-होते अन्तिम भाग में, जो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से मुक्त हो जाता है, लगभग १०० पौंड भार रह जाता है । इसमें १० पौंड यानभार भी सम्मिलित है । यह योजना प्रयोगात्मक मात्र है । १० भागोंवाले राकेट में इससे भी अधिक कठिनाइयाँ आती हैं, परन्तु इस व्यवस्था से भार में काफी कमी की जा सकती है । एक मत के अनुसार १० पौंड यान-भार के लिए आरम्भ में इस प्रक्षिप्त का भार लगभग ६० टन, लम्बाई ७० फुट और व्यास ७ फुट हो तो यह वी–२ से लगभग दुगना लम्बा और डेढ़ गुना मोटा होगा । यह काफी सीमा तक व्यावहारिक है । यदि ईंधन के रूप में तरल आक्सीजन तथा तरल हाइड्रोजन का प्रयोग किया जाय को अनुमान किया जाता है कि १० भागोंवाला राकेट जिसका भार साढ़े तीन टन हो, लगभग १० पौंड यानभार को आकाश में ले जा सकता है । यदि इस भार को १०० पौंड कर दिया जाय तो राकेट के कुल भार में सात गुना वृद्धि हो जाती है ।

इस प्रकार हमने देखा कि कैसे थोड़े से द्रव्यमान के पिण्ड को आकाश में भेजने के लिए हमें राकेट के भार में वृद्धि करनी पड़ती है । परन्तु इसकी सफलता अन्य बहुत-सी इंजीनियरी समस्याओं पर निर्भर है । बहुत से लेखकों ने चन्द्रमा और अन्य ग्रहों की काल्पनिक यात्राओं का वर्णन किया है । इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयोगात्मक कार्य जिस पर आज विभिन्न देशों में कार्य हो रहा है वह पृथ्वी को एक कृत्रिम उपग्रह देना है । एक ऐसा राकेट बनाने का प्रयत्न हो रहा है जो पृथ्वी के चारों ओर ऐसी चाल और पृथ्वी से ऐसी दूरी पर, जहाँ पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण अपकेन्द्र बल के कारण सन्तुलन में रहता हो, परिक्रमा लगा सके । रूस और अमेरिका ने इस क्षेत्र में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है ।

परमाणु-ऊर्जा के आविष्कार से आज यह धारणा बन गयी है कि भविष्य में ग्रहों में जाने आने की समस्या भी सफलतापूर्वक हल की जा सकेगी ।

परमाणु-ऊर्जा के प्रयोग से द्रव्यमान-अनुपात की महत्ता में कमी आने की सम्भावना है। परमाणु ऊर्जा के प्रयोग से राकेट के कक्ष का ताप ११,०००° (सूर्य की सतह के ताप के लगभग) प्राप्त कर सकते हैं और इस ताप पर २८,००० मील प्रति घण्टे की चाल, जो राकेट को गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से मुक्ति प्राप्त करने के लिए आवश्यक वेग से कहीं अधिक है, प्राप्त की जा सकती है। परन्तु इस दिशा में इंजीनियरी सम्बन्धी बहुत-सी अन्य समस्याएँ पैदा हो सकती हैं।

राकेट उड़ान के सम्बन्ध में सोवियत परीक्षणों का विवरण देते समय अन्तर्राष्ट्रीय-भूभौतिकी वर्ष के लिए निर्मित सोवियत समिति के सदस्य अलेक्सी पोकरोब्सकी के अनुसार रूस में १९५० में राकेट में तीन यात्री ऊँची उड़ान करने के बाद भी क्षेमपूर्वक पृथ्वी पर लौट आये थे। ये यात्री आदमी नहीं थे; ये थे तीन कुत्ते। रूस में राकेट की इन उड़ानों की फिल्में उतारी गयी थीं। इनसे यह मत स्थिर करने में सहायता मिली कि आकाश में विभिन्न ऊँचाइयों पर भी प्राणी जीवित रह सकता है। राकेट उड़ान के सिलसिले में ये परीक्षण बड़े महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए।

अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष एक जुलाई १९५७ से शुरू हो गया है। वास्तव में यह वर्ष १८ मास का होगा और दिसम्बर १९५८ तक चलेगा। इस अवधि में रूस में और अमेरिका में राकेट की सहायता से अनेक कृत्रिम उपग्रह छोड़े जायँगे जो शून्याकाश में पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगायेंगे। ये उपग्रह वजन व आकार में भिन्न होंगे और इनमें विभिन्न प्रकार के यन्त्र होंगे। ये उपग्रह समूचे धरातल के ऊपर उड़ान करके विभिन्न वैज्ञानिक दत्त एकत्र करेंगे। इनकी सूचनाएं विभिन्न देशों को दे दी जायेंगी।

भारतवर्ष में इन कृत्रिम उपग्रहों के सम्बन्ध में विभिन्न बातों को दर्ज करने के लिए उत्तर प्रदेश में नैनीताल में एक स्टेशन बनाया गया है। विश्व में इस प्रकार के कुल १२ स्टेशन बनाये गये हैं। आशा है कि इस प्रकार के ६ उपग्रह छोड़े जायेंगे। प्रत्येक उपग्रह का भार लगभग २१½ पौंड होगा और यह मैगनीशियम और एलमुनियम धातु के बने होंगे। तीन भागोंवाले राकेट की सहायता से इन्हें ३०० से १००० मील की ऊँचाई पर फेंका जायगा। ये उपग्रह पृथ्वी का चक्कर काट सकें, इसके लिए इनको ५ मील प्रति सेकण्ड की

चाल देनी पड़ेगी। यदि यह सब निश्चित कार्यक्रम के अनुसार हुआ तो २४ घण्टे में यह उपग्रह पृथ्वी के १४ चक्कर लगायेगा अर्थात् १०० मिनट में एक चक्कर लगायेगा। यह कहना कठिन है कि आकाश में यह कितनी देर तक रह सकेगा। परन्तु आशा की जाती है कि शायद यह पाँच साल तक आकाश में रहे।

× × ×

अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष १ जुलाई १९५७ से ३१ दिसम्बर १९५८ तक मनाया गया। इस अवधि में संसार के अनेक देशों ने राकेटों की सहायता से अनेक कृत्रिम उपग्रहों को आकाश में छोड़ा। यह उपग्रह वजन और आकार में भिन्न थे और इनमें विभिन्न प्रकार के यन्त्र लगे थे। तीन भागों वाले राकेट की सहायता से इन्हें ३०० से १०००मील की ऊँचाई पर छोड़ा गया। ये उपग्रह पृथ्वी का चक्कर काट सकें इसके लिए इनको ४५ मील प्रति सेकण्ड की चाल दी गयी। इन उपग्रहों की सहायता से आकाश सम्बन्धी बहुत से तथ्यों का पता लगने की आशा है।

इस क्षेत्र में हमारी प्रगति के इतिहास में चार अक्टूबर १९५७ का दिन अमर रहेगा। इस दिन रूस के वैज्ञानिकों ने राकेटों की सहायता से आकाश में एक कृत्रिम उपग्रह (स्पूतनिक–१) छोड़ा। ५६० मील की ऊँचाई पर इसने पृथ्वी का चक्कर लगाया। इसकी चाल १७,००० मील प्रति घण्टा थी। इस प्रकार यह पृथ्वी का एक चक्कर लगभग ९५ मिनट में पूरा कर लेता था। इसका व्यास २३ इंच और भार १८४ पौंड था। संसार के सभी देशों के रेडियो स्टेशनों तथा वेधशालाओं में इस उपग्रह के रेडियो संकेत सुने गये। २६ अक्टूबर को इसके संकेत आने बन्द हो गये।* ऐसा अनुमान है कि (स्पूतनिक १), ८७९ चक्कर पूरे करने के पश्चात् साइबेरिया के आस-पास गिरा। तीन नवम्बर, '५७ को रूस ने दूसरा उपग्रह (स्पूतनिक २) आकाश में छोड़ा। पहली बार इसका यात्री एक कुत्ता था। यह पहले उपग्रह से आठ गुना बड़ा था। ९३७ मील की ऊँचाई पर पृथ्वी की परिक्रमा १७,४४० मील प्रति घंटे

* 'डिसकबरी' (मासिक पत्र)—नवम्बर, १९५८ ई०।

को चाल से की। इसका यात्री इसमें एक बन्द कोष्ठ में बैठा था। यह कोष्ठ पूर्णतया वातानुकूलित था। इसके स्वास्थ्य का समाचार पृथ्वी तक आने के लिए विशिष्ट वैज्ञानिक व्यवस्था की गयी थी। १४ अप्रैल, १९५८, प्रातः २ बजे यह एमेज़न के आस-पास गिरा। अन्तरिक्ष यात्रा में सबसे बड़ा खतरा विकिरण का है। दूसरा खतरा विशिष्ट अल्ट्रा वायलैट किरणें भी हैं। ये प्राणीमात्र के लिए घातक सिद्ध हो सकती है।

इन उपग्रहों से अन्तरिक्ष-विज्ञान में एक नये युग का सूत्रपात हो रहा है।

× × ×

मनुष्य ने अपने उड़ान-सम्बन्धी प्रयासों का आरम्भ पक्षियों की उड़ान से प्रेरणा लेकर किया। इस क्षेत्र में जो अनुसन्धान कार्य उसने किया उसमें वह गुब्बारों, वायुपोत, विमान, अधिस्वनिक विमान, राकेट-जैसी कड़ियों को पार करता आज कृत्रिम उपग्रहों तक पहुँच गया है। मनुष्य ने वायुमण्डल पर विजय प्राप्त की और अब आकाश पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के प्रयत्नों में लगा हुआ है।

Bibliography of Books consulted for writing

विमान और वैमानिकी

1 First men to Fly—By Laurence Meynell Werner Lauric, London.

2 The Birth of Flight, an anthology—By Hartley Kemball Cook. George Allen & Unwin Ltd., London 1941

3 Fifty years of Flying—By Griffith Brewer, Air League of the British Empire Sw. I, 1946.

4 Flight Today & Tomorrow—By Margaret. O-Hyde A whittlesey House Book.

5 The World, the Air & the Future—By Dennis Burney Alfred A. Knoff, London.

6 Air craft 1929.—Ward Lock & Co. Ltd., London & Melbourne.

7 Flight Hand book, fifth Edition 1955, compiled by the staff of Flight—Iliffe & Sons Ltd., London.

8 Civil Avitation in India—By Captain Mustafa Anwar 1954, Thacker Spink & Co. (1933) Ltd., Calcutta.

9 The Science of Flight—By Q. G. Sutton 1955 Penguin Books Ltd., Harmondsworth, Middlesex.

10 Modern Marvels of Flight—By George Foster Page Ward & Lock Co. Ltd., London (1956)

11 Aeronautical Engg. Vol I, Mechanics of Flight By A. C. Kermode, Pitman Publication 1956.

पारिभाषिक शब्दावली

अंकित अवपात-चाल	Indicated stall-speed
अंकित वायुचाल	Indicated air-speed
अंगीगत स्थायित्व	Inherent stability
अग्नि-गुब्बारा	Fire-balloon
अग्र-उत्थापक	Forward elevator
अग्रगति	Forward speed
अग्रवेग	Forward velocity
अग्रसरण कोण	Angle of advance or Helix Angle
अग्र स्टैगर	Forward stagger
अघूर्णन गति	Irrotational motion
अघूर्णन प्रवाह	Irrotational flow
अति आवेश	Super charge
अतित्वरण	Overshoot
अतिस्वनिक	Transonic
अत्यावर्त	Vortices
अत्यावर्तिता	Vorticity
अध:स्वनिक	Subsonic
अधिकतम परास	Maximum range
अधिस्वनिक	Supersonic
अनुदैर्ध्य अक्ष	Logitudinal axis
अनुदैर्ध्य स्थायित्व	Longitudinal stability
अनुधावन	Downwash
अनुधावन कोण	Downwash angle

अनुमाप	Scale
अनुमाप-त्रुटि	Scale-error
अनुमाप-प्रभाव	Scale-effect
अनुवात	Wake
अनुस्रोत	Down-stream
अपकेन्द्र बल	Centrifugal force
अपबिन्दु भाग	Divergent part
अभिकल्प	Project, design
अभिकेन्द्र बल	Centripetal force
अभिबिन्दु-अपबिन्दु टोंटी	Convergent-Divergent nozzle
अभिबिन्दु भाग	Convergent part
अदृढ-वायुपोत	Non-rigid airship
अर्धदृढ-वायुपोत	Semi-rigid airship
अलगाव	Separation
अवतारण चाल	Landing speed
अवनयन	Depression
अवपात	Stalling
अवपात-कोण	Stalling angle
अवपात चाल	Stalling speed
अवमन्दन	Damping
अवमन्दन कम्पन	Damped virbration
अवमन्दित गति	Damped motion
अवयव	Element
अवस्थितत्व घूर्ण	Moment of Inertia
असंपीड्य गैस	Incompressible gas
असंमित	Unsymmetrical
अस्थायित्व	Unstability

आइफिल स्तम्भ	Eiffel Tower
आकाश	Space
आकृति वातरोध	Form Drag
आक्रमण कोण	Angle of attack
आघात अवपात	Shock stall
आघात अवपात चाल	Shock stall speed
आघात तरंगें	Shock waves
आडा	Longitudinal
आदर्श पंखकाट	Ideal aerofoils
आपेक्षिक गति	Relative motion
आरविल राइट	Orville Wright
आर्टिलरी	Artillery
आरोहण	Climbing
आक्टेव चनुटे	Octave Chanute
आल्बेर तिस्साँदिये	Albert Tissandier
इंडियन नेशनल एयरवेज़	Indian National Airways
इकपंखी विमान	Monoplane
इकारस	Icarus
इडनबरॉ	Edinburgh
इथिल एलकोहल	Ethyl Alcohol
उड़ान दौड़	Take off
उतार चाल	Landing speed
उतार दौड़	Landing run
उत्तम परास	Best range
उत्तल	Camber
उत्तल तल	Cambered surface
उत्तल पंखे	Cambered wings
उत्तल पल्ले	Cambered Flaps

उत्तोलकता	Leverage
उत्थापक	Elevator
उत्प्लावन	Floatation
उदग्र बल	Vertical force
उपग्रह	Satellite
उद्भार गुणांक	Lift Coefficient
उद्भार पल्ले	Lift flaps
उद्भार बल	Lift force
उद्भार वातरोध अनुपात	Lift/Drag ratio
उद्भार क्षमता	Lift endurance
उदग्र चाल	Vertical speed
उपधावन	Up-wash
उपस्तर	Sub-layer
उल्टी मारना	Loop
ऊर्जा की अविनाशिता	Indestructibility of energy
ऊर्ध्व नियन्त्रण	Vertical control
ऊर्ध्वाधर झोंके	Vertical gusts
ऊष्मा इंजन	Heat engine
ऊष्मा ऊर्जा	Heat energy
ऊष्मा गतिकी	Thermodynamics
ए० क्राको	A. Crocco
एत्येन मोंगोलफिये	Etienne Montgolfier
एत्येन रोबर्टसन	Etienne Robertson
एनिलिन	Aniline
एलफोस पनो	Alphonse Pen
एलीहेमर	Ellehamer
एविअान III	Avion III
एवरो	Avro

एस० वाल्डविन	S. Waldwin
ए० सी० क्रेबस	A. C. Krebs
कन्नी कशी	Banking
कन्नी कोण	Angle of Bank
कम्प्यूटर यन्त्र	Computor machine
कबन्ध	Fuselage
कर्टिस विमान	Curtiss Aeroplane
कर्टिस हाक फ़ाइटर	Curtiss Hawk Fighter
कारमन अत्यावर्ती स्ट्रीट	Karman Vortex Street
कार्यशील परास	Working range
कार्ल जाथो	Karl Jatho
केपर	Capper
केलि	Cayley
केलिफ़ोर्निया एरो	California Arrow
केवेलो	Cavallo
कैप्टन कूतले	Captain Coutelle
कैप्टन टामस	Captain Thomas
कैले	Calais
कोर	Wing-tips
कोरडाइट	Cordite
कोर-चाल	Wing-tip speed
कोर-प्रभाव	Tips-effects
क्रांतिक अवमन्दन	Critical Damping
क्रांतिक आक्रमण कोण	Critical angle of attack
क्रांतिक दाब	Critical pressure
क्रांतिक मेश संख्या	Critical mach number
क्रांतिक बिन्दु	Critical point
क्रूजिंग उड़ान	Cruising Flight

क्लेमौं आदे	Clement Ader
क्षमता	Endurance
क्षमता उड़ान	Endurance Flight
क्षमता चाल	Endurance speed
क्षैतिज वेग	Horizontal Velocity
खाँचे	Slots
खाँचेदार पक्ष	Slot wing
खाँचेदार पल्ले	Slot flaps
खुले मुंह की जेट-वातसुरंग	Open Jet wind-tunnel
गतिज ऊर्जा	Dynamic energy
गतिज दाब	Dynamic pressure
गतिज श्यानता गुणांक	Dynamic Viscosity Co-efficient
गतिज स्थायित्व	Dynamic stability
गतिशील सुकान	Moveable rudder
गस्तों तिस्सादिये	Gaston Tissandier
गायरोदर्शी	Gyroscopic
गावदुम आकार	Tapered shape
गुब्बारा	Balloon
गुंजक	Keel
गुरुत्व केन्द्र	Centre of gravity
गे लूसाक	Gay Lussac
गैस गतिकी	Gas Dynamics
ग्राफ जेप्लिन	Graf Zeppelin
ग्लाइडर	Glider
ग्लाइडिंग कोण	Gliding angle
ग्लेन-कर्टिस	Glenn curtiss
घनत्व	Density

घूर्णबल	Moment
घूर्णन गति	Rotational motion
चक्कर	Spins
चार्ल्स रेनार्ड	Charles Renard
चालन व्यवस्था	Propulsion
चाल-परास	Speed-range
चिरे पल्ले	Split flaps
चूड़ी का कोण	Pitch angle
चूषण क्रिया	Suction action
जंगी जलपोत	War ship
जंगी वायुपोत	War airships
जहाज रानी गुब्बारे	Dirigible balloons
जॉन स्ट्रिंगफ़ैलो	John String fellow
जाय स्टिक	Joy stick
जेट इंजन	Jet engine
जेट चालन	Jet propulsion
जेट विमान	Jet plane
ज़ेपलिन	Zeppelin
जेम्स टाइटलर	James Tytler
जेम्स विलकाक्स	James Wilcox
जोज़ेफ़ गेलयन	Joseph Galien
जोज़ेफ़ मोंगोलफ़िये	Joseph Montgolfier
जोहन शूट	Johanne Shutte
ज्या	Chord
ज्यामितीय आयाम	Geometrical dimension
ज्यामितीय दोलन	Geometrical pitch
टामस वाकर	Thomas Walker
टोंटी (तुंड)	Nozzle

ट्रिम्मिग टैब	Trimming Tabs
ट्रेनर विमान	Trainer aeroplane
डयेडलस	Daedalus
डाइनमाइट	Dyanamite
डाक्टर जेफ़रिज	Jeffries
डाक्टर बार्टन	Doctor Barton
डिलॉग	Delag
डेकोटा	Dakota
डेल्टा	Delta
डेविड शवारज़	David Shwarz
डोवर	Dover
ड्रेशन	Drachen
ढलवां ग्लाइड	Steeper glide
तंत्र	System
तटस्थ स्थायित्व	Neutral Stability
तरल आक्सीजन	Liquid Oxygen
तल क्षेत्रफल	Plan area
तलघर्षण वातरोध	Skin friction
तीव्र उतार	Fast landing
त्रिकोण पक्ष	Triangular wing
त्रिज्या	Radius
त्वरण	Acceleration
त्वरण मापी	Accelerometer
थ्रौट	Throat
दक्षता	Efficiency
दर्शानुपात	Aspect ratio
दृढ़ पंख	Rigid wings
दृढ़ वायुपोत	Rigid airship

दाब अंकन	Pressure Plotting
दाब ऊर्जा	Pressure energy
दावकेन्द्र	Centre of pressure
दाब तरंगें	Pressure waves
दाब प्रवणता	Pressure gradient
दावमापी	Manometer
दाव-वायुपोत	Pressure airship
दाब वितरण	Pressure distribution
दैशिक नियन्त्रण	Directional control
दैशिक स्थायित्व	Directional Stability
दो-पंखी विमान	Biplane
दोलन गति	Pitching
द्रवगतिकी	Aerodynamics
द्रव्यमान	Mass
द्रव्यमान अनुपात नियम	Law of Mass Ratio
द्रुतगामी जेट विमान	High speed Jet plane
द्रुतगामी विमान	High speed plane
द्वि-उत्तल आकार	Biconvex shape
द्वितल कोण	Dihedral angle
धारा रैखिक	Stream-lined
ध्वनि रोध	Sonic barrier
नाइट्रोमेथेन	Nitro methane
निकोलास बाज़ेनाक	Nikolas Basenach
नियन्त्रित मिसाइल	Guided Missile
निरूपण, दे० विरूपण	Stress
नियंत्रित खांचे	Controlled Slots
निश्चित परास	Fixed range
नीरम (गिट्टी)	Ballast

नोद	Thrust
नोदक	Propellents
न्यूनक गीयर	Reduction Gear
न्यूनतम उतार चाल	Minimum landing speed
प्यैर जूलियन	Pierre Jullien
पंखकाट	Aerofoil
पंखड़ी कोण	Angle of Blades
पंखा	Propeller
पंखे का व्यास	Diameter of propeller
पक्ष	Wings
पक्षक	Aileron
पक्ष-क्षेत्रफल	Wing area
पक्ष-कोर	Wing-tip
पक्ष-प्रतिदाब	Wing loading
पटल प्रवाह	Laminar flow
पटलीय उपस्तर	Laminar sub-layer
पटलीय-प्रवाह पंखकाट	Laminar flow Aerofoil
पट्टियों	Spars
पतंग गुब्बारा	Kite Balloon
परतोल पंखे	Flapping wings
परम ताप	Absolute temperature
परिवर्ती आयतन गीयर	Variable incidence gear
परास	Range
परास चाल	Range speed
परिभ्रमण गति (दे० घूर्णन गति)	Rotational motion
परिमाप	Measurement
परिवर्तित चूड़ी	Variable pitch
परिवर्तित चूड़ीदार पंखा	Variable pitch propeller

परिवर्ती पक्ष	Variable wings
परिवहन	Transport
पर्यवेक्षण	Reconnaissance
पर्सी पिल्चर	Percy Pilcher
पल्ले	Flaps
पश्च स्टैगर	Backward Stagger
पाट	Span
पाट-ज्या अनुपात	Span-chord ratio
पाट प्रतिदाब	Span Loading
पार्श्वपृष्ठ वातरोध	Profile Drag
पार्श्विक	Lateral
पार्श्विक अक्ष	Lateral axis
पार्श्विक स्थायित्व	Lateral stability
पाल हेनलिन	Paul Haenlein
पिटेट स्टेटिक नलियाँ	Pilot Static tube
पुच्छक विमान	Tail Plane
पूंछ-प्रतिदाब	Tail-Load
पूंछ फिसलना	Tail slide
प्रक्षिप्त	Projectiles
प्रक्षुब्ध प्रवाह	Turbulent Flow
प्रक्षोभ	Agitation
प्रतिदाब	Load
प्रतिदाब गुणांक	Load Factor
प्रति परिभ्रमण पंखे	Contra-rotating Wings
प्रशीतक	Cooler
प्रायोगिक दोलन	Experimental pitch
प्रायोगिक मध्यमान दोलन	Experimental mean pitch
प्रेरित वातरोध	Induced drag

प्रेस्टन वाटसन	Preston Watson
फ़ान पारसफ़ाल	Von Parseval
फ़ान सीमेंज़	Von Siemens
फिसलन	Slip
फ्रांसेस्को द लाना	Francesco de lana
फ्रायर गज़मेन	Friar Guzman
बगल फिसलन	Skidding or Side slipping.
बन्द खाँचे	Closed slots
बन्द मुंह की वात-सुरंग	Closed wind tunnel
बन्दी गुब्बारा	Captive Balloon
बममार	Bombers
बर्नोली-सिद्धान्त	Bernoulli's Principle
बर्बलिंग	Burbling
बल युग्म	Couple
बल युग्म घूर्ण	Moment of Couple
बासनिये	Basnier
बोलोन	Bologne
ब्रिटिश ऊष्मा मात्रक	British Thermal Unit
ब्लांशार	Blanchard
ब्लिम्प वायुपोत	Blimp airship
ब्लिम्प स्क्वैड्रान	Blimp Squadron
भँवर	Eddies
भारतीय वायुसेना	Indian Air Force
भूमिचाल	Ground speed
मध्यमान ज्यामितीय दोलन	Mean Geometric pitch
मशीनी गुफ़िया	Catapult
माण्टगुमरी	Montogomery
मॉण्टरियेल	Montreal

माडल ग्लाइडर	Model Glider
मात्रक पद्धतियों :	Unit Systems
मॉथ विमान	Moth plane
मुक्त गुब्बारा	Free balloon
मुड़े पक्ष	Swept-back wings
मूरफ़ील्डज़	Moor fields
मृत्स्पन्द	Dead Beat
मेजर आगस्त फ़ान पारसफ़ाल	Major August Von Parseval
मेज़र फ़ान ग्रास	Major Van Gross
मेथेल एलकोहल	Methyl Alcohol
मेफ्लाई	Mayfly
मेश रेखा	Mach Line
मेश संख्या	Mach number
मोज़हाइस्की	Mozhaisky
मोनोप्लेन	Monoplane
मोंगोलफिये	Montgolfiers
मोंसियो सेगें	Monsieur Seguin
यांत्रिक उपकरण	Mechanical apparatus
यांत्रिक ऊर्जा	Mechanical energy
यांत्रिक कार्य	Mechanical work
यानभार	Cargo
योक्त्र	Lever
राकेट	Rocket
राकेट चालन	Rocket propulsion
रासायनिक ऊर्जा	Chemical energy
रिंगर अवस्था	Rigging position
रिंगर आपतन	Rigger's stall
रिंगर आपतन कोण	Rigger's angle of incidence

रिकाल्डानी Richaldoni
रिशेल Richell
रीमज़ Rheims
रेडार Radar
रेनाल्ड संख्या Renyold's number
रोजर बेकन Roger Bacon
रोज़्ये Rozier
रोध पल्ले Dive brake or Air brake or Spoiler
रोमा Roma
लड़ाकू-राकेट Fighter Rocket
लड़ाकू विमान Fighter plane
ला आँल L' Eole
ला फ्रांस La France
लिओन Lyons
लिंकन बिचे Lincoln Biche
लिलियन्थल Lilienthal
लुनार्डी Lunardi
लेबाडी भाइयों Lebaudy Brothers
लोटन Rolling
लेखाचित्र Graph
वक्र Curve
वहन Carriage
वाटसन Watson
वाणिज्य वायुपोत Commercial Airship
वातरोध गुणांक Drag Co-efficient
वातरोध बल Drag
वातरोध सूत्र Drag formula

वात-सुरंग	Wind-tunnel
वात सुरंग तुला	Wind Tunnel Balance
वायु गतिकी (दे० द्रवगतिकी)	Aerodynamics
वायुचाल सूचक	Air speed indicator
वायुदाब प्रवणता	Air Pressure gradient
वायु-प्रवाह	Air flow
वायुपेंच	Airscrew
वायुपोत	Airship
वायुब्रेक	Air-brake
वायु-रथ	Air-carriage
वालपोल	Walpole
विक्टर सस्सून	Victor Sassoon
विक्षेप	Deflection
विचलता	Yawing
विभव प्रवाह	Potential flow
विमान	Aeroplane (Heavier than air)
विमानन	Aviation
विमोटन प्रभाव	Torque force or Turning effect
विमोटन बल	Torque force
विरूपण	Sheering, stress
विलोमानुपात	Reciprocal
विल्किन्ज़	Wilkins
विल्बर राइट	Wilbur Wright
विसरक	Diffuser
विस्तृत परास	Wide range
विस्थापन	Displacement
वृद्धिरोध बिन्दु	Stagnation point
वेग प्रवणता	Velocity gradient

वेण्टूरी नली	Venturi Tube
वेम्पायर जेट विमान	Vampire Jet plane
वैमानिकी	Aeronautics
वोओसें विमान	Viosin planes
वोओसें बन्धु	Viosin Brothers
वोगवाह्	Athodyd
वोल्टता	Voltage
वोल्टमापी	Voltameter
शंकु	Cone
शक्ति	Power
श्यानता	Zidfrd Viscosity
श्यानता गुणांक	Viscosity Co-efficient
श्यान-प्रतिबल	Viscosity-stresses
संक्रमण बिन्दु	Transitional point
संचार	Circulation
संतुलन	Equilibrium
संपीडन यन्त्र	Compressor
संपीडन	Compression
संपीडन वातसुरंग	Compressed wind tunnel
संयुक्त बल	Resultant Force
संवेग	Momentum
सदिग्वेग गति	Translation motion
समतल उड़ान	Level Flight
समतल क्षेत्रफल	Plan area
समतल ग्लाइडिंग	Flat gliding
समञ्जनीय पुच्छक विमान	Adjustable Tail plane
सम्मित पंखकाट	Symmetrical Aerofoil
सान्द्रता	Solidity

सांद्र हाइड्रोजन पराक्साइड	Concentrated Hydrogen-peroxide
सामान्य अक्ष	Normal axis
सिफना	Fin
सिविल-उड़ानें	Civil Service
सिविल वायुपोत सर्विस	Civil Airship Service
सीमान्त स्तर	Boundary Layer
सीयरवा आटोगिरो	Cierva Autogiro
सुकान	Rudder
सुग्राही यन्त्र	Sensitive instrument
सुचालन	Manoeuvres
सूक्ष्मतानुपात	Ratio
सेन्तूज़ दूमो	Santos Dumont
सैम्यूल हैनसन	Samuel Henson
स्किन कमेटी	Skin Committee
स्केल प्रभाव	Scale effect
स्टियरिंग ह्वील	Steering Wheel
स्टैगर	Stagger
स्थानान्तरीय गति	Translational motion
स्थान-त्रुटि	Position error
स्थायित्व	Stability
स्थितिज ऊर्जा	Static energy
स्थिर खांचे	Fixed slots
स्थिर ताप मंडल	Stratosphere
स्थैतिक दाब	Static pressure
स्थैतिक नोद	Static Thrust
स्थैतिक स्थायित्व	Static Stability
स्प	Tan

स्पिस	Spiess
स्लग	Slug
स्वत: कार्यशील खाँचे	Automatic slots
स्वतन्त्र-वेग	Velocity of escape
स्वतन्त्र-संख्या	Degrees of Freedom
हवाई करतब	Aerobatics
हाइनरि लाज	Heinrich Lanz
हिरम मैक्सिम	Hiram Maxim
हिलयम गैस	Helium gas
हिंडनवर्ग	Hindenburgh
हीन दक्षता	Inefficiency
हेनरी काक्सवैल	Henry Coxwell
हेनरी केवेन्डिश	Henry Cavendish
हेनरी गिफ़रड	Henry Giffard
हेनरी फ़ारमान	Henry Farman
हेलिकाप्टर	Helicopter
हैंगर	Hanger

अनुक्रमणिका

—:०:—